शिशुपालवध

महाकविमाघकृत

पण्डित कालीचरणजीके भाषानुवाद सहित ॥

जिसमें

श्रीकृष्णजीकी सभामें आकाशसे नारदाभिगमन युधिष्ठिरके राजसूययज्ञ और शिशुपालकी दुष्टता बलदेव और उद्धवजी की सम्मतिसे जल क्रीडापूर्व्वक स्त्रियोंसमेत श्रीकृष्ण जीका यज्ञमें जाना और भीष्मादिकी सम्मतिसे सबसे प्रथम श्रीकृष्णजीका पूजनहोना श्रीकृष्णजीके प्रथम पूजनहोनेको न सहकर शिशुपालका श्रीकृष्णजीको कुवाच्यकहना तब भीष्मजीका रोष युद्धमें श्रीकृष्ण जी के हाथसे दुष्ट शिशुपालका वध और कविवंश वर्णन है ॥

जिसको

श्रीभार्गववंशावतंस मुंशीनवलकिशोर(सी,आई,ई) ने अपनेव्यय से आगरापुर पीपलमण्डी निवासि चौरासिया गौड़वंशावतंस पण्डित गोकुलचन्द्र सूनु लखनऊ केनिंगकालेजके संस्कृत अध्यापक पण्डित कालीचरणजीसे पूरे माघकाव्यके बीसों सर्गकेश्लोकोंका यथातथ्यभाषानुवादकराया

बाजपेयि पण्डित रामरत्नके प्रबन्धसे

पहिलीवार ॥

लखनऊ

मुन्शीनवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखानेमें छपी
अक्टूबर सन १८९१ ई०

इस मतबेमें जितने प्रकारकी काव्य और ज्योतिष व
पुस्तकेंछपी हैं उनमेंसे कुछ लिखी जाती हैं ॥

रघुवंशभाषाटीका सहित ॥

जिसका उल्था राजा लक्ष्मणसिंह साहब बहादुर डिप्टीक कटर बुलन्दशहरने किया—यह ऐसे कविहैं कि इनकी की हिंदुस्तानसे विलायत तकहै ॥

कुमारसम्भवभाषाटीका सहित ॥

जिसके सातसर्गका प्रत्यक्षर टीका आगरापुर पीपलम निवासि चौरासिया गौड़वंशावतंस लखनऊ केनिंगकाले संस्कृताध्यापक पण्डित कालीचरणजीने अतिललित देव गरी भाषामें किया है ॥

संग्रहशिरोमणि ॥

पं० सरयूप्रसाद संग्रहीत—जिसमें ज्योतिष और पुराण तिके अनेक ग्रंथोंसे अयन, तिथि, बार, नक्षत्र, योग, ता शुभाशुभ ज्ञान और उनका फल इत्यादि अनेक विषय हैं ॥

जातकाभरण ॥

ढुंढिराज रचित—जिसमें जन्मपत्र देखनेके विषय हैं ॥

मुहूर्त्तचिंतामणिसटीक ॥

इस पुस्तकपर सर्वप्रकारके मुहूर्तोंका प्रमाण मानतेहैं वास्तवमें सर्वोत्कृष्टहै और इसमें

मुहूर्त्तचक्रदीपिका ॥

इसमें मुहूर्त्तचिन्तामणि, मुहूर्त्तमार्तंड, गणपति शृंगार, बोध, रत्नद्योत के कथित मुहूर्त्तोंके चक्र और उनके संक्षेप शय सुगमता के लिये वर्णन हैं ॥

शिशुपालबध सटीक का सूचीपत्र।

इति

शिशुपालबधका विज्ञापन ॥

विदितहो कि यह शिशुपालवध महाकाव्य कविवर माघ विरचित पाठकों को अत्यन्त मनोहर और अतीवरोचकहै और संपूर्ण प्रकारकी राजनीत्यादिक गुणोंसे भी युक्त है इसी उत्तमताके कारण विद्यार्थियोंकी शिक्षा के निमित्त प्रायः यूनीवर्सिटियोंमें भी संयुक्त कियाजाताहै परन्तु इन दिनोंमें संस्कृत भाषा के प्रचारकी न्यूनताको देखकर भार्गवबंशावतंस सकलकला चातुर्य्यादि गुण संपन्न (सी,आई,ई) उपाधिधारी श्रीयुत मुंशीनवलकिशोरने संस्कृतकी बृद्धि के लिये और विद्यार्थियों के उपकारके निमित्त आगरा पुरान्तर्गत पीपलमंडी निवासी गौड़वंशावतंस चौरासियेत्युपनामक पण्डितगोकुलचन्द्रसूनु लखनऊ केनिंगकालेजके संस्कृताध्यापक पण्डितकालीचरण जी से इसके बीसोंसर्गों का स्पष्टतासे पूरेश्लोक२ का महा महोपाध्याय मल्लिनाथपण्डित विरचितसर्वंक षाख्यटीकामें कहेहुए अन्वयके अनुसारभाषानुवादकरा कर ठाकुर लक्ष्मणसिंह के बनाये हुए रघुबंशके भाषानुवाद के अनुसार अत्यन्त पुष्ट कागज़पर व बड़े दिब्य और पुष्ट बम्बई टैपके अक्षरोंसे अतीवललित छपवायाहै जिसके पढ़नेसे स्वल्प संस्कृत और दिल्ली आगरेकी खड़ीबोलीके अच्छेप्रकार जाननेवालेभी काव्य रसिक सज्जनपुरुष सुगमतासे श्लोकका आशय समझसकेंगे आशाहै कि यूनी वर्सिटियों के परीक्षादेनेवाले विद्यार्थीलोगभी इस पुस्तकसे बड़ीसहा- यताको प्राप्तहोंगे क्योंकि फिर उनको इसके पढ़नेसे अन्वयपूर्व्वक भावार्थजान नेके लिये और किसी टीका आदिकी आवश्यकता न होगी इस भाषाटीका में यह विशेषता भी कीगई है कि जहाँ २ इस मूलग्रन्थके अर्थसे कोई भिन्न अर्थसमझने को लिखाहै वहाँ यह (   ) चिह्नकरके वह बाहरकाअर्थ उसमें लिखदिया है जिस्से कि किसीको सन्देह न हो   शुभम् ॥

(कालीचरण शर्म्मा)

शिशुपालवध के बीसों सर्गों का संक्षेप ॥

१--श्रीकृष्णजी से आकाशसे उतरते हुए ब्रह्माके पुत्र नार
मुनिका देखा जाना और पूजन करके आसनपर बैठाया जा
फिर नारद मुनिसे श्रीकृष्णजी की स्तुतिपूर्व्वक इन्द्रके सन्दे
का कहना इसके उपरान्त श्रीकृष्णजी के अंगीकारकरने प
नारदमुनिका आकाशमें फिर लौटजाना ॥

२--उद्धव और बलदेव जी के साथ श्रीकृष्णजी का सभा
गमन और शिशुपाल पर चढ़ाई करने के लिये अपने मतव
प्रकाश करना फिर बलदेवजी से श्रीकृष्णजी के मतका अनुमं
दन किया जाना इसके उपरान्त उद्धव जीसे बलदेवजीकेमतव
खण्डन करके अपने मतका स्थापन करना और नीति युक्त उद्ध
जीके वचनको सुनकर श्रीकृष्ण जी का प्रसन्न होना--

३--द्वारका पुरी के वर्णन पूर्व्वक श्रीकृष्ण जीके द्वारका पु
से प्रस्थान का अनेक प्रकारसे वर्णन--

४--अनेकप्रकारके छन्दऔरअलंकारोंसेरैवतकपर्व्वतकाबर्ण

५--पर्व्वतमें डेरोंके डालनेसमेत श्रीकृष्णजीकीसेनाकाबर्णन

६--वसन्तादिक छओं ऋतुओंका नानाप्रकार से वर्णन--

७--श्रीकृष्णजी का अच्छे प्रकारसे वन विहार वर्णन--

८--श्रीकृष्णजीका अनेक प्रकारसे जल विहार वर्णन--

९--सायंकाल वर्णन--

१०--श्रीकृष्ण जी का अच्छे प्रकारसे सुरत वर्णन--

११--प्रातःकालके वर्णन पूर्व्वक वन्दियों से श्रीकृष्णजी व
प्रति रात्रिके अन्त होजाने का निवेदन करना--

१२--श्रीकृष्ण जीके पर्व्वत से प्रयाण करने का वर्णन--

१३—युधिष्ठिरसे श्रीकृष्णजीके समागम का वर्णन—

१४—श्रीकृष्णजी और युधिष्ठिर के परस्पर वार्त्तालाप का वर्णन फिर युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञ का वर्णन इसके उपरान्त युधिष्ठिरजी से भीष्म पितामह के प्रति अर्घ देनेके लिये प्रश्न करना फिर भीष्म पितामहसे श्रीकृष्ण जी की स्तुतिपूर्वक श्री कृष्णजी अर्घदेने के योग्यहैं यह कहाजाना और युधिष्ठिर जी से श्रीकृष्णजीको अर्घ दियाजाना—

१५—क्रुद्ध होकर शिशुपाल करके श्रीकृष्णजीसमेत श्रीकृष्ण जीके पक्षवाले राजालोगोंको गाली देना फिर क्रोधयुक्त भीष्म पितामह का (आजमुझसे किये हुए श्रीकृष्णजीके पूजनको जोकोई नसहसकाहो वहधनुष्चढ़ावे यहचरणसंपूर्णराजालोगों के शिरोंपररक्खाहै) यहवचनकहना इसके उपरान्त शिशुपाल के पक्षवाले संपूर्ण राजालोगोंका क्रुद्धहोना और अपनेपक्षवाले राजालोगों के साथ शिशुपालका चलाजाना फिरयुद्ध के लिये राजालोगोंकेचलनेपर स्त्रियोंका सन्तापयुक्तहोना--

१६--शिशुपाल से भेजेहुए दूतका द्व्यर्थ वचनोंका कहना और उसकेअनुकूल सात्यकीका उत्तरदेना फिरउत्तरको सुनकर दूतका अन्य वचनों का कहना--

१७--सेनाके वर्णन समेत यदुवंशके क्षोभकावर्णन--

१८--नानाप्रकारसे श्रीकृष्णकी और शिशुपालकी सेनाओं के युद्धका वर्णन--

१९--चित्रबन्धोंसे द्वन्द्वयुद्धका अच्छे प्रकारसे वर्णन--

२०—श्रीकृष्णजी औरशिशुपालके युद्धका वर्णन औरश्रीकृष्ण जीसे शिशुपाल का माराजाना फिर अन्तमें कविवंशकावर्णन--

ओम्

श्रीगणेशायनमः

शिशुपालवधम्

प्रथमस्सर्गः

अथ कृष्ण नारद सम्भाषणम्

वन्देमुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं कुन्देन्दुशंखदशनंशिशुगोपवेशम्॥
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं वृन्दावनालयमहंवसुदेवसूनुम् १

१—श्रियःपतिःश्रीमतिशासितुंजग-
ज्जगन्निवासोवसुदेवसद्मनि ।
वसन्ददर्शावतरन्तमम्बरा-
द्धिरण्यगर्भांगभुवंमुनिंहरिः ॥

२—गतंतिरश्चीनमनूरुसारथेः
प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनंहविर्भुजः ।
पतत्यधोधामविसारिसर्वतः
किमेतदित्याकुलमीक्षितंजनैः ॥

ओम्

श्रीगणेशजीको नमस्कार

शिशुपालवध

पहिलासर्ग

श्रीकृष्णजीकी सभामें आकाशसे नारदजीका आना

मांगल्यमन्दारलताप्रवालं प्रणम्यपादाम्बुजमम्बिकायाः ।
विज्ञेनकालीचरणाभिधेन व्याख्यायतेमाघकवीन्द्रकाव्यम् १

१—लक्ष्मी के पति जगत् के आधार संसारके शिक्षाकरनेको लक्ष्मी युक्त वसुदेव के घर में रहतेहुये विष्णुने आकाश से उतरते हुये ब्रह्माके पुत्र मुनि (नारद) को देखा ॥

२--दोप्रकारकी आत्मा करनेवाले क्या यह सूर्य्य हैं धूमरहित दीप्तिवाले क्यायह अग्निहैं सूर्य्यकीगति तो तिरछी है और अग्निका ऊर्ध्वज्वलन प्रसिद्ध है यहतो सबओरको फैलने वाला तेज नीचेको गिरता है यह क्या है यह विस्मयसे भ्रान्त होकर जनोंने देखा ॥

३—चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा
ततः शरीरीति विभाविताकृतिम्।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति
क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः॥

४—नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान्
समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम्।
क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना
स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना॥

५—दधानमम्भोरुहकेशरद्युती-
र्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
विपाकपिंगास्तुहिनस्थलीरुहो
धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव॥

६—पिशंगमौंजीयुजमर्जुनच्छविं
वसानमेणाजिनमंजनद्युति।
सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां
विडम्बयन्तं शितिवाससस्तनुम्॥

७—विहंगराजांगरुहैरिवायतै-
र्हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः।
कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकै-
र्घनं घनान्ते तडितांगुणैरिव॥

३--विभु (तत्त्वों के उत्पन्न करने में समर्थ और व्यापक) हरिने प्रथम तेजोंकापुंज यह निश्चयकिया इसके उपरान्त निकट आनेपर जानीहुई आकृति वालेको शरीरी यह निश्चय किया पृथक् २ ज्ञातअंगवालेको पुरुष है यहनिश्चय किया इस आतेहुयेको क्रमते नारद हैं यहजाना ॥

अब यहां से सातश्लोकों में मुनिका वर्णन है ॥

४--नवीन बड़े मेघों के नीचे (स्थित) इकट्ठे किये हुए कर्पूर की रजके समान श्वेत क्षण भर उत्सवों में बड़े हाथी के चर्म के उढ़ाने वाले भस्म से श्वेत शिवजीसे स्फुट (प्रकट) उपमा वाले ॥

५--कमल की केशर के समान द्युति वाली जटाओं को धारण करने वाले शरद्कालके चन्द्रमा की किरणोंके समान दीप्ति वाले पकने से पीत वर्ण वाली हिमकी भूमियों में उत्पन्न हुईं लताओं के समूहके धारण करने वाले हिमाचल के समानस्थित ॥

६--पीत मूंजकी मेखलासे युक्त श्वेत कान्ति वाले अंजनके समानवर्णवाले कृष्णमृगचर्म को धारण किये हुये सुवर्ण की मेखला से बंधे हुये अन्तर वाले बलदेवजी के शरीर को बिडम्बित (तुल्यता) करतेहुये ॥

७--गरुड़जी के रोमोंके तुल्य दीर्घ सुवर्णमयी पृथ्वी में उत्पन्न हुईं लताओं के सूत्रों से यज्ञोपवीत करने वाले हिमके समान श्वेत शरद् ऋतुमें बिजली के सूत्रों से उपलक्षित (विदित) उन्नत मेघके समान स्थित ॥

८—निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा
लसद्विसच्छेदसितांगसंगिना ।
चकासतंचारुचमूरुचर्मणा
कुथेननागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम् ॥

९--अजस्रमास्फालितवल्लकीगुण-
क्षतोज्ज्वलांगुष्ठनखांशुभिन्नया ।
पुरःप्रवालैरिवपूरितार्द्धया
विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया ॥

१०--रणाद्भिराघट्टनयानभस्वतः
पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैःस्वरैः ।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छना-
मवेक्षमाणंमहतींमुहुर्मुहुः १० ॥

११--निवर्त्त्यसोऽनुव्रजतःकृताननती-
नतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभःसदः ।
समासदत्सादितदैत्यसम्पदः
पदंमहेन्द्रालयचारुचक्रिणः ॥

१२--पतत्पतंगप्रतिमस्तपोनिधिः
पुरोऽस्ययावन्नभुविव्यलीयत ।
गिरेस्तडित्वानिवतावदुच्चकै-
र्जवेनपीठादुदतिष्ठदच्युतः ॥

१३--अथप्रयत्नोन्नमितानमत्फणै-
र्धृतेकथञ्चित्फणिनांगणैरधः ।
न्यधायिषातामभिदेवकीसुतं
सुतेनधातुश्चरणौभुवस्तले ॥

८--स्वभावही से विचित्र दीप्तिमान् रोमवाले शोभायमान मृणालखण्ड के समान श्वेत, शरीरमें लगे हुए सुन्दर मृगचर्म से भूलसे इन्द्रके बाहन ऐरावत के समान शोभायमान ॥

९--वारंवार ताड़ित (बजायेगये) बीणा सम्बन्धी तारों के संघर्षण से उज्ज्वल अंगुष्ठ के नखकी किरणों से मिलीहुई (इसीसे) आगे मूगों से मानों पूरित है आधाभाग जिस का ऐसीस्वच्छ स्फटिक की मालासे शोभायमान ॥

१०--वायु के लगने से पृथक् २ शब्दायमान जुदे २ श्रुति के मण्डलवाले स्वरों से स्फुट होरहीं षड्जादिक स्वरसमूह के भेदोंकी मूर्च्छना (स्वरोंका चढ़ावउतार) वाली महती नाम अपनी बीणाको वारंवार देखतेहुए ॥

११--इन्द्रियों से परे वस्तुओं के ज्ञानवाले प्रणाम के करनेवाले पीछे आरहे देवता लोगोंको लौटाकर वह (मुनि) दैत्यों की सम्पत्ति के विध्वंस करने वाले श्रीकृष्ण जी के इन्द्र-भवन के समान दीप्तिमान् स्थानको प्राप्तहुए ॥

१२--गिरते हुए सूर्य्य के समान तपोनिधि इन श्रीकृष्ण जी के आगे पृथ्वी में जबतक नहीं स्थित हुए तभी श्रीकृष्ण जी ऊंचे पर्व्वत से मेघ की समान आसन से वेगपूर्व्वक उठे ॥

१३--इसके उपरान्त नारदने यत्नसे उठाये गये झुकेहुए फण वाले सर्पोंके समूह से नीचे किसीप्रकार धारण किये गये पृथ्वीतलमें श्रीकृष्णजी के आगे चरण रक्खे ॥

१४--तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपूरुषः
सपर्य्यया साधु स पर्य्यपूपुजत् ।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो
भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः ॥

१५--न यावदेतावुदपश्यदुत्थितौ
जनस्तुषाराञ्जनपर्वताविव ।
स्वहस्तदत्ते मुनिमासने मुनि-
श्चिरन्तनस्तावदभिन्यवीविशत् ॥

१६--महामहानीलशिलारुचः पुरो
निषेदिवान् कंसकृषः स विष्टरे ।
श्रितोदयाद्रेरभिसायमुच्चकै-
रचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम् ॥

१७--विधाय तस्यापचितिं प्रसेदुषः
प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः ।
ग्रहीतुमार्य्यान् परिचर्य्यया मुहु-
र्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः ॥

१८--अशेषतीर्थोपहृताः कमण्डलो-
र्निधाय पाणावृषिणाभ्युदीरिताः ।
अघौघविध्वंसविधौ पटीयसी-
र्नतेन मूर्ध्ना हरिरग्रहीदपः ॥

१९--स काञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया
नवाम्बुदश्यामवपुर्न्यविक्षत ।
जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं
सुमेरुशृङ्गस्य तदा तदासनम् ॥

१४--पुराणपुरुष उन (श्रीकृष्ण) ने पूजन के योग्य नारद का अर्घ्यादिक पूजनसे अच्छे प्रकार पूजन किया सज्जन लोग पुण्यके न करनेवालों के गृहों को नम्रतासे प्राप्तहोने की इच्छा करनेवाले नहीं होते हैं ॥

१५--उठे हुए इन (मुनि और श्रीकृष्णजी) को लोगों ने हिम और अंजन के पर्वतों के समान जबतक नहीं देखा तभी श्रीकृष्णजी ने अपने हाथसे दियेहुए आसनपर मुनिको सन्मुख बैठाया ॥

१६--बड़ी सिंहलद्वीप में उत्पन्न नीलमणिकी कान्ति के समान शोभावाले श्रीकृष्णजी के आगे ऊंचे आसनपर बैठे हुए वह(मुनि)सायंकाल के प्रारंभ में उदयाचलके आश्रय में रहनेवाले चन्द्रमाकी शोभाको चुराते थे ॥

१७--यज्ञ करने वालों के प्रिय (श्रीकृष्णजी) प्रसन्न उन (मुनि) का पूजनकरके अत्यन्त प्रसन्नहुए महात्मालोग पूज्योंको पूजनसे वारंवार वशकरने को अत्यन्त अभिलाषमान होतेहैं ॥

१८--संपूर्ण तीर्थों से लाये गये कमण्डलु से निकालके हाथ में रखकर मुनिसे फेंकेगये पापों के विध्वंस करने में अधिक समर्थ जल हरिने झुकेहुए शिरसे ग्रहण किये ॥

१९--नवीन मेघके समान श्याम शरीर वाले वह (श्रीकृष्ण जी) सुवर्णके जिस आसनपर बैठे उस आसनने उसरसमय जंबूफल से उत्पन्न हुई शोभावाले सुमेरु के शृंगकी शोभाको जीतलिया ॥

२०–स तप्तकार्त्तस्वरभास्वराम्बरः
कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः।
विदिद्युते वाडवजातवेदसः
शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः॥

२१–रथांगपाणेः पटलेन रोचिषा-
मृषित्विषः संवलिता विरेजिरे।
चलत्पलाशान्तरगोचरान्तरो-
स्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः॥

२२–प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीषुभिः
शुभैश्च सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः।
परस्परेण च्छुरितामलच्छवी
तदैकवर्णाविव तौ बभूवतुः॥

२३–युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो
जगन्ति यस्यां सविकाशमासत।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विष-
स्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः॥

२४–निदाघधामानमिवाधिदीधितिं
मुदा विकाशं मुनिमभ्युपेयुषी।
विलोचने बिभ्रदधिश्रितश्रिणी
स पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटोऽभवत्॥

२५–सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपु-
र्विसारिभिः सौधमिवाऽथ लम्भयन्।
द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः
शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः॥

२०--तपाये सुवर्णके समान देदीप्यमान वस्त्रवाले पूर्ण चन्द्रमा केकलंककी शोभाके समान छविवाले वह (श्रीकृष्णजी) जलकी अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त समुद्रके समानशोभित हुए ॥

२१--श्रीकृष्णजीकी छवियोंके समूहसे मिली हुईऋषिकी छवि रात्रिमें वृक्षके चञ्चल पत्तोंके छिद्रोंमें स्थित चन्द्रमाकी किरणोंके समान शोभित हुई ॥

२२--फूलेहुए तमालपुष्पके समान सतावरके पुष्पोंकी धूलिके समान पीली और शुभ्र किरणों से परस्पर मिलीहुई निर्मल छवि वाले वह (मुनि और श्रीकृष्ण) उस समय मानों एक वर्णवाले होगये ॥

२३--युगके अन्त समयमें अपनेमें जीवोंके स्थापित करनेवाले श्रीकृष्णजीके जिस शरीरमें संसार विस्तारपूर्वक स्थितथे उस शरीरमें तपोधन (नारद) के आगमनसे उत्पन्नहुए आनन्द नहीं समाये ॥

२४--सूर्य्यके समान अधिक तेजवाले मुनिको देखकर आनन्द सेविकाशको प्राप्त शोभासे युक्त नेत्रों को धारण करते हुए वह श्रीकृष्णजी पुण्डरीकाक्ष यह स्फुट (यथार्थनामवाले) हुए ॥

२५--इसके उपरान्त श्रीकृष्णजी फैलने वाली दांतोंकी पंक्तिके मिससे चन्द्रमाकी किरणों से श्वेत मुनिके शरीरको घर केसमान अत्यन्त श्वेततासे बहुतही उज्ज्वल करते हुए पवित्र मन्दमुसकानवाली वाणी बोले ॥

२६—हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः
शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं
व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥

२७—जगत्यपर्य्याप्तसहस्रभानुना
न यन्नियन्तुं समभावि भानुना।
प्रसह्य तेजोभिरसंख्यतांगतै-
रदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः ॥

२८—कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा
सुपात्रनिःक्षेपनिराकुलात्मना।
सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो
निधिः श्रुतीनां धनसम्पदामिव ॥

२९—विलोकनेनैव तवामुना मुने!
कृतः कृतार्थोऽस्मि निवर्हितांहसा।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसी-
र्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते ॥

३०—गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं
वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया।
तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो
गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम् ॥

३१—इति ब्रुवन्तं तमुवाच स व्रती
नवाच्यमित्थं पुरुषोत्तम! त्वया।
त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः
किमस्ति कार्य्यं गुरुयोगिनामपि ॥

२६--आपका दर्शन शरीर धारण करने वालोंके तीनों कालों में पवित्रता को प्राप्तकरताहै क्योंकि वर्त्तमानकाल (दर्शनके समय) में पापको हरता है (और) आनेवाले कल्याण काहेतुहै (और) प्रथम कियेहुए पुण्योंसे उत्पन्न हुआहै ॥

२७--जगत् में प्रमाणरहित हज़ारों किरणवाले सूर्य्य जिस अन्धकारको निवारणनहीं करसके बड़ाभारी यह अन्धकार (मोहात्मक) असंख्य तेजों से हठपूर्वक आपने नाश किया ॥

२८--प्रजाओं के कुशल करनेवाले सुपात्रमें रखनेसे स्वस्थचित्त वाले ब्रह्माने तुम्हें धनकी सम्पत्तियों के समान वेदों की सदा व्यय होने पर भी अक्षय उपदेश करनेवाली निधि बनायाहै ॥

२९--हेमुने पापके नाश करने वाले तुम्हारे इस दर्शनही से कृतार्थ किया गयाहूं तिसपर भी अर्थ वाली तुम्हारी वाणी सुनने की इच्छा करताहूं अथवा कल्याण में कौन तृप्त होताहै ॥

३०--विरक्त भी आप आगमनका प्रयोजन कहिये यह कहने को जिस धृष्टता से उद्यत होता हूं मेरे गौरवके उत्पन्न करने वाला प्रशंसा करने के योग्य यह तुम्हारा आगमनही हमारी उस धृष्टताको विस्तार करताहै ॥

३१--ऐसा कहते हुए हरि से वह मुनि बोले कि हे पुरुषोत्तम आपको ऐसा कहना न चाहिये (क्योंकि) योगियों के आपही साक्षात्कार करने के योग्य हैं इससे अन्य अधिक कार्य्य कौन है ॥

३२—उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनै-
रभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम् ।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विन-
स्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया ॥

३३—उदासितारं निगृहीतमानसै-
र्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन ।
वहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः
पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ॥

३४—निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं
फणाभृताञ्छादनमेकमोकसः ।
जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकै-
रहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम् ॥

३५—अनन्यगुर्वास्तवकेनकेवलः
पुराणमूर्त्तेर्महिमावगम्यते ।
मनुष्यजन्मापि सुरासुरान् गुणै-
र्भवान् भवच्छेदकरैः करोत्यधः ॥

३६—लघूकरिष्यन्नतिभारभंगुरा-
ममूं किल त्वं त्रिदिवादवातरः ।
उदूढलोकत्रितयेन साम्प्रतं
गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया ॥

३७—निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहा-
मुपाजिहीथानमहीतलंयदि ।
समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः
पदं दृशः स्याः कथमीश ! मादृशाम् ॥

३२–बढ़े हुए राग रूपी प्रतिबन्धक वाले निरन्तर विना अभ्यासपनेसे मनुष्योंसे अति दुर्गम मोक्षके मार्गको प्राप्तमनस्वी के आपही पुनरावृत्ति रहित प्राप्तिवाले प्राप्त होनेके योग्य स्थानहो ॥

३३–पूर्वके जानने वाले आपको योगियों करके अध्यात्म दृष्टि से किसी प्रकार साक्षात्कार किये गये उदासीन विकारोंसे रहित प्रकृतिसे भिन्न अनादि पुरुष जानते हैं ॥

३४–तीनों भुवनोंके एक बनाने वाले आपने क्रीडा से उठाये गये सर्पों के स्थानका एक आच्छादन पृथ्वीतल उन्नत शेष रूपी स्तंभके शिरों में रक्खा है ॥

३५–सबसे गरुई आपकी पुराण मूर्तिकी संपूर्ण महिमा कौन जानताहै (कोईनहीं)क्योंकि मनुष्यसे जन्मवालेभी आप संसारके निवृत्त करनेवाले गुणोंसे देवता और दैत्योंको नीचे करतेहो ॥

३६–आप बड़ेभारसे भंगहोरही पृथ्वीको हलकी करने के लिये स्वर्गसे उतरेहो इससमय तीनोंलोकोंके धारण करनेवाले आपसे अत्यन्त भारवाली और पूज्य की जाती है ॥

३७–अपनेतेजसे जगत्के शत्रुओंके मारनेको यदि पृथ्वीतलपर न आते तो समाधिमें स्थित होनेवालोंसेभी नहींग्रहणकिये गये आप हे ईश हम सरीखोंके देखनेमें कैसेआते ॥

३८—उपप्लुतं पातुमदो मदोद्धतै-
स्त्वमेव विश्वम्भर ! विश्वमीशिषे।
ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः
क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः॥

३९—करोति कंसादिमहीभृतां वधात्
जनो मृगाणामिव यत्तव स्तवम्।
हरे ! हिरण्याक्षपुरःसरासुर-
द्विपद्विपः प्रत्युत सा तिरस्क्रिया॥

४०—प्रवृत्त एव स्वयमुज्झितश्रमः
क्रमेण पेष्टुम्भुवनद्विषामसि।
तथापि वाचालतया युनक्ति मां
मिथस्त्वदाभाषणलोलुपं मनः॥

४१—तदिन्द्रसन्दिष्टमुपेन्द्र! यद्वचः
क्षणंमया विश्वजनीनमुच्यते।
समस्तकार्य्येषु गतेन धुर्य्यता-
महिद्विषस्तद्भवता निशम्यताम्॥

४२—अभूदभूमिः प्रतिपक्षजन्मनां
भियां तनूजस्तपनद्युतिर्दितेः।
यमिन्द्रशब्दार्थनिसूदनं हरे-
र्हिरण्यपूर्वङ्कशिपुं प्रचक्षते॥

४३—समत्सरेणासुरइत्युपेयुषा
चिराय नाम्नः प्रथमाभिधेयताम्।
भयस्य पूर्वावतरस्तरस्विना
मनःसु येन द्युसदां न्यधीयत॥

३८—हे विश्वंभर मदसे उद्धतों (कंसादिकों) से पीड़ित इस संसारकी रक्षाकरनेको आपही समर्थ हैं रात्रिके अन्धकार समूहोंसे मलिन आकाशको स्वच्छकरनेको सूर्य्यके विना कौन समर्थहोय (कोईनहीं) ॥

३९—मनुष्य मृगोंके समान कंसादिक राजाओंके बधसे जो स्तुति करते हैं हे कृष्ण वह (स्तुति) हिरण्यादिक दैत्यरूपी सिंहोंके नाश करनेवाले आपका उलटाअनादर है ॥

४०—आप श्रमको त्याग करके क्रमसे संसारके शत्रुओं के नाश करनेको आपही प्रवृत्तहो तिसपर भी परस्पर आपके साथ भाषणमें लुब्ध मन मुझे वाचालतासे युक्त करता है ॥

४१—तिस कारण से हे उपेन्द्र इन्द्रसे संदेशा दिया हुआ संसार के मनुष्योंके लिये हित जो वचन क्षण भर में कहताहूं वह (वचन) इन्द्रके संपूर्ण कार्य्योंमें धुरंधरपने को प्राप्त आपसुनिये ॥

४२—शत्रु से उत्पन्नहुए भयों का नहीं स्थान सूर्य्य के समान तापवाला दैत्य हुआ था जिसको इन्द्रके इन्द्रशब्दके अर्थ का निवृत्त करनेवाला हिरण्यकशिपु कहते हैं ॥

४३—अन्यों के शुभ के द्वेष वाले असुर इसनाम से बहुत काल तक प्रथमा भिधेयता (मुख्य अर्थपन) को प्राप्त बलवान् जिस (हिरण्यकशिपु) ने देवताओं के मनमें भय का प्रथम प्रवेश कराया ॥

४४–दिशामधीशांश्चतुरो यतः सुरा-
नपास्य तं रागहृताः सिषेविरे ।
अवापुरारभ्य ततश्चला इति
प्रवादमुच्चैरयशस्करं श्रियः ॥

४५–पुराणि दुर्गाणि निशातमायुधं
बलानि शूराणि घनाश्च कञ्चुकाः ।
स्वरूपशोभैकफलानि नाकिनां
गणैर्यमाशंक्य तदादि चक्रिरे ॥

४६–ससञ्चरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां
यदृच्छया शिश्रियदाश्रयः श्रियः ।
अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्-
करैस्त्रिसन्ध्यं त्रिदशैर्दिशे नमः ॥

४७–सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता
नृसिंह ! सैंहीमतनुं तनुं त्वया ।
समुग्धकान्तास्तनसंगभंगुरै-
रुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः ॥

४८–विनोदमिच्छन्नथ दर्पजन्मनो
रणेन कण्ड्वास्त्रिदशैः समं पुनः ।
सरावणो नाम निकामभीषणं
बभूव रक्षः क्षतरक्षणं दिवः ॥

४९–प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः
शिरोऽतिरागाद्दशमं चिकर्त्तिषुः ।
अतर्कयद्विघ्नमिवेष्टसाहसः
प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः ॥

४४–सम्पत्तियां जिस समय दिशाओंके पति चार देवताओंको त्याग करके उस हिरण्यकशिपु की रागसे खिंचीहुई होकर सेवाकरतीहुई तबसे लेकर अयशके करने वाले अत्यन्त चंचल इस अपवाद (बुराई) को प्राप्तहुई ॥

४५–देवताओंकेसमूहोंने जिस (हिरण्यकशिपु)की आशंकाकरके तबसेलेकरएकस्वरूपकीशोभारूपी फलवालेपुरप्राकार(परकोटा)परिखा(खाई)आदिकोंसेअगम्यकिये शस्त्रतीक्ष्णकिये औरसेनावालोंकोबलवान्शूरकिया औरकवचदुर्भेदकिये ॥

४६–भुवनान्तरोंमें घूमने वाले लक्ष्मीके आश्रय उस (हिरण्यकशिपु)ने अपनी इच्छासे जिस दिशाओं में गमन किया मुकुट के रत्नोंमें प्राप्त हाथ वाले देवतालोगों ने उस दिशा को नमस्कार किया ॥

४७–हे नृसिंह सिंहके शरीर को धारण करने वाले केशों के समूहोंसे मेघों के छिन्न भिन्न करनेवाले तुमने उस दैत्य को मुग्धास्त्रियों के स्तनों के संग से टेढ़े हुए नखों से उरको विदीर्ण करके मारा ॥

४८–इसके उपरान्त वह (हिरण्यकशिपु) फिर देवताओं के साथ युद्धकेद्वारा अहंकारसे उत्पन्नहुई खुजलीको दूरकरने की इच्छा करताहुआ स्वर्गकी रक्षाकानाश करनेवाला अत्यन्त भयानक रावणनाम राक्षसहुआ ॥

४९–जोरावण तीनोंभुवनोंके प्रभुहोनेकी इच्छा करताहुआ बड़े उत्साहसे दशवें शिरके काटनेकी इच्छा कररहा साहसको प्रियमाननेवाला इच्छाके सदृश शिवजीके प्रसादको मानों विघ्न मानताहुआ ॥

५०—समुत्क्षिपन् यः पृथिवीभृतां वरं
वरप्रदानस्य चकार शूलिनः ।
त्रसत्तुषाराद्रिसुताससम्भ्रम-
स्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम् ॥

५१—पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं
मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा वली
य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवन्दिवः ॥

५२—सलीलयातानि न भर्त्तुरभ्रमो-
र्न चित्रमुच्चैःश्रवसः पदक्रमम् ।
अनुद्रुतः संयति येन केवलं
वलस्य शत्रुः प्रशशंस शीघ्रताम् ॥

५३—अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचनः
सहस्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम् ।
प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं
निनाय विभ्यद्दिवसानि कौशिकः ॥

५४—बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टना-
द्विकीर्णलोलाग्निकणं सुरद्विषः ।
जगत्प्रभोरप्रसहिष्णु वैष्णवं
न चक्रमस्याक्रमताधिकन्धरम् ॥

५५—विभिन्नशंखः कलुषीभवन्मुहु-
र्मदेन दन्तीव मनुष्यधर्मणः ।
निरस्तगाम्भीर्य्यमपास्तपुष्पकं
प्रकम्पयामास न मानसं न सः ॥

५०--जो रावण पर्वतोंमें श्रेष्ठ (कैलास) को उठाताहुआ शिव जीके वरप्रदानका डरीहुई पार्वतीजीका एकाएकी जोआप ही कण्ठग्रहण उसके द्वारा आलिंगन के सुखसे बदला करताहुआ ॥

५१--तिसबली रावणने इन्द्रसे विरोधकरके पुरीका अवरोध (रोकना) किया नन्दनवनको काट्डाला रत्न छीनलिये अमरांगना हरलीं इसप्रकारसे प्रतिदिन स्वर्ग में उपद्रव किये ॥

५२--युद्धमें जिसरावणसे पीछा कियेगये इन्द्रनेऐरावतकेलीला-पूर्व्वक गमनोंकी प्रशंसा नहींकी उच्चैःश्रवाके नानाप्रकारके पादविक्षेपोंकी प्रशंसा नहीं की केवल शीघ्र गमनकी ही प्रशंसा करी ॥

५३--चंचलदृष्टिवाले इन्द्रने सूर्य्यकेसमान जिस रावणकेदर्शन को सहनेको समर्थ नहोकर हिमालयकी गुहारूपी गृहोंके भीतर प्रवेशकरके भयभीत होकर दिन व्यतीत किये ॥

५४--बड़ीशिलारूपी निष्ठुरकण्ठ में लगनेसे बिखरेहुए चंचल अग्निके कण वाला सहनेके अयोग्य विष्णुका चक्र जगत् के स्वामी इस रावणके कन्धेमें नहीं प्रवृत्तहुआ ॥

५५--उसरावणनेमदसे हाथीके समान शंख (द्रव्यका प्रमाण) का भेदन करनेवाला व्याकुल होरहा पुष्पक विमानसे रहित कुवेरका चित्त वारंवारनहीं कंपाया किन्तु कंपाया ॥

५६–रणेषु तस्य प्रहिताः प्रचेतसा
सरोषहुंकारपराङ्मुखीकृताः ।
प्रहर्त्तुरेवोरगराजरज्जवो
जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे ॥

५७–परेतभर्त्तुर्महिषोऽमुना धनु-
र्विधातुमुत्खातविषाणमण्डलः ।
हृतेऽपि भारे महतस्त्रपाभरा-
दुवाह दुःखेन भृशानतं शिरः ॥

५८–स्पृशन् सशंकः समये शुचावपि
स्थितः कराग्रैरसमग्रपातिभिः ।
अघर्मघर्मोदकविन्दुमौक्तिकै-
रलञ्चकारास्य वधूरहस्करः ॥

५९–कलासमग्रेण गृहानमुञ्चता
मनस्विनीरुत्कयितुं पटीयसा ।
विलासिनस्तस्य वितन्वता रतिं
न नर्मसाचिव्यमकारि नेन्दुना ॥

६०–विदग्धलीलोचितदन्तपात्रिका-
चिकित्सया नूनमनेन मानिना ।
न जातु वैनायकमेकमुद्धृतं
विषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति ॥

६१–निशान्तनारीपरिधानधूनन-
स्फुटागसाप्यूरुषु लोलचक्षुषः ।
प्रियेण तस्यानपराधबाधिताः
प्रकम्पनेनानुचकम्पिरे सुराः ॥

५६--युद्धमें वरुणसे प्रयोग कियेगये नागपाश उस रावणके क्रोधयुक्तहुंकारसे लौटाये गये भयसंयुक्त वेगसे प्रयोग करने वाले (वरुण) के ही कण्ठमें प्राप्तहुए ॥

५७–इस रावण से धनुष्बनाने के लिये उखाड़े गये शृंग मंडलवाले यमराज के भैंसे ने भारके हरलेने परभी बड़ी लज्जा के भारसे नम्र शिर धारण किया ॥

५८–सूर्य्य ने ग्रीष्म कालमें स्थितभी नहीं संपूर्ण गिरने वाले किरणों के अग्रभागों से शंका से युक्त स्पर्श करते हुए शीतल स्वेद के बिन्दुरूपी मौक्तिकों से इसकी स्त्रियां अलंकार युक्त कीं ॥

५९–संपूर्ण कलाओं से घरों को नहीं छोड़रहा मानिनी स्त्रियों के उत्सुककरनेमें चतुर रागको बढ़ाताहुआ चन्द्रमा उस रावण का नर्मसाचिव्य (क्रीड़ा संबंधी अधिकारों में सचेष्टापन) नहीं करताथा किन्तु करताहीथा ॥

६०–अभिमानी इस (रावण) से चतुर स्त्रियों के कर्णभूषणों के बनाने की इच्छा से निश्चय किसी समय उखाड़ा गया गणेश जी का एक दन्त अब तक फिर नहीं उत्पन्न होता है ॥

६१–घर में स्त्रियों के अधोवस्त्रों के चलाने से प्रकट अपराध वाले भी जंघाओं में लुब्ध दृष्टिवाले उस (रावण) के प्रियवायु से अपराध के विनाभी वाधित देवता लोग अनुकम्पित किये गये ॥

६२--तिरस्कृतस्तस्य जनाभिभाविना
मुहुर्महिम्ना महसां महीयसाम् ।
वभार वाष्पैर्द्विगुणीकृतं तनु-
स्तनूनपाद्धूमवितानमाधिजैः ॥

६३--परस्य मर्माविधमुज्झतां निजं
द्विजिह्वतादोषमजिह्मगामिभिः ।
तमिद्धमाराधयितुं सकर्णकैः
कुलैर्न भेजे फणिनां भुजंगता ॥

६४--तदीयमातंगघटाविघट्टितैः
कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः ।
गृहीतदिक्कैरपुनर्निवर्तिभि-
श्चिराय याथार्थ्यमलम्भि दिग्गजैः ॥

६५--अभीक्ष्णमुष्णैरपि तस्य सोष्मणः
सुरेन्द्रवन्दिश्वसितानिलैर्यथा ।
सचन्दनाम्भःकणकोमलैस्तथा
वपुर्जलार्द्रापवनैर्न निर्ववौ ॥

६६--तपेन वर्षाः शरदा हिमागमो
वसन्तलक्ष्म्या शिशिरः समेत्य च ।
प्रसूनक्लृप्तिं दधतः सदर्त्तवः
पुरेऽस्य वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः ॥

६७--अमानवं जातमजं कुले मनोः
प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः ।
मुमोच जानन्नपि जानकीं न यः
सदाभिमानैकधना हि मानिनः ॥

६२–रावण के लोकोंकी तिरस्कार करने वाली बड़े तेजोंकी महिमा से वारंवार तिरस्कार किये गये दुर्बल अग्नि ने दुःखसे उत्पन्न बाष्पोंसे द्विगुण धूमका समूह धारणकिया ॥

६३–उस उग्र (रावण) की सेवाकरने को अन्यों के मर्म स्थानोंको भेदन करना अपने सर्प के दोषको त्याग करते हुए सर्पों के नहीं टेढ़े चलने वाले कानों के धारण करने वाले कुलों से भुजंगता छोड़ी गई ॥

६४–उस (रावण) के हाथियोंके समूहों से चलाये गये गण्ड-स्थलों से रहित मद जल वाले दिशाओं के आश्रय करने वाले फिरनहीं लौटने वाले दिग्गजोंसे बहुत काल तक यथार्थता प्राप्तकीगई ॥

६५–ऊष्मा सहित उस (रावण) का शरीर अत्यन्त उष्णदेवताओंके इन्द्रकी बन्दिखाने में पड़ी हुई स्त्रियोंके श्वासों से जैसा सुखी हुआ वैसा चन्दनसम्बन्धी जलके बिन्दुओंसमेत कोमल जलसेगीले पंखोंकीपवनसे नहीं प्रसन्नहुआ ॥

६६–सदैव पुष्पोंकी सम्पत्तिको धारण करनेवाली ऋतु वर्षा ग्रीष्मसे हेमन्त शरद्ऋतुसे और शिशिर वसन्त लक्ष्मी से मिलके इस (रावण)के पुरमें कुटुम्बवाले निवासीपनेको प्राप्तहुई ॥

६७–मनुष्यनहीं अजमनुके वंशमें उत्पन्नहुए प्रभाववाले अपने नाशक होनेवाले जानतेहुएभी जिसरावणने सीताको त्यागनहीं किया क्योंकि मानीलोग सदैव अभिमानरूप मुख्य धनवाले होते हैं ॥

६८--स्मरत्यदो दाशरथिर्भवन्भवा-
नमुं वनान्ताद्वनितापहारिणम्।
पयोधिमावद्धचलज्जलाविलं
विलंघ्य लंकां निकषा हनिष्यति॥

६९--अथोपपत्तिं छलनापरोऽपरा-
मवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम्।
तिरोहितात्मा शिशुपालसंज्ञया
प्रतीयते सम्प्रति सोऽप्यसः परैः॥

७०--स वालआसीद्वपुषा चतुर्भुजो
मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः।
युवा कराक्रान्तमहीभृदुच्चकै-
रसंशयं सम्प्रति तेजसा रविः॥

७१--स्वयं विधाता सुरदैत्यरक्षसा-
मनुग्रहावग्रहयोर्यदृच्छया।
दशाननादीनभिराद्धदेवता-
विशीर्णवीर्य्यातिशयान् हसत्यसौ॥

७२--वलावलेपादधुनापि पूर्ववत्
प्रवाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।
सतीव योषित् प्रकृतिः सुनिश्चला
पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि॥

७३--तदेनमुल्लंघितशासनं विधे-
र्विधेहि कीनाशनिकेतनातिथिम्।
शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो
निपातनीया हि सतामसाधवः॥

६८—आपने रामहोनेपर (रामावतार) वनसे सीताके हरनेवाले इस (रावण) को बँधेहुए सेतुवाले चंचल जलवाले कंद्ले समुद्रको उल्लंघन करके लंकाके समीप माराथा यहक्या आप स्मरण करतेहैं ॥

६९—इसके उपरान्त इससमय छलनेमें तत्पर यह (रावण) नटके अन्यरूपके समान अन्यजन्मको प्राप्तहोकर शिशु-पाल सञ्ज्ञासे स्वरूपका छिपानेवालाहोकर वह (रावण) ही होनेपरभी अन्योंसे अन्य जानाजाताहै ॥

७०—वह (शिशुपाल) बालकहोनेपर शरीरसे चतुर्भुजथा मुख से पूर्णचन्द्रमाके समान त्रिनेत्रथा (इससमयतो) युवा-होनेपर करसे राजालोगोंका दबानेवाला होकर अधिक तेजसे निस्सन्देह सूर्य्य है ॥

७१—अपनी इच्छासे देवता दैत्य और राक्षसोंकेअनुग्रह औरको-पकाकरनेवाला यह (शिशुपाल) आराधनकियेहुए देवता लोगोंसे दियेगये बड़ेवीर्य्यवाले रावणादिकोंको हँसताहै ॥

७२—जीतनेकी इच्छा करनेवाले उस (शिशुपाल) से बलके गर्वसे अबभी प्रथमके समान जगत् दुःखित कियाजाता है पतिव्रता स्त्रीके समान अत्यन्त स्थिरस्वभाव अन्यजन्ममें भी पुरुषको प्राप्तहोताहै ॥

७३—तिसकारणसे ब्रह्माकी आज्ञाके उल्लंघन करनेवाले इस (शिशुपाल) को यमराजके घरका अतिथिकरो दुराचारसे प्राप्त आपत्तिवाले दुष्टसज्जनोंसे बधकरनेके योग्यहै ॥

७४—हृदयमरिवधोदयादुदूढ-
द्रढिम दधातु पुनः पुरन्दरस्य ।
घनपुलकपुलोमजाकुचाग्र-
द्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम् ॥

७५--ॐमित्युक्तवतोऽथ शार्ङ्गिण इति व्याहृत्य वाचन्नभ-
स्तस्मिन्नुत्पातिते पुरःसुरमुनाविन्दोःश्रियं बिभ्रति ।
शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यम्प्रति
व्योम्नीव भ्रुकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम् ॥

इतिश्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये कृष्णनारद-
सम्भाषणं नाम प्रथमः सर्गः १ ॥

७४-शत्रुनाशकेलाभसे स्वस्थइन्द्रका हृदय फिर घनपुलकवाले इन्द्राणीके कुचाग्रोंके शीघ्र आलिंगनके दबानेमें समर्थपने को धारणकरे ॥

७५-उन (नारद) के इसप्रकारसे वचन कहकर आकाशको जानेपर आगेचन्द्रमाकी शोभाको धारणकरनेवाले मुनिके वाक्यके अनन्तर ऐसाहोय यह अंगीकार करनेवाले क्रोध युक्त श्रीकृष्णके मुखमें आकाशके समान सर्वदा शत्रुओंके विनाशके सूचक केतुने भ्रुकुटीके छलसे स्थितिकी ॥

इतिश्रीमाघकृतौ शिशुपालबधे महाकाव्ये भाषानुवादे कृष्ण-नारदसंभाषणं नाम प्रथमस्सर्गः १ ॥

द्वितीयः सर्गः ।

चैद्यम्प्रति युद्धार्थं वलदेवोद्धवाभ्यां श्रीकृष्णस्य मिथः सम्मतः पुनरुद्धवद्वारा वलदेवस्य मतं खण्डयित्वा श्रीकृष्णमतोऽनुमोद्यते ॥

१--यियक्षमाणेनाहूतः पार्थेनाथ द्विषन्मुरम् ।
अभिचैद्यं प्रतिष्ठासुरासीत्कार्य्यद्वयाकुलः ॥

२--सार्द्धमुद्धवसीरिभ्या मथासावासदत्सदः ।
गुरुकाव्यानुगां विभ्रच्चान्द्रीमभिनभः श्रियम् ॥

३--जाज्वल्यमाना जगतः शान्तये समुपेयुषी ।
व्यद्योतिष्ट सभावेद्यामसौ नरशिखित्रयी ॥

४--रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तप्रतिमास्ते चकाशिरे ।
एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृता इव ॥

५--अध्यासामासुरुत्तुंगहेमपीठानि यान्यमी ।
तैरूहे केशरिक्रान्तात्रिकूटशिखरोपमा ॥

६--गुरुद्वयाय गुरुणोरुभयोरथ कार्य्ययोः ।
हरिर्विप्रतिषेधन्तमाचचक्षे विचक्षणः ॥

दूसरासर्ग ॥

शिशुपालपर चढ़ाई करनेके लिये उद्धव बलदेव औरश्रीकृष्ण
परस्पर सम्मत और उद्धवके द्वारा बलदेवजीके मतको ख
डनकरके श्रीकृष्णजीके मतका अनुमोदनकियाजाना ॥

१--इसके उपरान्त यज्ञ करनेकी इच्छा करते हुए युधिष्ठि
बुलाये गये और शिशुपालके प्रति प्रस्थान करनेकी इ
करते हुए श्रीकृष्णजी दोकार्य्योंसे व्याकुल हुए ॥
२--इसके उपरान्त श्रीकृष्णजी आकाश में बृहस्पति औ
हैं पीछेचलनेवाले जिसमें ऐसीचन्द्रमाकी शोभाको ध
करते हुए उद्धव और बलदेवजीके साथसभामेंप्राप्त
३--जगत्की शान्ति के लिये मिली हुई जाज्वल्यमान
पुरुषरूप अग्नियोंकी त्रयी (तीनका संघट्ट) सभारू
में प्रकाशित हुई ॥
४--रत्नोंके स्तम्भोंमें पड़ेहुए प्रतिबिम्बवाले वह (त
अकेलेभी सब ओरसे मानो पुरुषके समूहों से घि
शोभितहुए ॥
५--यह (तीनों) जिन ऊंचे सुवर्णों के आसनों पर सिं
उन (आसनों) ने सिंहोंसे दबाये हुए त्रिकूटा
शिखरोंकी उपमा धारणकी ॥
६--इसके उपरान्त वक्ता श्रीकृष्णजी ने दोनों गुरुओं
कार्य्योंका विरोधकहा ॥

७--द्योतितान्तःसभैः कुन्दकुड्मलाग्रदतः स्मितैः।
स्नपितेवाभवत्तस्य शुद्धवर्णा सरस्वती॥

८--भवद्गिरामवसरप्रदानाय वचांसि नः।
पूर्वरंगप्रसंगाय नाटकीयस्य वस्तुनः॥

९--करदीकृतभूपालो भ्रातृभिर्जित्वरैर्दिशाम्।
विनाप्यस्मदलम्भूष्णुरिज्यायै तपसः सुतः॥

१०--उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च॥

११--न दूये सात्वतीसूनुर्यन्मह्यमपराध्यति।
यत्तु दन्दह्यते लोकमदो दुःखाकरोति माम्॥

१२--मम तावन्मतमिदं श्रूयतामंग! वामपि।
ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धे कार्य्यवस्तुनि॥

१३--यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः॥

७--कुन्दकी कलियोंके अग्रभाग के समान दांतवाले उन (श्रीकृष्णजी) की सरस्वती सभाकेमध्यके प्रकाश करनेवाले हास्योंसे मानोंस्नान करवाईगईहोकर शुद्धवर्णवालीहुई॥

८--आपके बचनोंको अवसर देनेके लिये हमारे वचनहैं पूर्व रंग (जोकि नाटकके प्रथम विघ्नों के शान्त करनेके निमित्त नटलोग करते हैं) नाटक सम्बन्धी वस्तुके प्रवृत्त करनेके लियेहोताहै ॥

९--दिशाओं के जीतने वाले भाइयों से राजमंडलको कर देनेकेयोग्य करनेवाले युधिष्ठिर हमारे विनाभी यज्ञके निमित्तसमर्थ होनेवालेहैं ॥

१०--बढ़ताहुआशत्रु पथ्यकी इच्छा करनेवाले (पुरुष) से उदासनितापूर्वक नहीं देखने के योग्य है जिस कारणसे बढ़तेहुए रोग और वह शत्रु नीति जानने वालोंसे समान कहेगयेहैं ॥

११--सात्वतीसूनु (शिशुपाल) जोमुझसे अपराध करताहै इससे नहीं दुःखित होताहूं (किन्तु) जोलोकको जलाता है यही (जलाना) मुझको दुःखितकरताहै ॥

१२--तौमेरामत यहहै (और) आपदानोंका मत सुनो क्योंकि तत्त्वके अर्थका जानने वालाभी एक (अकेला) करने के योग्य काममें सन्देहको प्राप्तहोताहै ॥

१३--श्रीकृष्णजी जितना अर्थहै उतने पदवाली वाणीको कहके निवृत्तहुए क्योंकि महात्मा लोग स्वभावही से मितभाषण करने वाले होते हैं ॥

१४--ततः सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा ।
ओष्ठेन रामो रामौष्ठबिम्बचुम्बनचुंचुना ॥

१५--विवक्षितामर्थविदस्तत्क्षणप्रतिसंहृताम् ।
प्रापयन् पवनव्याधेर्गिरमुत्तरपक्षताम् ॥
१६--घूर्णयन्मदिरास्वादमदपाटलितद्युती ।
रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ ॥
१७--आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीम् ।
म्लापयन्नभिमानोष्णैर्वनमालां मुखानिलैः ॥

१८--दधत्सन्ध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः ।
द्विषद्द्वेषोपरक्तांगसंगिनीः स्वेदविप्रुषः ॥

१९--प्रोल्लसत्कुण्डलप्रोतपद्मरागदलत्विषा ।
कृष्णोत्तरासंगरुचं विदधच्चौतपल्लवीम् ॥

२०--ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवासया ।
मुखामोदं मदिरया कृतानुव्याधमुद्वमन् ॥
२१--जगाद वदनच्छद्मपद्मपर्य्यन्तपातिनः ।
नयन् मधुलिहः श्वैत्यमुदग्रदशनांशुभिः ॥

कुलकम् ।

२२--यद्वासुदेवेनादीन मनादीनवमीरितम् ।
वचसस्तस्य सपदि क्रिया केवलमुत्तरम् ॥

यहां से आठश्लोकोंकाअन्वय एकहै अर्थात् कुलकहै ॥

१४–तिसके पीछे बलदेवजी शत्रुके अपकारसम्बन्धी स्मरण के पश्चात्तापसे फड़कते हुए रामा (रेवती) के ओष्ठरूपी विम्बके चुम्बन से लब्ध ओष्ठसे लक्षित ॥

१५–कहनेको इच्छाकी गईउसीक्षणमें रोकगिई कार्य्यके जानने वालेउद्धवकी वाणीको सिद्धान्तपक्षपनेकोप्राप्तकरातेभये ॥

१६–मद्यपानके मदसे कुछ लाल द्युतिवाले रेवती के मुखके उच्छिष्टसे पवित्रपुटवाले नेत्रोंको घुमाते हुए ॥

१७–आलिंगनमें लुब्धबधूके स्तनों की कठिनताकी साक्षिणी वनमालाको अभिमानसे उष्ण मुखके पवनों से म्लान करतेहुए ॥

१८–संध्याके समय रक्त आकाशमें दीप्तिमान् ताराओं के समानशत्रुके द्वेष से रक्त शरीरमें संगवाले स्वेदके विन्दुओं कोधारण कररहे ॥

१९–अत्यन्त शोभायमान कुंडलों में पुही हुई माणिक्य की सलाकाओं की कान्तिसे नीले उत्तरीय वस्त्रकी कान्तिको आम्रके पत्तेकी दीप्तिके समान करते हुए ॥

२०–रेवती के मुखके भीतर स्थितिसे लब्ध सुगन्धिवाली मदिरासे संसर्ग करनेवाली मुखकी गन्धिकोवमनकरतेहुए॥

२१–मुखहै कपट जिसका ऐसे कमल (मुखरूपी कमल) पर्य्यन्त प्राप्तहोने वाले भ्रमरों को ऊंचीदांतोंकी किरणों से स्वेदताको प्राप्त करतेहुए बोले ॥

२२–श्रीकृष्णने नहीं दीन दोष रहित जो (वचन) कहा उस वचनका शीघ्र करना (ही) केवल उत्तर है ॥

२३--नैतल्लघ्वपि भूयस्या वचो वाचातिशय्यते ।
इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूषणम् ॥

२४--सङ्क्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः ।
सुविस्तरतरावाचो भाष्यभूता भवन्तु मे ॥
२५--विरोधिवचसो मूकान् वागीशानपि कुर्वते ।
जडानप्यनुलोमार्थान् प्रवाचः कृतिनां गिरः ॥

२६--षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः ।
ग्रन्थानधीत्य व्याकर्त्तुमिति दुर्मेधसोऽप्यलम् ॥
२७--अनिर्लोडितकार्य्यस्य वाग्जालं वाग्मिनो वृथा ।
निमित्तादपराद्धेषोर्धानुष्कस्येव वल्गितम् ॥

२८--सर्वकार्य्यशरीरेषु मुक्त्वांगस्कन्धपञ्चकम् ।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्॥
२९--मन्त्रो योध इवाधीरः सर्वांगैः संवृतैरपि ।
चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशंकया ॥

३०--आत्मोदयः परग्लानिर्द्वयन्नीतिरितीयती ।
तदूरीकृत्य कृतिभिर्वाचस्पत्यं प्रतायते ॥

३१--तृप्तियोगः परेणापि महिम्ना न महात्मनाम् ।
पूर्णश्चन्द्रोदयाकांक्षी दृष्टान्तोऽत्र महार्णवः ॥

२३–थोड़ाभी यहवचन बड़ीवाणीसे नहीं उल्लंघन कियाजाताहै क्योंकि इंधन के समूहोंकी जलाने वाली भी अग्नि तेज से सूर्य्यको नहीं उल्लंघन करती है ॥

२४–इस कारण से अत्यन्त विस्तृत मेरी वाणी संक्षिप्त भी अर्थसे भारी इसके भाष्यके समानहोय ॥

२५–कुशलों (पुरुषों) की वाणी प्रतिकूल कहने वाले वागीशों कोभी मूक करती हैं अनुकूल कहने वाले जड़ोंको भी प्रगल्भ वचन वाले करती हैं ॥

२६–मन्दबुद्धिवाले भी ग्रन्थोंको पढ़के गुणछः शक्ति तीनसिद्धि और उदय तीन यह व्याख्यान करने को समर्थ होते हैं ॥

२७–कार्य्यको नहीं जानने वाले वाणियोंकी युक्तिमें चतुर के वचनोंका आडम्बर लक्ष्यसे स्खलित बाणवाले धनुर्द्धारी के वल्गित (बलबलाने) के समान निष्फल ॥

२८–संपूर्ण शरीररूपी कार्य्योंमें स्कन्धरूपी पांच अंगोंकोछोड़कर वौद्धोंको आत्माके समान राजालोगोंकोअन्य मन्त्रनहीं है॥

२९–गुप्त संपूर्ण अंगोंसे उपलक्षित (संपूर्ण अंगोंसे छिपाहुआ) भी मन्त्र कायर योद्धाके समान अन्योंसे भेदकी शंकासे बहुत कालतक स्थित होने को नहीं समर्थ होता ॥

३०–अपना उदय शत्रुकी हानि यह दो इतनी नीति है इन दोनों को अंगीकार करके कुशल (लोग) वाणियों की चतुरता को विस्तार करते हैं ॥

३१–महात्माओं को बड़े भी ऐश्वर्य से सन्तोष का लाभ नहीं होताहै यहां पूर्णभी होकर चन्द्रमाके उदयको चाहनेवाला समुद्र दृष्टान्त है ॥

३२--सम्पदा सुस्थिरम्मन्यो भवति स्वल्पयापि यः ।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्द्धयति तस्य ताम् ॥

३३--समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः ।
प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रविः ॥

३४- विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा ।
अनीत्वा पंकतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते ॥

३५ -ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत् कुतः सुखम् ।
पुरः क्लिश्नाति सोमं हि सैंहिकेयोऽसुरद्रुहाम् ॥

३६--सखा गरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्य्यतः ।
स्यातामभित्रे मित्रौ च सहजप्राकृतावपि ॥

३७--उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा ।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः ॥

३८--त्वया विप्रकृतश्चैद्यो रुक्मिणीं हरता हरे !
बद्धमूलस्य मूलंहि महद्वैरतरोः स्त्रियः ॥

३९--त्वयि भौमं गते जेतुमरौत्सीत्स पुरीमिमाम् ।
प्रोषितार्य्यमणं मेरोरन्धकारस्तटीमिव ॥

३२–जो थोड़ीभी सम्पत्तिसे अपने को सुस्थिर मानताहै (संतोषयुक्त होता है) उसकी उस सम्पत्तिको कृतार्थ हुआ विधि भी नहीं बढ़ाता है यह मैं मानता हूं ॥

३३-मानीलोगशत्रुओंकोमूलसमेतविनानाशकिये नहींउदयहोते हैं तहांबड़ेभारी अन्धकारके नाशकरनेवालेसूर्य्यउदाहरणहैं ॥

३४–शत्रुको विना नाश किये प्रतिष्ठा दुर्लभ है क्योंकि जल धूलिको कीच किये विना नहीं ठहरता ॥

३५–एक भी शत्रु जब तक स्थित है तब तक सुख कैसे क्योंकि राहु देवताओंके आगे चन्द्रमाको क्लेश देता है ॥

३६–कृत्रिम (क्रियासे सिद्ध) मित्र और शत्रु प्रबल होते हैं जिसकारणसे वह (कृत्रिममित्र और शत्रु) कार्य्य (उपकार अपकाररूप) से (सिद्धहोते हैं) सहज मित्र (मामाफूफू के भाई)प्राकृतशत्रु(चचेरेभाई)भी शत्रु और मित्र होते हैं ॥

३७–उपकार करनेवाले शत्रु (सहज और प्राकृत) सेभी सन्धि करनी योग्यहै अपकार करनेवाले मित्र (सहज और प्राकृत) सेभी सन्धि न करनी चाहिये क्योंकि उपकार और अपकारही उन (मित्र और शत्रु) का लक्षण है ॥

३८–हे कृष्ण रुक्मिणी को हरतेहुए तुमने शिशुपालसे विरोध कियाथा क्योंकि जमीहुई जड़वाले वैररूपी वृक्षका स्त्रियां (हीं) प्रधानकारण हैं ॥

३९–आपके नरकासुरके जीतनेके निमित्त जानेपर उस (शिशुपाल) ने यह (पुरी) चलेगये हैं सूर्य्य जिससे ऐसे सुमेरु के शिखरको अन्धकारके समान रोकीथी ॥

४०--आलप्यालमिदं बभ्रोर्यत्स दारानपाहरत् ।
कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः ॥

४१--विराद्ध एवं भवता विराद्धा बहुधा च नः ।
निर्वर्त्यतेऽरिः क्रियया सः श्रुतश्रवसः सुतः ॥

४२--विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते ।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम् ॥
४३--मनागनभ्यावृत्त्या वा कामं क्षाम्यतु यः क्षमी ।
क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः ॥

४४--अन्यदाभूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः ।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव ॥
४५--माजीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति ।
तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः ॥

४६--पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति ।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥
४७--असम्पादयतः कञ्चिदर्थं जातिक्रियागुणैः ।
यदृच्छाशब्दवत् पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम् ॥

४८--तुंगत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाधता ।
अलंघनीयताहेतुरुभयन्तन्मनस्विनि ॥

४०–जो उस (शिशुपाल) ने वभ्रु (यादवोंका कोईभेद) की स्त्रियां हरीथीं यह कहना न चाहिये जिसकारणसे पापोंका उच्चारणभी अनर्थके लिये समर्थहै ॥

४१–इस प्रकार आपसे विरोधकिया गया और बहुधा हमलोगों का अपकार करने वाला श्रुतश्रवाका पुत्र वह (शिशुपाल) क्रियासे शत्रु सिद्धहै ॥

४२–जो मनुष्य क्रोधवान् शत्रुसे वैर करके उदासीन (बेपरवा) रहतेहैंवहमनुष्यतृणमेंअग्निडालकरवायुकेसन्मुखसोतेहैं ॥

४३–जो क्षमावान् है (वह) स्वल्प अथवा एक वार अत्यन्त क्षमाकरे (परन्तु) वारंवार अपराधकरने वाले को कौन सह सक्ता है ॥

४४–और समय स्त्रीको लज्जाके समान पुरुषकी क्षमा भूषणहै अनादरमें तो रतिमें धृष्टताके समान पराक्रम भूषण है ॥

४५–जो अपकार करने वालेके अपमानके दुःखसे संतप्तभी कुत्सित जीनेवाला होकर जीताहै उस माताके क्लेशकरने वाले उस (पुरुष) का जन्मही नहो ॥

४६–जो धूलिपैरसे ताड़ितहुई उड़कर शिरपर चढ़तीहै वहधूल अपमान होनेपर भी स्वस्थ (मनुष्य) से श्रेष्ठहै ॥

४७–जाति क्रिया गुणों से किसी प्रयोजन को नहीं सिद्ध करते हुए पुरुष का जन्म इच्छा से कल्पना कियेहुए शव्द के समान केवल नामही के लिये है ॥

४८–पर्व्वत में उंचाई है गंभीरता नहीं है समुद्रमें गंभीरता है उंचाई नहीं है वीर में तो नहीं उल्लंघन करने का हेतु वह दोनों (उंचाई और गंभीरता हैं) ॥

४९--तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत् ।
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम् ॥
५०--स्वयं प्रणमतेऽल्पेऽपि परवायावुपेयुषि ।
निदर्शनमसाराणां लघुर्बहुतृणं नरः ॥
५१--तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गण्यते ।
पञ्चमः पञ्चतपसस्तपनो जातवेदसाम् ॥
५२--अकृत्वा हेलया पादमुच्चैर्मूर्द्धसु विद्विषाम् ।
कथंकारमनालम्ब्य कीर्तिर्द्यामधिरोहति ॥
५३--अंकाधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः ।
केशरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः ॥
५४--चतुर्थोपायसाध्येतु रिपौ सान्त्वमपक्रिया ।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति ॥

५५--सामवादाः सकोपस्य तस्य प्रत्युत दीपकाः ।
प्रतप्तस्येव सहसा सर्पिषस्तोयबिन्दवः ॥

५६--गुणानामायथातथ्यादर्थं विप्लावयन्ति ये ।
अमात्यव्यञ्जना राज्ञां दूष्यास्ते शत्रुसंज्ञिताः ॥

५७--स्वशक्त्युपचये केचित्परस्य व्यसनेऽपरे ।
यानमाहुस्तदासीनं त्वामुत्थापयति द्वयम् ॥

४९–जोराहु समान अपराधमें भी सूर्य्यकोदेरमें ग्रसताहै (और) चन्द्रमाकोशीघ्रग्रसताहै यहमृदुताकास्फुट(प्रत्यक्ष)फलहै ॥

५०–दुर्बलों का दृष्टान्त तृणके समान पुरुषार्थ रहित पुरुष थोड़े भी वायुरूपी शत्रुके वर्त्तमान होनेपरआपही नम्र होताहै ॥

५१–दूरमें स्थितभी तेजस्वी तेजस्वियों के मध्यमें गिनाजाता है क्योंकि पंचाग्नि तापनेवालेकोसूर्य्य पांचवीं अग्निहोताहै॥

५२–उन्नत शत्रुलोगों के शिरपर क्रीड़ा (मात्र) ही से पैरको विनारक्खे आधाररहित कीर्त्ति कैसे स्वर्ग में चढ़ती है ॥

५३–गोदीमें मृगकारखनेवालाचन्द्रमा मृगलांछन और निष्ठुरता से मृगकेयूथोंका मारनेवाला सिंह मृगाधिप (विख्यातहै)॥

५४–चतुर्थ उपाय (दण्ड) से साध्य शत्रुमें साम अपकार है क्योंकि स्वेदके योग्य आम ज्वरको कौन पण्डित जलसे सींचता है (कोई नहीं) ॥

५५--कोप वाले उस (शिशुपाल) के (विषयमें) सामका कहना तपेहुए घीको जलके विन्दुके समान उलटा प्रज्वल करने वाला होगा ॥

५६–गुणों की अयथार्थता (मिथ्यापने) से जो कार्य्य की हानि करते हैं वह मन्त्रियों के चिह्नवाले शत्रु यह नाम वाले राजाओं को निन्दा करने के योग्य हैं ॥

५७–कोई (वृद्ध) अपनी शक्तिके बढ़ने पर यात्रा करना कहतेहैं (और) अन्य (वृद्ध) शत्रुकी विपत्तिमें यात्रा करना कहते हैं वह दोनों उद्युक्त आपको प्रेरणा करतेहैं ॥

५८—लिलंघयिषतो लोकानलंघ्यानलघीयसः।
यादवाम्भोनिधीन् रुन्धे वेलेव भवतः क्षमा॥

५९—विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।
फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि॥

६०—हते हिडिम्बरिपुणा राज्ञि द्वैमातुरे युधि।
चिरस्य मित्रव्यसनी सुदमो दमघोषजः॥

६१—नीतिरापदि यद्गम्यः परस्तन्मानिनो ह्रिये।
विधुर्विधुन्तुदस्येव पूर्णस्तस्योत्सवाय सः॥

६२—अन्यदुच्छृंखलं सत्त्वमन्यच्छास्त्रनियंत्रितम्।
सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः॥

६३—इन्द्रप्रस्थगमस्तावत् कारि मा सन्तु चेदयः।
आस्माकदन्तिसान्निध्याद्वामनीभूतभूरुहः॥

६४—निरुद्धवीवधासारप्रसारा गा इव व्रजम्।
उपरुन्धन्तु दाशार्हाः पुरीम्माहिष्मतीं द्विषः॥

५८—लोकों के उल्लंघन करने की इच्छा कररहे नहीं उल्लंघन करने के योग्य बड़े भारी समुद्रों के समान यादवों को किनारे के समान आपकी क्षमा रोकती है ॥

५९—सेनाका विजय उदासीन फलके भोग करने वाले आपमें है सांख्य शास्त्रकेकहेहुए आत्मामें बुद्धिके भोगके समान व्यवहार कीजिये ॥

६०—भीमसेनसे युद्धमें राजा जरासन्ध के मारेजानेपर बहुत कालसे मित्रकी विपत्तिवाला शिशुपाल सुखसे दमन (मारनेके) योग्यहै ॥

६१—शत्रु विपत्तिमें गमनकरने के योग्यहै यह जो नीतिहै वह मानी (पुरुष) को लज्जाके निमित्तहै किन्तु पूर्ण वह(शत्रु) उस(मानी)केराहुको चन्द्रमाके समान उत्सवकेनिमित्तहै॥

६२—अनर्गल अन्यहै और शास्त्रसे नियत कियागया बल अन्यहै तेज और अंधकारका सामानाधिकरण्य (समानाश्रयपन) कैसे (होसक्ताहै) ॥

६३—इन्द्रप्रस्थका गमन तो मतकरो चेदिदेश हमारे हाथियों की निकटतासे वामन रूप होगये हैं वृक्ष जिनके ऐसेहोवें (अर्थात् चेदिदेशों की यात्राकरनी चाहिये) ॥

६४—यादव लोग रुकेहुए वीवध (धान्यादिकों की प्राप्ति) आसार (मित्रोंकाबल) और प्रसार (तृणकाष्ठादिकों का प्रवेश) वाले गोशालामें गौओं के समानमाहिष्मतीपुरी में शत्रुओंकोरोकें ॥

६५—यजतां पाण्डवः स्वर्गमवत्विन्द्रस्तपत्विनः ।
वयं हनाम द्विषतः सर्वः स्वार्थं समीहते ॥

६६—प्राप्यतां विद्युतां सम्पत् सम्पर्कादर्करोचिषाम् ।
शस्त्रैर्द्विषच्छिरश्छेदप्रोच्छलच्छोणितोक्षितैः ॥

६७—इति संरम्भिणो वाणीर्बलस्यालेख्यदेवताः ।
सभाभित्तिप्रतिध्वानैर्भयादन्ववदन्निव ॥

६८—निशम्य ताः शेषगवीरभिधातुमधोक्षजः ।
शिष्याय बृहतां पत्युः प्रस्तावमदिशद् दृशा ॥
६९—भारतीमाहितभरामथानुद्धतमुद्धवः ।
तथ्यामुतथ्यानुजवज्जगादाग्रे गदाग्रजम् ॥

७०—सम्प्रत्यसाम्प्रतं वक्तुमुक्ते मुसलपाणिना ।
निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम् ॥
७१—तथापि यन्मय्यपि ते गुरुरित्यस्ति गौरवम् ।
तत्प्रयोजककर्तृत्वमुपैति मम जल्पतः ॥
७२—वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव ।
अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता ॥
७३—बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते ।
अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः ॥
७४—म्रदीयसीमपि घनामनल्पगुणकल्पिताम् ।
प्रसारयन्ति कुशलाश्चित्रां वाचं पटीमिव ॥

६५--युधिष्ठिर यज्ञकरें इन्द्रस्वर्ग की रक्षाकरें सूर्य्यतपें (और) हम शत्रुओं को मारें क्योंकि सम्पूर्ण (मनुष्य) अपने २ प्रयोजन को चाहते हैं ॥

६ ६--शत्रुओं के शिरोंके कटने से निकले हुए रुधिर से सींचेहुए शस्त्र सूर्य्य की किरणों के मिलने से बिजिलीकी सम्पत्ति को प्राप्तहोवें ॥

६७--इस प्रकार क्रोधयुक्त बलभद्र की बाणियोंका चित्रमें लिखे हुए देवता लोगों ने सभाकी दीवारोंके झाँई शब्दके द्वारा भयसे मानों अनुमोदन (अनुमतिदेना) किया ॥

६८--श्रीकृष्णजी ने बलभद्र के वचन सुनकर बृहस्पति के शिष्य (उद्धवजी)को कहनेके निमित्त दृष्टिसे अवसर दिया

६९--इस के उपरान्त उद्धवजी अर्थके गौरवसे युक्त यथार्थ वाणी गर्वसे रहित होकर श्रीकृष्णजीके आगे बृहस्पतिके समानबोले ॥

७०--इस समय बलभद्रजीके कहनेपर कहना अयोग्य है पत्रसे अर्थके ठीक होजानेपर सन्देश कहकर क्या ॥

७१--तिसपर भी तुम्हारा मुझमें भी गुरू यह जो गौरव है वह कहतेहुए मेरे प्रेरकपनेको प्राप्त होता है ॥

७२--कुछ वर्णों से गुँथे हुए शब्द समूह की स्वरों से गुँथे हुए गानके समान रचना अनन्त है ॥

७३--अपनी इच्छासे असंगत बहुत भी यथेष्ट कहाजाता है परन्तु पदार्थोंकी संगतिवाला प्रबन्ध कहना कठिनहै ॥

७४--कुशललोग अतिकोमल अर्थसे भरीहुई बहुतगुणोंसेकल्पित विचित्र वाणीको साड़ी(वस्त्रविशेष) के समानफैलातेहैं ॥

७५—विशेषविदुषः शास्त्रं यत्तवोद्ग्राह्यते पुरः।
हेतुः परिचयस्थैर्य्ये वक्तुर्गुणनिकैव सा॥

७६—प्रज्ञोत्साहावतः स्वामी यतेताधातुमात्मनि।
तौ हि मूलमुदेष्यन्त्या जिगीषोरात्मसम्पदः॥

७७--सोपधानान्धियन्धीराः स्थेयसीं खट्वयन्ति ये।
तत्रानिशं निषण्णास्ते जानते जातु न श्रमम्॥

७८--स्पृशन्ति शरवत्तीक्ष्णास्तोकमन्तर्विशन्ति च।
बहुस्पृशापि स्थूलेन स्थीयते बहिरश्मवत्॥

७९--आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवंति च।
महारम्भाः कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः॥

८०--उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः।
हन्ति नोपशयस्थोऽपि शयालुर्मृगयुर्मृगान्॥

८१--उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु द्वादशस्वपि।
जिगीषुरेको दिनकृदादित्येष्विव कल्पते॥

७५–जो विशेष जाननेवाले आपके आगे नीतिशास्त्र उपन्यास (प्रकट) कियाजाता है वह वक्ताकी अभ्यासकी दृढता में कारण दोवार कहनाही है ॥

७६–इस कारणसे स्वामी मन्त्र और उत्साहकी शक्तिको अपने में सम्पादनकरनेका यत्नकरे जिस कारणसे(वह मन्त्र और उत्साहकी शक्ति) बढ़ती हुई जीतनेकी इच्छा करनेवाले की अपनी संपत्तिका कारण है ॥

७७–जो धीर युक्तसे युक्त अत्यन्त स्थिर बुद्धिको खट्वा बनातेहैं वह (धीर) वहां वे परिश्रम स्थित हुए कभी भी खेदको नहीं जानते हैं ॥

७८--तीक्ष्ण बुद्धिमान्लोग स्वल्पही स्पर्श करते हैं और भीतर प्रवेश करते हैं और बहुत स्पर्श करनेवाला मन्द पाषाणके समान बाहर स्थित रहता है ॥

७९--अज्ञलोग तुच्छ आरंभ करते हैं और अत्यन्त व्यग्र होते हैं बुद्धिमान्लोग बड़ा उद्योग करते हैं और व्याकुल नहीं होते हैं ॥

८०--उपाय को प्राप्तभी प्रमादयुक्तके प्रयोजन नष्ट होते हैं क्योंकि सोता हुआ व्याध उपशय (मृगों के मार्ग में बैठे हुये व्याधके छिपने का स्थान) में स्थितभी मृगों को नहीं मारता है ॥

८१--जीतने की इच्छा करता हुआ एकहीबारह राजाओं(सूर्यों) में दिनके करनेवाले सूर्य्यके समान उत्साहको नहीं त्याग करताहुआ उदय के लिये समर्थ होताहै ॥

८२–बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यंगो घनसंवृतिकञ्चुकः ।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः ॥

८३–तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः ।
नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः ॥

८४–कृतापचारोऽपि परैरनाविष्कृतविक्रियः ।
असाध्यः कुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा ॥

८५–मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते ।
प्रदीपः स्नेहमादत्ते दशयाभ्यन्तरस्थया ॥

८६–नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ॥

८७–स्थायिनोऽर्थे प्रवर्त्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा ।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः ॥

८८–तन्त्रावापविदा योगैर्मण्डलान्याधितिष्ठता ।
सुनिग्रहा नरेंद्रेण फणीन्द्रा इव शत्रवः ॥

८२--बुद्धिरूपी शस्त्रवाला राज्यके अंगरूपी सेना वाला भेदकरने के योग्य नहीं मन्त्रके छिपाव रूपी कवचवाला चार(भेदी) रूपी नेत्रवाला दूतरूपी मुखवाला राजा कोई पुरुषहोताहै॥

८३--कालके जानने वाले राजाको तेज अथवाक्षमा एकही नियमनहीं है क्योंकि रस और भावके जानने वाले कविको केवल ओज (काव्यमेंदृढप्रबन्ध) अथवा केवल प्रसाद [काव्य का सुगम प्रबन्ध) नहीं है ॥

८४--शत्रुओंसे कियेगये अपचार (बुराई) वाला विकारका नहीं प्रकट करने वाला रोगके समान असाध्य होकर समय प्राप्तहोनेपर कोप करता है ॥

८५--कोमल वस्तुसे छिपाहुआ तेज अर्थोंके भोग करनेको समर्थ होता है क्योंकि दीपकमध्य में स्थितवर्त्ती से तैलको ग्रहण करता है ॥

८६--विद्वान् प्रारब्धवादीपनकोही नहीं अवलम्बनकरता(और) केवल पुरुषार्थमें भी नहीं स्थित होता किन्तु शब्द और अर्थ को सत्कविके समान दोनों (प्रारब्ध और पुरुषार्थ) की अपेक्षा करता है ॥

८७--रसरूप एक स्थायी * भावके प्रयोजनमें बहुत से व्यभिचारी भाव जैसे प्रवृत्त होते हैं वैसेही स्थिर एकही नायक के प्रयोजनमें बहुतसे राजा लोग प्रवृत्त होते हैं ॥

८८--अपने औरशत्रुकेराज्यसंबन्धी चिन्तनके जानने वालेसामादिक उपायोंसेअपने और शत्रुके राज्यको आक्रमणकरतेहुए राजासे सर्पोंकेसमानशत्रु सुखसे ग्रहणकरनेकेयोग्यहोतेहैं॥

---

*१इतिहास,क्रोध,शोक,उत्साह,भय,जुगुप्सा,विस्मय,शम यहस्थायीभावकहातेहैं

८९--करप्रचेयामुत्तुंगः प्रभुशक्तिं प्रथीयसीम् ।
प्रज्ञाबलबृहन्मूलः फलत्युत्साहपादपः ॥

९०--अनल्पत्वात्प्रधानत्वाद्वंशस्येवेतरे स्वराः ।
विजिगीषोर्नृपतयः प्रयान्ति परिवारताम् ॥

९१--अप्यनारभमाणस्य विभोरुत्पादिताः परैः ।
व्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः ॥

९२--यातव्यपार्ष्णिग्राहादिमालायामधिकद्युतिः ।
एकार्थतन्तुप्रोतायां नायको नायकायते ॥

९३--षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत शक्त्यपेक्षं रसायनम् ।
भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवन्ति च ॥

९४--स्थाने शमवतां शक्त्या व्यायामे वृद्धिरङ्गिनाम् ।
अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसम्पदः ॥

९५--तदीशितारं चेदीनां भवांस्तमवमंस्त मा ।
निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव ॥

९६--मा वेदि यदसावेको जेतव्यश्चेदिराडिति ।
राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम् ॥

८९--बहुत उन्नत मन्त्र शक्तिरूपी प्रधान मूलवाला उत्साहरूपी वृक्ष करसे बढ़ने के योग्य बड़ी प्रभुशक्ति (तेजविशेष) को उत्पन्न करता है ॥

९०--बुद्धि और उत्साहादिकों के अधिकहोनेसे और राजमण्डल के जानने से बांसके अन्य स्वरों के समान जीतने वाले के अन्य राजा लोग कुटुम्बिता को प्राप्त होते हैं ॥

९१--आप कुछनहीं करते हुए भी प्रभुके अन्य राजाओंसे उत्पन्न किये हुए प्रयोजन आकाश के शब्दों के समान विशेषण-पनऔरगुणपने को प्राप्तहोते हैं ॥

९२--एक प्रयोजनरूपी सूत्रमें पिरोही हुई गमन करने के योग्य और पीछे आयेहुए शत्रु आदिकोंकी मालामें बड़ेतेजवाला नायकमणिके समान शोभित होता है ॥

९३--शक्तियोंकी अपेक्षा करनेवालाहोकर छःगुणरूपी औषधको सेवन करै इसप्रकार इसकेअंगस्थिर और बलवान्होतेहैं ॥

९४--स्थानमें राजा लोगोंकी शक्तिसे व्यापार होनेपर वृद्धिहो-ती है शक्तिके उल्लंघन पूर्वक व्यापार अत्यन्त हानिका आदिकारण होता है ॥

९५--तिसकारण से उस शिशुपालका आप मत अनादर करो क्यों कि जो (शिशुपाल) स्वरोंको उदात्त स्वर (ऊंचेस्वर) के समान शत्रुओं को एकपदमें मारता है ॥

९६--यह चेदि देशोंका राजा अकेला जीतलिया जायगा यहमत समझो (जिसकारण से) यह (शिशुपाल) रोगोंका रा-जयक्ष्मा के समान राजालोगोंका समूह है ॥

९७--सम्पादितफलस्तेन सपक्षः परभेदनः ।
कार्मुकेणेव गुणिना बाणः सन्धानमेष्यति ॥

९८--ये चान्ये कालयवनशाल्वरुक्मिमद्रुमादयः ।
तमःस्वभावास्तेऽप्येनं प्रदोषमनुयायिनः ॥

९९--उपजापः कृतस्तेन तानाकोपवतस्त्वयि ।
आशु दीपयिताल्पोऽपि साग्नीनेधानिवानिलः॥

१००--बृहत्सहायः कार्य्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति ।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा ॥

१०१--तस्य मित्राण्यमित्रास्ते ये च ये चोभये नृपाः ।
अभियुक्तन्त्वयैनन्ते गन्तारस्त्वामतःपरे ॥

१०२--मखविघ्नाय सकलमित्थमुत्थाप्य राजकम् ।
हन्त जातमजातारेः प्रथमेन त्वयारिणा ॥

१०३--सम्भाव्य त्वामतिभरक्षमस्कन्धं स बान्धवः ।
सहायमध्वरधुरां धर्मराजो विवक्षते ॥

९७–सिद्ध है फल (लाभ और बाणका अग्र भाग) जिसका पक्ष (मित्र और बाणके पंख) करके सहित शत्रुओं का भेद करनेवाला बाण (बाणासुर और तीर) गुणी (गुण वान् और चढ़ाहुआ) धनुष् के समान उस (शिशुपाल) के साथ सन्धिको प्राप्तहोगा ॥

९८–और जो अन्य कालयमन शाल्व रुक्मि द्रुमादिक राजा लोग तमोगुणवाले वहभी दुष्ट इसी (शिशुपाल) के अनुयायी (अनुचर) होंगे ॥

९९--उस (शिशुपाल)से कियागया थोड़ाभी भेद तुम्हारे ऊपर क्रोध संयुक्त उन (बाणादिकों) को अग्नि संयुक्त इंधन को पवनके समान शीघ्र प्रज्वलित करेगा ॥

१००--बड़ी सहायवाला अत्यन्त क्षुद्रभी कार्य्यके अन्तको प्राप्त होता है (जैसे) पहाड़ी नदी बड़ीनदी से मिलकर समुद्र में प्राप्त होती है ॥

१०१--और जो उस (शिशुपाल) के मित्र (राजा) हैं और जो तुम्हारे शत्रु (राजालोग) हैं वह दोनों तुमसे रोके हुये इस (शिशुपाल)को प्राप्तहोंगे इनसे अन्य (तुम्हारे मित्र और शिशुपाल के शत्रु तुमको प्राप्तहोंगे ॥

१०२--इसप्रकार यज्ञके विघ्न के लिये सम्पूर्ण राजालोगों को क्षोभित करके हन्त (खेदकावाक्य) अजात शत्रु (युधिष्ठिर) के तुम प्रथम शत्रु हुये ॥

१०३--बन्धु वह धर्मराज युधिष्ठिर अत्यन्त भारके लिये समर्थ स्कन्ध (कंधे)वालेतुमको सहायक विचारकर यज्ञकेभार को उठानेकी इच्छा करते हैं ॥

१०४--महात्मानोऽनुगृह्णन्ति भजमानान् रिपूनपि ।
सपत्नीः प्रापयन्त्यब्धिं सिन्धवो नगनिम्नगाः ॥

१०५--चिरादपि बलात्कारो बलिनः सिद्धयेऽरिषु ।
छन्दानुवृत्तिदुःसाध्याः सुहृदो विमनीकृताः ॥

१०६--मन्यसेऽरिवधः श्रेयान् प्रीतये नाकिनामिति ।
पुरोडाशभुजामिष्टमिष्टंकर्त्तुमलन्तराम् ॥

१०७--अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुह्वति ।
शोभैव मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना ॥

१०८--सहिष्ये शतमागांसि सूनोस्त इति यत्त्वया ।
प्रतीक्ष्यन्तत्प्रतीक्ष्यायै पितृष्वस्रे प्रतिश्रुतम् ॥

१०९--तीक्ष्णा नारुन्तुदा बुद्धिः कर्म शान्तं प्रतापवत् ।
नोपतापि मनः सोष्म वागेका वाग्मिनः सतः ॥

११०--स्वयंकृतप्रसादस्य तस्याह्नो भानुमानिव ।
समयावधिमप्राप्य नान्तायालम्भवानपि ॥

१०४--महात्मालोग शरणागत शत्रुओं परभी अनुग्रह करते हैं बड़ी नदियां एक पतिवाली पहाड़ी नदियों को समुद्रमें प्राप्त करती हैं ॥

१०५--बलवान् का शत्रुओं में दंड बहुत कालमें भी वशीभूत करने के लिये होता है रूठेहुए मित्र चित्तके अनुरोधसे भी वशीभूत नहीं होते ॥

१०६--देवताओंकी प्रीति के लिये शत्रुका बध अधिक श्रेय है यदि ऐसा मानते हो तो पुरोडाश के भोजन करने वालों (देवता लोगों) का अभीष्ट करने को यज्ञ अत्यन्त पर्याप्त (योग्य) है ॥

१०७--अमृत नाम सज्जन लोग अग्निमें जो (पुरोडाशादिक) हवन करतेहैं (वही है) मंदराचल रूप मथानीसे मथेगये समुद्रका वर्णन शोभामात्र है ॥

१०८--पूजाकरने के योग्य फूफी से तुम्हारे पुत्रके सौ अपराध सहूंगा यह जो तुमने प्रतिज्ञा कीथी वह पालनी (करनी) चाहिये ॥

१०९--सत्पुरुष की बुद्धि तीक्ष्णहो (परन्तु) मर्मकी छेदन करने वाली नहो व्यापार तेजस्वी (भयकादेनेवाला) हो (परन्तु) शान्तहो मन ऊष्मा सहित हो (परन्तु) संताप करनेवाला न हो कहने वाले कीवाणी एकरूपहो॥

११०--सूर्य्यके समान दिनके स्वयं किया है प्रसाद (अनुग्रह और प्रकाश) जिसपर (ऐसे) उस (शिशुपाल) के अन्तके लिये समयकी अवधिको विना प्राप्तहुए आपभी नहीं समर्थ हैं ॥

१११--कृत्वा कृत्यविदस्तीर्थेष्वन्तः प्रणिधयः पदम् ।
विदांकुर्वन्तु महतस्तलं विद्विषदम्भसः ॥

११२--अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥

११३--अज्ञातदोषैर्दोषज्ञैरुद्दूष्योभयवेतनैः ।
भेद्याः शत्रोरभिव्यक्तशासनैः सामवायिकाः ॥

११४--उपेयिवांसि कर्त्तारः पुरीमाजातशात्रवीम् ।
राजन्यकान्युपायज्ञैरेकार्थानि चरैस्तव ॥

१११--कृत्यविद (कार्य्यके जाननेवाले और विधिकेजाननेवाले) गूढचारी तीर्थ (मंत्रादिक अठारह स्थान और जलकी सीढ़ी) में पद (स्थान और पैर का धरना) कर के महान् (अथाह और पूज्य) शत्रुरूपी जलके तल (स्वरूप और परिमाण) कोजाने ॥

११२--अनुत्सूत्रपदन्यासा (नीति पूर्व्वक संपूर्णव्यवहारवाली और सूत्रके अक्षरोंही से संपूर्ण अर्थोंकी प्रतिपादन करने वाली वृत्तिसेयुक्त) सद्वृत्ति (सुन्दर भृत्यादिकोंकी जीविकावाली और सुंदरकाशिका नाम व्याख्यानके ग्रन्थ वाली) सन्निबंधना (सुन्दर क्रियाओंके अन्तमें भृत्यादिकों के निबन्धवाली और सुन्दर भाष्यवाली) राजनीतिअपस्पशा (दूतसेरहित और शास्त्रारंभकी प्रकटकरने वाली भूमिकासे रहित) व्याकरण विद्याके समान नहीं शोभित होती है ॥

११३--अज्ञात दोष (शत्रुओं से जिनके कर्म अज्ञात हैं) दोषज्ञ (पराये मर्मके जानने वाले) शासनों (मंत्री आदिकों के अविश्वासके कराने वाले कूटलिखितों) के प्रकट करने वाले दोनों स्थानों (स्वामी और शत्रुओंके स्थानों) में जीविका के ग्रहण करने वालों से शत्रुके सामवायिक (मंत्रीआदिक)दोषलगाकर भेद्य (भेदकरानेकेयोग्यहैं) ॥

११४--उपायके जानने वाले तुम्हारे गूढचारियों से एकार्थ (तुम्हारे साथ एक प्रयोजन वाले) युधिष्ठिरकी पुरीमेंप्राप्त राजा लोग किये जांयगे ॥

११५--सविशेषं सुते पाण्डोर्भक्तिम्भवति तन्वति ।
वैरायितारस्तरलाः स्वयं मत्सरिणः परे ॥

११६--य इहात्मविदो विपक्षमध्ये
सह संवृद्धियुजोऽपि भूभुजः स्युः ।
वलिपुष्टकुलादिवान्यपुष्टैः
पृथगस्मादचिरेण भाविता तैः ॥

११७--सहजचापलदोषसमुद्धत-
श्चलितदुर्बलपक्षपरिग्रहः ।
तव दुरासदवीर्य्यविभावसौ
शलभतां लभतामसुहृद्गणः ॥

११८--इति विशकलितार्थामौद्धवीं वाचमेना-
मनुगतनयमार्गामर्गलां दुर्नयस्य ।
जनितमुदमुदस्थादुच्चकैरुच्छ्रितोरः-
स्थलनियतनिषण्णश्रीश्रुतां शुश्रुवान् सः ॥

इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये
द्वितीयः सर्गः २ ॥

११५--युधिष्ठिरके पूजन करनेके योग्य आपमें अत्यन्त भक्ति विस्तारकरनेपर चपलद्वेषकरनेवाले शत्रुआपहीवैरकरेंगे॥

११६--जो यहां शत्रुओं के मध्यमें साथ वृद्धि को प्राप्तहुए भी राजालोग अपने कुलके जानने वाले होंगे वह (राजा लोग) काककुल से कोकिलाओं के समान शीघ्र इस (शत्रुओं के मध्य) से अलग होजांयगे ॥

११७--स्वाभाविक चंचलतारूपी दोषसे उद्धत (उन्मत्त) सहाय वाला नहीं स्थिर दुर्बल पक्षके परिग्रह (संचय) वाला वह शत्रुओं का समूह तुम्हारी दुस्सह तेजरूपी अग्नि में पतंगपनेको प्राप्तहोय ॥

११८--उन (श्रीकृष्णजी) ने इसप्रकार से अच्छी रीतिसे विचारेहुए अर्थवाली नीतिमार्गके अनुसार चलने वाली दुर्नीतिकी रोकनेवाली आनन्दकी उत्पन्न करने वाली ऊंचे उरस्थल (हृदय) में नियतरहनेवाली लक्ष्मी से सुनीगई उद्धवकी यहवाणी ऊंचे होकरसुनी ॥

इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये भाषानुवादे द्वितीयः सर्गः २ ॥

तृतीयः सर्गः ।

द्वारकापुरी वर्णन समेत श्रीकृष्णस्य द्वारकातो ऽनेक-
प्रकारैःप्रस्थानवर्णनमिति ॥

१—कौवेरदिग्भागमपास्य मार्ग-
मागस्त्यमुष्णांशुरिवावतीर्णः ।
अपेतयुद्धाभिनिवेशसौम्यो
हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे ॥

२—जगत्पवित्रैरपि तन्न पादैः
स्प्रष्टुं जगत्पूज्यमयुज्यतार्कैः ।
यतो वृहत्पार्वणचन्द्रचारु
तस्यातपत्रं विभराम्बभूवे ॥

३—मृणालसूत्रामलमन्तरेण
स्थितश्चलच्चामरयोर्द्वयं सः ।
भेजेऽभितः पातुकसिद्धसिन्धो-
रभूतपूर्वां रुचमम्बुराशेः ॥

४—चित्राभिरस्योपरि मौलिभाजां
भाभिर्मणीनामनणीयसीभिः ।
अनेकधातुच्छुरिताश्मराशे-
र्गोवर्द्धनस्याकृतिरन्वकारि ॥

तीसरा सर्ग।

द्वारकापुरी के वर्णन समेत श्रीकृष्ण जी का द्वारका से अनेक प्रकार से प्रस्थान का वर्णन

१—इसके उपरान्त युद्धके आग्रह से रहित इसी से प्रसन्न उत्तरायण को छोड़कर दक्षिणायन में प्राप्त सूर्य्य के समान (स्थित) श्रीकृष्णजी इन्द्रप्रस्थको चले ॥

२—सूर्य्य जगत्के पूज्य उन (श्रीकृष्णजी) को जगत्में पवित्रभी पादों (चरणों और किरणों) से स्पर्शकरने को नहीं योग्यथे इसी कारण उन (श्रीकृष्णजी) के बड़ा पौर्णिमासीके चन्द्रमाके समान सुन्दरछत्र धारण कियागया ॥

३—कमलनालके सूत्रके समानउज्ज्वल ढुलतेहुए दोचामरोंके मध्यमें स्थित वह (श्रीकृष्णजी) दोनों ओरसे गिररही हैं गंगाजी जिसके (ऐसे) समुद्रकी अपूर्व शोभाको प्राप्तहुए ॥

४—इन (श्रीकृष्णजी) के ऊपर मुकुटमें प्राप्त मणियोंकी बड़ी अनेक वर्णवाली कांतियोंने अनेक धातुओं से रंगीहुई मणियों के समूहवाले गोवर्द्धनकी आकृतिकी तुल्यता की ॥

५—तस्योल्लसत्काञ्चनकुण्डलाग्र-
प्रत्युप्तगारुत्मतरत्नभासा ।
अवाप बाल्योचितनीलकण्ठ-
पिच्छावचूडाकलनामिवोरः ॥

६—तमंगदे मन्दरकूटकोटि-
व्याघट्टनोत्तेजनया मणीनाम् ।
वंहीयसा दीप्तिवितानकेन
चकासयामासतुरुल्लसन्ती ॥

७—निसर्गरक्तैर्वलयावनद्ध-
ताम्राश्मरश्मिच्छुरितैर्नखाग्रैः ।
व्यद्योततायापि सुरारिवक्षो
विक्षोभजासृक्स्नपितैरिवासौ ॥

८—उभौ यदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहा-
वाकाशगङ्गापयसः पतेताम् ।
तेनोपमीयेत तमालनील-
मामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः ॥

९—तेनाम्भसां सारमयः पयोधे-
र्दध्रे मणिर्दीधितिदीपिताशः ।
अन्तर्वसन् विम्बगतस्तदंगे
साक्षादिवालक्ष्यत यत्र लोकः ॥

१०—मुक्तामयं सारसनावलम्बि
भाति स्म दामाप्रपदीनमस्य ।
अंगुष्ठनिष्ठ्यूतमिवोर्ध्वमुच्चै-
स्त्रिस्रोतसः सन्ततधारमम्भः ॥

५–उन (श्रीकृष्णजी)का हृदय शोभायमान सुवर्णके कुण्ड-
लाओंमें खचित मरकत मणियोंकी दीप्तिसे बाल्यावस्था में
अभ्यास कीगई मयूरकी पूंछसे बनीहुई मालाके आच्छा-
दनको मानोंप्राप्तहुआ ॥

६–उन (श्रीकृष्णजी) को मन्दराचलके शिखरके अग्रभागका
घिसनारूपी शाणोल्लेखन (सानपैरखना) से बढ़ेहुए म-
णियोंकी दीप्ति के समूह से देदीप्यमान बाजूबन्दोंने सुशो-
भित किया ॥

७–यह (श्रीकृष्णचन्द्र) स्वभावसे रक्त कंकणमें जड़ीहुई पद्म-
राग मणियोंकी किरणों से व्याप्त अबतक दैत्य (हिरण्य
कशिपु) के हृदयके विदारणसे उत्पन्नहुए रुधिरसे मानों
स्नानकरायेहुए नखाग्रोंसे शोभितहुए ॥

८--तमालवृक्ष के समान नीलवर्ण मुक्ता लताओं (मोतियोंके
हारों) से युक्त इन (श्रीकृष्णजी) का हृदय आकाश गंगा
के जलके दोप्रवाह आकाशमें यदिजुदे जुदे बहें उस(आका-
श) से समान कियाजावे ॥

९–उन (श्रीकृष्णजी)ने किरणों से दिशाओं के प्रकाशित
करनेवाले समुद्रके जलोंका सारांश मणि (कौस्तुभ)
धारणकी जिस (मणि) में प्रतिविम्बित लोक उन (श्रीकृ-
ष्णजी)के अंगमेंसाक्षात् अन्तर्गत हुआ सा लक्षित होताथा ॥

१०–इन (श्रीकृष्णजी) की मुक्तामय कटिसूत्र (करौंधनी)
में लगीहुई पादके अग्रभाग पर्य्यन्त प्राप्त माला अंगूठे से
निकले हुए उन्नत प्रवाहवाले गंगाजीके सदैव वहने वाले
जलके समानशोभितहुई ॥

११--स इन्द्रनीलस्थलनीलमूर्ती
रराज कर्चूरपिशंगवासाः ।
विसृत्वरैरम्बुरुहां रजोभि-
र्यमस्वसुश्चित्र इवोदभारः ॥

१२--प्रसाधितस्यास्य मधुद्विषोऽभू-
दन्यैव लक्ष्मीरिति युक्तमेतत् ।
वपुष्यशेषेऽखिललोककान्ता
सानन्यकान्ता ह्युरसीतरा तु ॥

१३--कपाटविस्तीर्णमनोरमोरः
स्थलस्थितश्रीललनस्य तस्य ।
आनन्दिताशेषजना बभूव
सर्वांगसंगिन्यपरैव लक्ष्मीः ॥

१४--प्राणच्छिदां दैत्यपतेर्नखाना-
मुपेयुषां भूषणतां क्षतेन ।
प्रकाशकार्कश्यगुणौ दधानाः
स्तनौ तरुण्यः परिवब्रुरेनम् ॥

१५--आकर्षतेवोर्ध्वमतिक्रशीया-
नत्युन्नतत्वात् कुचमण्डलेन ।
ननाम मध्योऽतिगुरुत्वभाजा
नितान्तमाक्रान्त इवांगनानाम् ॥

११--मरकत मणिकी भूमिके समान नील अंगवाले हरितालके समान पीतअम्बर वाले वह (श्रीकृष्णजी) फैलेहुए कमलों के परागसे विचित्र वर्ण यमुनाके जलके प्रवाहके समान शोभितहुए ॥

१२--अलंकार संयुक्त इन श्रीकृष्णजी की अन्य (अनुपम और दूसरी) ही लक्ष्मी (शोभा और रमा) हुई यह उचितहै इस कारणसे वह शोभा रूपलक्ष्मी संपूर्ण शरीरमें रहती है (परन्तु) संपूर्ण लोकोंकी प्रिया दूसरी (लक्ष्मी) तो अन्य की प्रिया न होकर हृदय में रहती है ॥

१३--कपाट के समान विस्तीर्ण मनोरम हृदयमें स्थित लक्ष्मी रूपी प्रियावाले उन (श्रीकृष्णजी) की सम्पूर्ण लोकोंकी आनन्द देनेवाली सम्पूर्ण अंगों में रहनेवाली अन्यही लक्ष्मीहुई ॥

१४--भूषणत्व को प्राप्त दैत्यपति (हिरण्यकशिपु) के प्राणों के नाश करनेवाले नखोंके घावसे व्यक्त कठोरतारूपी गुणवाले स्तनोंको धारण करनेवाली स्त्रियां इन (श्रीकृष्णजी) से बोलीं ॥

१५--अत्यन्त उन्नतपने से मानों ऊपरको (झुकीहुईकमरको) आकर्षण कररहे अत्यन्तभार संयुक्त स्त्रियों के कुचमंडलसे अत्यन्त दुर्बल कमरमानों अत्यन्त पीड़ित की गयी और नतहुई ॥

१६--यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षीं
सा सा ह्रिया नम्रमुखी वभूव ।
निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्या-
स्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः ॥

१७--तस्यातसीसूनसमानभासो
भ्राम्यन्मयूखावलिमण्डलेन ।
चक्रेण रेजे यमुनाजलौघः
स्फुरन्महावर्त्त इवैकबाहुः ॥
१८--विरोधिनां विग्रहभेददक्षा
मूर्त्तेव शक्तिः क्वचिदस्खलन्ती ।
नित्यं हरेः सन्निहिता निकामं
कौमोदकी मोदयति स्म चेतः ॥
१९--न केवलं यः स्वतया मुरारे-
रनन्यसाधारणतान्दधानः ।
अत्यर्थमुद्वेजयिता परेषां
नाम्नापि तस्यैव स नन्दकोऽभूत् ॥
२०--न नीतमन्येन नतिं कदाचित्
कर्णान्तिकप्राप्तगुणं क्रियासु ।
विधेयमस्याभवदन्तिकस्थं
शार्ङ्गन्धनुर्मित्रमिव द्रढीयः ॥

१६--प्रिय (श्रीकृष्णजी) ने जिस जिस (स्त्री) को देखा वह वह चंचल नेत्रवाली होकर लज्जासे नम्र मुखीहुई अन्य (स्त्रियां) ईर्षासे संयुक्त होकर उस समय निश्शंक इकट्ठी कटाक्षोंसे इन (श्रीकृष्णजी) को मारने लगीं (क्रोधसेदेखने लगीं) ॥

१७--अलसी के फूलके समान कान्तिवाले उन (श्रीकृष्णजी) की एक भुजा फैलीहुई किरणों की पंक्तियों के समूह वाले सुदर्शनचक्र से देदीप्यमानबड़े २ भमर वाले यमुना के जलके समान शोभायमान हुई ॥

१८--शत्रुओं के शरीर विदारण करने में चतुर कहीं भी निष्फल न होने वाली सदैव निकटवर्त्तनी मानों मूर्त्तिको धारण कियेहुए शक्तिसी स्थित कौमोदकी गदाने श्री कृष्णजीके चित्त को प्रसन्नकिया ॥

१९--अन्यलोगोंको असाधारण जो (नन्दक खड्ग) केवल सत्वही से श्रीकृष्णजीका आनन्ददेने वाला न था किन्तुशत्रुओंका अत्यन्त भयदायक होकर नामसेभी उनश्रीकृष्ण जी काही वह नन्दक(आनन्ददेने वाला) था ॥

२०--अन्यपुरुषोंसे नति (आकर्षण और अपनी अनुकूलता) को नहींप्राप्त कियागया क्रियाओं (रणकर्म और हिताहित कर्मों) में कर्णके निकट प्राप्तगुण (प्रत्यंचा और विश्वास धर्म) वाला वशीभूत अत्यन्त दृढशार्ङ्ग धनुष मित्रके समानइन (श्रीकृष्णजी) का निकटवर्त्तीहुआ ॥

२१--प्रवृद्धमन्द्राम्बुदधीरनादः
कृष्णार्णवाभ्यर्णचरैकहंसः ।
मन्दानिलापूरकृतं दधानो
निध्वानमश्रूयत पाञ्चजन्यः ॥

२२--रराज सम्पादकमिष्टसिद्धेः
सर्वासु दिक्ष्वप्रतिषिद्धमार्गम् ।
महारथः पुष्यरथं रथांगी
क्षिप्रं क्षपानाथ इवाधिरूढः ॥

२३--ध्वजाग्रधामा ददृशेऽथ शौरेः
संक्रान्तमूर्त्तिर्मणिमेदिनीषु
फणावतस्त्रासयितुं रसाया-
स्तलं विवक्षन्निव पन्नगारिः ॥

२४--यियासतस्तस्य महीध्ररन्ध्र
भिदापटीयान् पटहप्रणादः ।
जलान्तराणीव महार्णवौघः
शब्दान्तराण्यन्तरयाञ्चकार ॥

२५--यतः स भर्त्ता जगतां जगाम
धर्त्ता धरित्र्याः फणिना ततोऽधः ।
महाभराभुग्नशिरःसहस्र-
साहायकव्यग्रभुजं प्रसस्रे ॥

२६--अथोच्चकैस्तोरणसंगभंग-
भयावनम्रीकृतकेतनानि ।
क्रियाफलानीव सुनीतिभाजं
सैन्यानि सोमान्वयमन्वयुस्तम् ॥

२१–धीर और गंभीर मेघके समान बड़े शब्दवाला कृष्णरूपी समुद्रके निकटरहनेवाला एक हंस मन्द वायुके भरजाने से उत्पन्न हुए शब्दका धारण करनेवाला पाञ्चजन्यसुनाई दिया ॥

२२–महारथ श्रीकृष्णजी इष्ट सिद्धिके देनेवाले संपूर्ण दिशाओंमें गमनकरनेवाले क्षिप्र (शीघ्र और एक नक्षत्र) गमन करने वाले क्रीड़ाके रथपरचढ़ कर और पुष्यनक्षत्र में प्राप्त चन्द्रमाके समान शोभितहुए ॥

२३–इसके उपरान्त श्रीकृष्णकी ध्वजारूपी स्थानवालेमणिमय पृथ्वी में प्रतिबिम्बित शरीरवाले होकर गरुडजी सर्पों को भयदेने के लिये रसातल में प्रवेशकरने की मानों इच्छा करते थे ॥

२४–गमन करने की इच्छा करने वाले उन (श्रीकृष्णजी) के पर्व्वतों के छिद्रोंके तोड़नेमें समर्थ नगाड़े के शब्दने अन्यजलोंको समुद्रके प्रवाहके समान अन्यशब्दोंकोआच्छादित करलिया ॥

२५–जगत्के धारण करने वाले वह श्रीकृष्णजी जिस मार्ग से गये उस पृथ्वी के भागपर पाताल में पृथ्वीके धारणकरने वाले (शेषजी) बड़ेभारसे टेढ़ेहुए हजारों शिरोंकी सहायता में व्यग्रभुजा होनेपर फैले ॥

२६–इसके उपरान्त उन्नत तोरण (वंदनवार) में लगने से जो टूटना उसके भयसे झुकी हुई पताकावाले के सेनालोग श्रीकृष्ण जी के अच्छी नीतिवाले को क्रियाओं के फलों के समान पीछे चले ॥

२७--श्यामारुणैर्वारणदानतोयै-
रालोडिताः काञ्चनभूपरागाः ।
आनेमिमग्नैः शितिकण्ठपक्ष-
क्षोदद्युतश्चुक्षुदिरे रथौघैः ॥

२८--न लंघयामास महाजनानां
शिरांसि नैवोद्धतिमाजगाम ।
अचेष्टताष्टापदभूमिरेणुः
पदाहतो यत्सदृशं गरिम्णः ॥

२९--निरुद्ध्यमाना यदुभिः कथञ्चि-
न्मुहुर्यदुच्चिक्षिपुरग्रपादान् ।
ध्रुवं गुरून्मार्गरुधः करीन्द्रा-
नुल्लंघ्य गन्तुन्तुरगास्तदीषुः ॥

३०--अवेक्षितानायतवल्गमग्रे
तुरंगिभिर्यत्ननिरुद्धवाहैः ।
प्रक्रीडितान्रेणुभिरेत्य तूर्णं
निन्युर्जनन्यः पृथुकान् पथिभ्यः ॥

३१--दिदृक्षमाणाः प्रतिरथ्यमीयु-
र्मुरारिमारादनघं जनौघाः ।
अनेकशः संस्तुतमप्यनल्पा
नवन्नवं प्रीतिरहो करोति ॥

३२ उपेयुषो वर्त्मनिरंतराभि-
रसौ निरुच्छ्वासमनीकिनीभिः ।
रथस्य तस्याम्पुरि दत्तचक्षु-
र्विद्वान् विदामास शनैर्न यातम् ॥

२७–कृष्ण और रक्तवर्णवाले हाथियों के मदजल से मिलेहुए मयूरपुच्छ के समान कान्तिवाली सुवर्णकी पृथ्वीकीधूल नेमि (चक्रधारा) पर्य्यन्त डूबे हुए रथोंके समूहों से पीसी गई ॥

२८–सुवर्ण की पृथ्वीकी धूलने चरणोंसे ताड़ित भी होकर महात्माओं के शिरोंको नहीं उल्लंघन किया उद्धति (उड़ना और अहंकार) कोभी नहीं प्राप्त हुई गुरुत्व और माहात्म्य के अनुरूप किया ॥

२९–घोड़ोंने यदुवंशियोंसे किसी प्रकार रोके जाने परभी जिस कारण से आगे के पैर वारंवार उछालेथे तिसी कारण से मार्गके रोकने वाले बड़े हाथियों को उल्लंघन करके जाने की इच्छा करी ॥

३०–लगामको खैंचकर यत्नसे घोड़ोंके रोकने वाले सवारों से सन्मुख देखे गये धूलसे क्रीड़ा करनेवाले बालकोंको माता शीघ्र आकर मार्गसे ले गई ॥

३१–कलंकसे रहित श्रीकृष्णजी को देखने की इच्छा कर रहे जनोंके समूह हर एक मार्गमें समीप प्राप्त हुए अनेक बारकी परचित हुई भी वस्तु को अधिक प्रेम नवीन नवीन करता है ॥

३२–जाननेवाले उस पुरमें दृष्टिके लगानेवाले इन (श्रीकृष्णजी) ने सघन सेनासे अत्यन्त रुकेहुए मार्गमें प्राप्त रथके मन्दगमनको न जाना ॥

३३--मध्ये समुद्रं ककुभः पिशंगी-
र्या कुर्वती काञ्चनवप्रभासा ।
तुरंगकान्तामुखहव्यवाह-
ज्वालेव भित्त्वा जलमुल्ललास ॥

३४--कृतास्पदा भूमिभृतां सहस्रै-
रुदन्वदम्भःपरिवीतमूर्त्तिः ।
अनिर्विदा या विदधे विधात्रा
पृथ्वी पृथिव्याः प्रतियातनेव ॥

३५--त्वष्टुः सदाभ्यासगृहीतशिल्प-
विज्ञानसम्पत्प्रसरस्य सीमा ।
अदृश्यतादर्शतलामलेषु
छायेव या स्वर्जलधेर्जलेषु ॥

३६--रथांगभर्त्रेऽभिनवं वराय
यस्याः पितेव प्रतिपादितायाः ।
प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरंकभाजो
रत्नावलीरम्बुधिराबबन्ध ॥

३७--यस्याश्चलद्वारिधिवारिवीचि-
च्छटोच्छलच्छंखकुलाकुलेन ।
वप्रेण पर्य्यन्तचरोडुचक्रः
सुमेरुवप्रोऽन्वहमन्वकारि ॥

३८--वणिक्पथे पूगकृतानि यत्र
भ्रमागतैरम्बुभिरम्बुराशिः ।
लोलैरलोलद्युतिभाञ्जि मुष्णन्
रत्नानि रत्नाकरतामवाप ॥

३३--समुद्रके बीचमें सुवर्ण के परकोटेकी दीप्तिसे दिशाओंको पीतवर्ण करनेवाली जोपुरी समुद्रके जलको भेदकरके निकली हुई बड़वानल की ज्वाला के समान शोभित हुई ॥

३४–हजारों भूमिभृतों (राजाओं और पहाड़ों) से बसीहुई समुद्र के जलसे घिरीहुई मूर्त्तिवाली बड़ी जो पुरी अखिन्न (प्रसन्न) ब्रह्माने मानोंपृथ्वीकीप्रतिकृति (नकल) बनाई ॥

३५–विश्वकर्मा के सदा अभ्याससे प्राप्त शिल्पविद्या के विज्ञानरूपी ऐश्वर्य्यके आधिक्यकी अवधि जो पुरी पहले दर्पण के समान स्वच्छ समुद्रके जल में स्वर्गकी छायाके समान दिखाई पड़तीथी ॥

३६–पिताके समान समुद्रने वर (श्रेष्ठ और जामाता) श्रीकृष्ण जी को नवीन दीगई गोदी में स्थित जिसपुरीके उपकण्ठ (समीप और कण्ठ) में वारंवार प्रेमसे रत्नकीपंक्ति बांधी ॥

३७–चंचल समुद्रकी लहरों की छटाओं में उछलते हुए शंखों के समूहवाले जिसपुरीके परकोटेने किनारेपर चलतेहुए नक्षत्र मंडलवाले सुमेरुके परकोटेका प्रतिदिन अनुकरण (नकल) किया ॥

३८–जिसपुरी में आपण (बाजार) में इकट्ठे कियेगये स्थिर प्रभावाले रत्नोंको चंचल जलके निकलनेके मार्गसे आये हुए जलों से चुराताहुआ समुद्र रत्नाकरत्वको (रत्नाकर नामको) प्राप्तहुआ ॥

३९—अम्भश्च्युतः कोमलरत्नराशी-
नपां निधिः फेनपिनद्धभासः ।
यत्रातपे दातुमिवाधितल्पं
विस्तारयामास तरंगहस्तैः ॥

४०—यच्छालमुत्तुंगतया विजेतुं
दूरादुदस्थीयत सागरस्य ।
महोर्मिभिर्व्याहतवाञ्छितार्थै-
र्व्रीडादिवाभ्यासगतैर्विलिल्ये ॥

४१—कुतूहलेनेव जवादुपेत्य
प्राकारभित्त्या सहसा निषिद्धः ।
रसन्नरोदीद् भृशमम्बुवर्ष-
व्याजेन यस्या बहिरम्बुवाहः ॥

४२—यदंगनारूपसरूपतायाः
कञ्चिद्गुणं भेदकमिच्छतीभिः ।
आराधितोऽद्धा मनुरप्सरोभि-
श्चक्रे प्रजाः स्वाः सनिमेषचिह्नाः ॥

४३—स्फुरत्तुषारांशुमरीचिजालै-
र्विनिह्नुताः स्फाटिकसौधपङ्क्तीः ।
आरुह्य नार्य्यः क्षणदासु यत्र
नभोगता देव्य इव व्यराजन् ॥

४४—कान्तेन्दुकान्तोपलकुट्टिमेषु
प्रतिक्षपं हर्म्यतलेषु यत्र ।
उच्चैरधः पाति पयोमुचोऽपि
समूहमूहुः पयसां प्रणाल्यः ॥

३९–जिसपुरी में समुद्रने जलके बहानेवाली फेणोंसे छुपीहुई कान्तिवाली श्रेष्ठ मणियों के समूहमानों सुखाने के लिये रखने को तरंगरूपी हाथोंसे फैलाये थे ॥

४०–समुद्रकी बड़ी तरंगें जिसपुरी के परकोटे को उन्नतता से मानों जीतनेके लिये दूरसेउठीं समीप में प्राप्तनष्ट वांछित वाली मानों लज्जासे विलीन होगईं ॥

४१–मेघ मानों कौतुकपूर्वक वेगसे आयकर जिसपुरीके परकोटेकी दीवारसे एकाएकी निषेध किये गये बाहरही गर्जते हुए जलवर्षने के बहाने से अत्यन्त रोदनकरता था ॥

४२–जिसपुरी में स्त्रियों के रूपकी तुल्यता से भेद करनेवाले किसीगुणकी अपेक्षाकरनेवाली अप्सराओंसे प्रार्थना किये गयेमनुजीनेअपनीप्रजाानिमेषरूप चिह्नोंसेयुक्तकरदीनी॥

४३–जिसपुरी में रात्रि के समय स्त्रियां दीप्तिमान् चन्द्रमा की किरणोंके समूहों से छिपी हुई स्फटिकमणि के गृहों की पंक्तियोंपर चढ़के आकाशमें प्राप्त देवांगनाओं के समान शोभितहुईं ॥

४४–जिसपुरी में रात्रिके समय रमणीय चन्द्रकान्ति मणियों की चट्टानवाले गृहों में उन्नतजल निकलने के मार्गनीचे चलते हैं मेघ जिनके ऐसे भी जलके समूहोंको वहातेथे ॥

४५—रतौ ह्रिया यत्र निशाम्य दीपान्
जालागताभ्योऽधिगृहं गृहिण्यः।
बिभ्युर्विडालेक्षणभीषणाभ्यो
वैदूर्य्यकुड्येषु शशिद्युतिभ्यः॥

४६—यस्यामतिश्लक्ष्णतया गृहेषु
विधातुमालेख्यमशक्नुवन्तः।
चक्रुर्युवानः प्रतिबिम्बितांगाः
सजीवचित्रा इवरत्नभित्तीः॥

४७—सावर्ण्यभाजां प्रतिमागतानां
लक्ष्यैः स्मरापाण्डुतयांगनानाम्।
यस्यां कपोलैः कलधौतधाम-
स्तम्भेषु भेजे मणिदर्पणश्रीः॥

४८—शुकांगनीलोपलनिर्मितानां
लिप्तेषु भासा गृहदेहलीनाम्।
यस्यामलिन्देषु न चक्रुरेव
मुग्धांगनागोमयगोमुखानि॥

४९—गोपानसीषु क्षणमास्थितानां-
मालम्बिभिश्चन्द्रकिणां कलापैः।
हरिण्मणिश्यामतृणाभिरामै-
र्गृहाणि नीध्रैरिव यत्र रेजुः॥

५०—बृहत्तुलैरप्यतुलैर्वितान-
मालापिनद्धैरपि चावितानैः।
रेजे विचित्रैरपि या सचित्रै-
र्गृहैर्विशालैरपि भूरिशालैः॥

४५–जिसपुरी में गृहोंकेबीच कुलांगना रतिके समय लज्जासे दीपकों को बुझाकर झरोखों के मार्ग से आई हुई वैडूर्य मणिकी दीवारों में पड़ीहुई बिल्लीके नेत्रके समान भयंकर चन्द्रमाकी कान्तियोंसे डरतीथीं ॥

४६--जिसपुरीमें गृहोंके मध्य बहुत सचिक्कणतासे चित्रबनाने को असमर्थ युवा पुरुष प्रतिविम्बित शरीरवाले होकर मानोंरत्नकी दिवारोंको जीतेहुए चित्रवाली करतेथे ॥

४७–जिसपुरीमें सुवर्ण के गृहोंके खंभोंमें तुल्यताको प्राप्त स्त्रियोंके कामसे उत्पन्न हुई पीततासे दिखाई देनेवाले कपोलोंने स्फटिकमणिकेदर्पणोंकी शोभाकेसमान शोभा पाई ॥

४८–जिसपुरी में अज्ञातयौवना स्त्री तोतेके शरीरके समान मरकत मणियोंसे बनेहुए गृहोंकी दहेलोंकी कान्तिसे आच्छादितद्वारकेबाहरी मार्गोंमें गोबरकेचौके नहींलगातीथीं॥

४९–जिसपुरी में गृह बाँसके पिंजरों में क्षणमात्र बैठे हुए मयूरों कीपूँछोंसे मरकतमणिके समान हरे तृणोंसे सुन्दर छप्परों से शोभायमानथे ॥

५०–जो पुरी बड़ी२ धन्नियोंवाले भी अनुपम वितानोंकी पंक्ति वालेभी और संपूर्ण वस्तुओंसे भरेहुए विचित्रभी चित्रोंकरकेसाहित विशालभी बड़ी२शालावाले गृहोंसे शोभितथी॥

५१—चिक्रंसया कृत्रिमपत्रिपङ्क्तेः
कपोतपालीषु निकेतनानाम् ।
मार्जारमप्यायतनिश्चलांगं
यस्यां जनः कृत्रिममेव मेने ॥

५२—क्षितिप्रतिष्ठोऽपि मुखारविन्दै-
र्वधूजनश्चन्द्रमधश्चकार ।
अतीतनक्षत्रपथानि यत्र
प्रासादशृंगाणि वृथाध्यरुक्षत् ॥

५३—रम्या इति प्राप्तवतीः पताका
रागं विविक्ता इति वर्द्धयन्तीः ।
यस्यामसेवन्त नमद्वलीकाः
समं बधूभिर्वलभीर्युवानः ॥

५४—सुगन्धितामप्रतियत्नपूर्वां
बिभ्रन्ति यत्र प्रमदाय पुंसाम् ।
मधूनि वक्त्राणि च कामिनीना-
मामोदकर्मव्यतिहारमीयुः ॥

५५—रतान्तरे यत्र गृहान्तरेषु
वितर्दिनिर्य्यूह विटंकनीडः ।
रुतानि शृण्वन् वयसांगणोऽन्ते-
वासित्वमाप स्फुटमंगनानाम् ॥

५१–जिसपुरीमें गृहोंके पक्षियोंकीतैमें कृत्रिम पक्षियोंके दबाने की इच्छासे झुके अथवा निश्चल अंगवाले बिलावकोभी कृत्रिम जानतेथे ॥

५२–जिसपुरीमें पृथ्वीपर स्थितभी स्त्रियां चन्द्रमाको अधः (नीचे और तुच्छ) मुखारविन्दोंसे करती थीं नक्षत्रके मार्गोंके उल्लंघन करनेवाले गृहके शृंगोंपर वृथाचढ़तीथीं ॥

५३–जिसपुरीमें युवा पुरुष रम्यहैं इसहेतुसे पताका (ध्वजा और प्रसिद्धि) को प्राप्तहोनेवाली विविक्त (निर्जन और विमल) इसहेतुसे रागकी बढ़ानेवाली नमद्वलीक (झुके हुए छप्परवाली और नम्र त्रिवलीवाली) क्रीडागृहों को स्त्रियोंकेसाथ सेवनकरतेथे ॥

५४–जिसपुरीमें स्वाभाविक सुगन्धिके धारणकरनेवाले स्त्रियों के मुख और मद्य पुरुषोंकी प्रीति के लिये सुगन्धि कर्मको परस्पर करतेथे ॥

५५–जिसपुरीके गृहोंके मध्यमें विहारस्थानोंकी वेदिकाओं की चोटी तै रूपी घोसलेवाले पक्षियोंके समूह रतिके मध्यमें शब्दोंको सुनतेहुए शिष्यत्वको प्राप्तहुएथे (जैसा वहाँका शब्दसुनतेथे वैसाही बोलतेथे) ॥

५६—छन्नेष्वपि स्पष्टतरेषु यत्र
स्वच्छानि नारीकुचमण्डलेषु।
आकाशसाम्यं दधुरम्बराणि
न नामतः केवलमर्थतोऽपि॥

५७—यस्यामजिह्मा महतीमपंकाः
सीमानमत्यायतयोऽत्यजन्तः।
जनैरजातस्खलनैर्न जातु
द्वयेऽप्यमुच्यन्त विनीतमार्गाः॥

५८—परस्परस्पर्द्धि परार्द्ध्यरूपाः
पौरस्त्रियो यत्र विधाय वेधाः।
श्रीनिर्मितिप्राप्तघुणक्षतैक-
वर्णोपमावाच्यमलं ममार्ज॥

५९—क्षुण्णं यदन्तःकरणेन वृक्षाः
फलन्ति कल्पोपपदास्तदेव।
अध्यूषुषो यामभवन् जनस्य
याः सम्पदस्ता मनसोऽप्यगम्याः॥

५६–जिसपुरीमें आच्छादितभी स्पष्ट दिखाई देरहे स्त्रियोंके कु-चमंडलोंमें स्वच्छ अम्बर (वस्त्र) केवल(अम्बर)नामसे (ही) आकाशकी तुल्यताको नहीं प्राप्तहुए किन्तु अर्थसे भी प्राप्तहोते भये) ॥

५७–जिसपुरीमें अजिह्म (नहीं टेढ़े और निष्कपट) अपंक (कीचड़से रहित और निष्पाप) बड़ी सीमा (राजाका कल्पित क्षेत्रकाप्रमाण और कुलकी मर्य्यादा)को नहींत्या-गकरनेवाले बड़ी आयति (विस्तार और उत्तरकाल) वाले दोनों विनीत मार्ग (अच्छी बनाई हुई पुरकी गली और अच्छे प्रकारसे शिक्षित आचार पद्धति) स्खलन (पाषाणादिसे गिरना और विरुद्धाचरण) से रहित पु-रुषोंने कभी भी नहीं त्याग किये ॥

५८–जिसपुरी में परस्पर स्पर्धा करनेवाले रूपवाली पुरकी स्त्रियोंको बनाकर ब्रह्माने लक्ष्मीजी के बनानेसे प्राप्तघुणा-क्षर न्यायकी उपमासे बड़े कलंक को धोया ॥

५९–जो अन्तःकरणसे कल्पनाकियाजाता है उसीको कल्पवृक्ष सिद्धकरते हैं किन्तु जिसपुरीमें रहनेवाले पुरुषोंकी जो स-म्पत्तियां थीं वह मनसेभी अगम्यथीं ॥

६०–कला दधानः सकलाः स्वभाभि-
रुद्भासयन् सौधसिताभिराशाः ।
यां रेवतीजानिरियेष हातुं
न रौहिणेयो न च रोहिणीशः ॥

६१–बाणाहवव्याहतशम्भुशक्ते-
रासत्तिमासाद्य जनार्दनस्य ।
शरीरिणा जैत्रशरेण यत्र
निःशङ्कमूषे मकरध्वजेन ॥

६२–निषेव्यमाणेन शिवैर्मरुद्भि-
रध्यास्यमाना हरिणा चिराय ।
उद्रश्मिरत्नांकुरधाम्नि सिन्धा-
वाह्वास्तमेरावमरावतीं या ॥

६३–स्निग्धाञ्जनश्यामरुचिः सुवृत्तो
बध्वा इवाध्वंसितवर्णकान्तेः ।
विशेषको वा विशिशेष यस्याः
श्रियं त्रिलोकीतिलकः स एव ॥

६४–तामीक्षमाणः स पुरं पुरस्तात्
प्रापत्प्रतोलीमतुलप्रतापः ।
वज्रप्रभोद्भासिसुरायुधश्री-
र्या देवसेनेव परैरलंघ्या ॥

६०—कलाओं (चौसठ विद्या और सोलहवाँभाग) को धारण करनेवाले रेवतीके पति अमृतसे लिप्त जो पदार्थ उसके समान श्वेत अपनीकान्तियों से दिशाओंको प्रकाशित करतेहुए बलदेवजी जिसपुरीके त्यागकरनेकी इच्छा नहीं करतेभये और चन्द्रमा भी न करते भये ॥

६१—जिसपुरीमें बाणासुरके युद्ध में शिवजीकी शक्तिके नाशकरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रजीके संसर्गको प्राप्त होकर शरीरको धारण करनेवाला जीतने वाले बाणवाला कामदेव निश्शंक रहा ॥

६२—शिवमरुतों (मन्दवायुने और रुद्र और मरुद्गण) से सेवा कियेगये हरि(श्रीकृष्ण और इन्द्र)से स्थितकीगई रत्नांकुरों के स्थान समुद्रमें स्थित जो पुरी मेरुपर्व्वतमें स्थित इन्द्रकी पुरी अमरावतीको स्पर्धाकरने के लिये बुलाती है ॥

६३—स्निग्ध अंजनके तुल्य अथवा अंजनसे श्यामकान्तिवाले सुवृत्त (सुन्दर और गोल) त्रिलोकीके तिलक वह (श्रीकृष्णजी) ही तिलकके समान नहीं ध्वंसहुए वर्णों (ब्राह्मणादिक और श्वेतादिक) की कान्तिवाली बधूके समान जिसपुरीकी शोभा बढ़ातेहुए ॥

६४—अतुल प्रतापवाले वह (श्री कृष्णजी) उसपुरीको देखते हुए पूर्वकीओर गलीमें प्राप्तहुए हीरोंकी प्रभासे सुन्दर इन्द्र के धनुषकी शोभावाली जो गलीदेवताओंकी सेनाके समान शत्रुओं से उल्लंघन नहीं करी गई ॥

६५--प्रजा इवांगादरविन्दनाभेः
शम्भोर्जटाजूटतटादिवापः।
मुखादिवाथ श्रुतयो विधातुः
पुरान्निरीयुर्मुरजिद्ध्वजिन्यः॥

६६—श्लिष्यद्भिरन्योन्यमुखाग्रसंग-
स्खलत्खलीनं हरिभिर्विलोलैः।
परस्परोत्पीड़ितजानुभागा
दुःखेन निश्चक्रमुरश्ववाराः॥

६७—निरन्तरालेऽपि विमुच्यमाने
दूरं पथि प्राणभृतां गणेन।
तेजोमहद्भिस्तमसेव दीपै-
र्द्विपैरसम्बाधमयाम्बभूवे॥

६८—शनैरनीयन्त रणात्पतन्तो
रथाः क्षितिं हस्तिनखादखेदैः।
सयत्नसूतायतरश्मिभुग्न-
ग्रीवाग्रसंसक्तयुगैस्तुरंगैः॥

६९—बलोर्मिभिस्तत्क्षणहीयमान-
रथ्याभुजाया वलयैरिवास्याः।
प्रायेण निष्क्रामति चक्रपाणौ
नेष्टं पुरो द्वारवतीत्वमासीत्॥

७०—पारे जलं नीरनिधेरपश्य-
न्मुरारिरानीलपलाशराशीः।
वनावलीरुत्कलिकासहस्र-
प्रतिक्षणोत्कूलितशैवलाभाः॥

६५—विष्णुके शरीरसे प्रजाके समान शिवजीके जटाजूटसे गंगा-जीके जलके समान ब्रह्माजी के मुखसे श्रुतियों के समान श्रीकृष्णचन्द्रकी सेना पुरसे निकली ॥

६६—परस्पर मुखके अग्रभागों में लगने से लगामोंके गिरने पर रगड़ते हुए चंचल घोड़ों से सवारलोग, परस्पर में रगड़-तेहुए घुटने वाले होकर निकले ॥

६७—अन्धकार के समान पुरुषों के समूह से भरेहुए भी मार्ग में दूरही से छोड़ देने पर तेज से बड़े दीपकों के समान हाथियों से मार्ग भरगया ॥

६८—वेगसे दौड़ते हुए रथ यत्नपूर्वक सारथियों से खेंची हुई लगामोंसे टेढ़े ग्रीवाके अग्रभागमें लगेहुए जुएवाले खेद से रहित घोड़ोंने पुरके द्वारपर मृत्तिका के चौंतरेपर से उतारे ॥

६९—सेनारूपी तरंगों से उस समय त्याग की गई गली रूपी भुजावाली इस पुरीको श्रीकृष्णजीके निकलने पर प्रायः द्वारावतीत्व (अपनास्वरूप) अच्छा नहीं विदितहुआ ॥

७०—श्रीकृष्णजीने समुद्रके जलोंके पार हरेपत्तोंसे पूर्ण हजारों तरंगों से क्षण २ भरमें किनारे पर प्राप्त किये गये शिवार के समान कान्ति वाली वनोंकी पंक्ति देखी ॥

७१–लक्ष्मीभृतोऽम्भोधितटाधिवासान्
द्रुमानसौ नीरदनीलभासः ।
लतावधूसम्प्रयुजोऽधिवेलं
बहूकृतान् स्वानिव पश्यति स्म ॥

७२–आश्लिष्टभूमिं रसितारमुच्चै-
र्लोलद्भुजाकारबृहत्तरंगम् ।
फेनायमानं पतिमापगाना-
मसावपस्मारिणमाशशंके ॥

७३–पीत्वा जलानान्निधिनातिगार्द्ध्या-
द्वृद्धिंगतेऽप्यात्मनि नैवमान्तीः ।
क्षिप्ता इवेन्दोः स रुचोऽधिवेलं
मुक्तावलीराकलयाञ्चकार ॥

७४–साटोपमुर्वीमनिशं नदन्तो
यैः प्लावयिष्यन्ति समन्ततोऽमी ।
तान्येकदेशान्निभृतं पयोधेः
सोऽम्भांसि मेघान् पिबतो ददर्श ॥

७५–उद्वृत्य मेघैस्तत एवतोय-
मर्थं मुनीन्द्रैरिव सम्प्रणीताः ।
आलोकयामास हरिः पतन्ती-
र्नदीः स्मृतीर्वेदमिवाम्बुराशिम् ॥

७६–विक्रीय दिश्यानि धनान्युरूणि
द्वैप्यानसावुत्तमलाभभाजः ।
तरीषु तत्रत्यमफल्गु भाण्डं
सांयात्रिकानावपतोऽभ्यनन्दत् ॥

७१–इन (श्रीकृष्णजी) ने लक्ष्मी (शोभा और श्री देवी) के धारण करने वाले समुद्रके तटपर वासकरनेवाले लता-रूपी अथवा लताके समान स्त्रियों से युक्त किनारेपर वृक्ष बहुतसे अपने शरीरोंके समान देखे ॥

७२–भूतलके स्पर्श करने वाले ऊंचेस्वर से चिल्लाने वाले चं-चल भुजाओं के समान बड़ी तरंग वाले फेनोंके उगलने वाले समुद्रको इन (श्रीकृष्णजी) ने अपस्मार (मृगी रोग) वाला समझा ॥

७३–समुद्रसे बड़े लोभसे पीकर वृद्धिको प्राप्त हुए भी अपने श-रीरमें नहीं समातीहुई (इसीसे) वमन करदीगई मानों चन्द्रमाकी किरणें श्रीकृष्णजी ने मोतियोंकी पंक्ति देखी ॥

७४–यह मेघ अभिमान सहित वारंवार गर्जतेहुए जिनजनों से पृथ्वी को सब ओरसे द्रवीभूत करेंगे उनजलों को समुद्रके एक कोण से निश्चल पीतेहुए मेघ उन (श्रीकृष्णजी) ने देखे ॥

७५–मुनींद्रों से उसी वेदसे वेदार्थ के समान मेघों से उसी स-मुद्रसे जललेकर बनाईगई समुद्रमें प्रवेशकरतीहुई नदियां वेदमें गिरतीहुई स्मृतियोंके समान श्रीकृष्णजी ने देखीं ॥

७६–दिशाओं में उत्पन्न बहुतसे द्रव्योंको बेचकर बड़ेलाभ को प्राप्त तुच्छतासे रहित मूल धनको नौकाओं में रखते हुए द्वीपवासी जहाजी लोगोंको इन (श्रीकृष्णजी) ने देखा ॥

७७—उत्पित्सवोऽन्तर्नदभर्तुरुच्चै-
गरीयसा निःश्वसितानिलेन।
पयांसि भक्त्या गरुडध्वजस्य
ध्वजानिवोच्चिक्षिपिरे फणीन्द्राः॥

७८—तमागतं वीक्ष्य युगान्तबन्धु-
मुत्संगशय्याशयमम्बुराशिः।
प्रत्युज्जगामेव गुरुप्रमोद-
प्रसारितोत्तुंगतरंगबाहुः॥

७९—उत्संगिताम्भःकणको नभस्वा-
नुदन्वतः स्वेदलवान्ममार्ज।
तस्यानुवेलं व्रजतोऽधिवेल-
मेलालतास्फालनलब्धगन्धः॥

८०—उत्तालतालीवनसम्प्रवृत्त-
समीरसीमन्तितकेतकीकाः।
आसेदिरे लावणसैन्धवीनां
चमूचरैः कच्छभुवां प्रदेशाः॥

८१—लवंगमालाकलितावतंसा-
स्ते नारिकेलान्तरपः पिबन्तः।
आस्वादिताद्रक्रमुकाः समुद्रा-
दभ्यागतस्य प्रतिपत्तिमीयुः॥

७७–समुद्रके बीचमेंसे उछलनेकी इच्छाकरनेवाले सर्पोंने भक्ति-
पूर्वक श्रीकृष्णजी की ध्वजाओं के समान बड़े श्वासके
पवनसे जलोंको उछाला ॥

७८–समुद्र आपत्तिकालके बन्धु गोदीरूपी सैयामें सोनेवाले
आयेहुए उन (श्रीकृष्णजी) को देखकर बड़े आनन्दपूर्व-
क फैलायेहुए उन्नत तरंगरूपी भुजावाला होकर मानों मि-
लनेके लिये आया ॥

७९–जलके कणोंसे मिश्रित इलायची की लताओं के रगड़नेसे
प्राप्त गंधवाला समुद्रका वायु किनारेपर जातेहुए उन (श्री
कृष्णजी) के स्वेद कणोंको क्षणमात्रमें हरताभया ॥

८०–सैनिक लोग उन्नत ताल वृक्षोंके बनों में प्रवृत्त वायुसेगर्भ
संयुक्त कीगई केतकी वृक्षवाले समुद्रकी पृथ्वियों के देशोंमें
प्राप्तहुए ॥

८१–लौंगकी मालाओं से आभूषणोंके बनाने वाले नारियलके
भीतरके जलपान करनेवाले गीली सुपारी के चाबनेवाले
वह(सैनिकलोग)समुद्रसेअतिथिपनेके सत्कारकोप्राप्तहुए ॥

८२–तुरगशताकुलस्य परितः परमेकतुरंगजन्मनः
प्रमथितभूभृतः प्रतिपथं मथितस्य भृशं महीभृता।
परिचलतो बलानुजबलस्य पुरः सततं धृतश्रिय-
श्चिरविगतश्रियः सलिलनिधेश्च तदा भवदन्तरं महत् ॥

इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये
पुरीप्रस्थानो नाम तृतीयः सर्गः ३ ॥

८२—चारोंओर से सैकड़ों घोड़ोंसे व्याप्त हरएक मार्गमें भूभृतों (राजालोग और पर्वतों) के मथन करने वाले सदैव श्री (शोभा और लक्ष्मी) के धारण करनेवाले आगे चलने वाले श्रीकृष्णजीकी सेनाका और केवल एक घोड़ेके समान जन्मवाले मन्दराचलसे मथन कियेगये लक्ष्मीसे रहित समुद्रका उस समय बड़ा अन्तरहुआ ॥

इतिश्री माघकृताशिशुपालबधस्य भाषानुवादे पुरीप्रस्थानो नाम तृतीयः सर्गः ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥

बहुभिश्छन्दोलंकारै रैवतकपर्व्वतवर्णनम् ॥

१—निःश्वासधूमं सह रत्नभाभि-
र्भित्त्वोत्थितं भूमिमिवोरगाणाम् ।
नीलोपलस्यूतविचित्रधातु-
मसौ गिरिं रैवतकं ददर्श ॥

२—गुर्वीरजस्रं दृषदः समन्ता-
दुपर्युपर्य्यम्बुमुचां वितानैः ।
विन्ध्यायमानं दिवसस्य भर्त्तु-
र्मार्गं पुनारोद्धुमिवोन्नमद्भिः ॥

३—क्रान्तं रुचा काञ्चनवप्रभाजा
नवप्रभाजालभृतां मणीनाम् ।
श्रितं शिलाश्यामलताभिरामं
लताभिरामन्त्रितषट्पदाभिः ॥

४—सहस्रसंख्यैर्गगनं शिरोभिः
पदैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम् ।
विलोचनस्थानगतोष्णरश्मि
निशाकरं साधु हिरण्यगर्भम् ॥

५—क्वचिज्जलापायविपाण्डुराणि
धौतोत्तरीयप्रतिमच्छवीनि ।
अभ्राणि बिभ्राणमुमांगसंग-
विभक्तभस्मानमिव स्मरारिम् ॥

चौथा सर्ग ॥

अनेकप्रकारके छन्द और अलंकारों से रैवतक पर्वतका वर्णन ॥

१—मरकत मणियों से व्याप्त विचित्रधातु वाले मणियों की प्रभासे युक्त पृथ्वी को भेदकरके उठेहुए सर्पोंके निश्वासके धूमके समान स्थित रैवतकनाम पर्वत को इन (श्रीकृष्णजी) ने देखा ॥

२—बड़ी२ शिलाओं के ऊपर सब ओर से सदैव उन्नत मेघों के समूहों से सूर्य्य के मार्गको फिर रोकने की इच्छा करता हुआ विन्ध्याचल के समान आचरण करताहुआ मानों स्थित ॥

३—नवीन प्रभाके समूहों की धारण करनेवाली मणियों की सुवर्ण के शिखरों में फैलीहुई कान्तिसे व्याप्त नीलमणियों की श्यामलता से सुन्दर भ्रमरोंकी बुलाने वाली लताओं से व्याप्त ॥

४—हजारों शिरों (मस्तक और शिखरों) से आकाशको हजारों पादों (नीचेके पर्व्वत और चरणों) से पृथ्वीको व्याप्तकरके स्थित नेत्रकेस्थान में प्राप्त सूर्य्य और चन्द्रमावाला सच्चा मानों हिरण्यगर्भ ॥

५—किसी स्थान में जलों के नाश होजाने से श्वेत धोये हुए डुपट्टेकीसी छबिवाले मेघोंको धारण कररहा पार्वतीजीके शरीरके संगसेविभक्त भस्मवाले शिवजीके समान स्थित ॥

६—छायां निजस्त्रीचटुलालसानां
मदेन किञ्चिच्चटुलालसानाम् ।
कुर्वाणमुत्पिञ्जलजातपत्रै-
र्विहंगमानां जलजातपत्रैः ॥

७—स्कन्धाधिरूढोज्ज्वलनीलकण्ठा-
नुर्वीरुहः श्लिष्टतनूनहीन्द्रैः ।
प्रनर्त्तितानेकलताभुजाग्रान्
रुद्राननेकानिव धारयन्तम् ॥

८—विलम्बिनीलोत्पलकर्णपूराः
कपोलभित्तीरिव लोध्रगौरीः ।
नवोलपालंकृतसैकताभाः
शुचीरपः शैवलिनीर्दधानम् ॥

९—राजीवराजीवशलोलभृंग-
मुष्णन्तमुष्णन्ततिभिस्तरूणाम् ।
कान्तालकान्ता ललनाः सुराणां
रक्षोभिरक्षोभितमुद्वहन्तम् ॥

१०—मुदे मुरारेरमरैः सुमेरो-
रानीय यस्योपचितस्य शृंगैः ।
भवन्ति नोद्दामगिरां कवीना-
मुच्छ्रायसौन्दर्य्यगुणा मृषोद्याः ॥

११—यतः पराद्ध्यानि भृतान्यनूनैः
प्रस्थैर्मुहुर्भूरिभिरुच्छिखानि ।
आढ्यादिव प्रापणिकादजस्रं
जग्राह रत्नान्यमितानि लोकः ॥

६—अपनी स्त्रियों के प्रियवचनों में लोभितहुए मदसे कुछ चं-
चल और आलस्य संयुक्त पक्षियों की अत्यन्त व्याकुलपत्र
वाले कमलरूपी छत्रोंसे छाया को कररहा ॥

७—स्कन्धमें स्थित उज्ज्वलनीलकण्ठ(मयूर और नीलेगले)
वाले सर्पोंसे व्याप्त शरीरवाले अनेकलतारूपी औरलताओं
के समान भुजाओंके नचानेवाले अनेकरुद्रोंके समान वृक्षों
को धारण कररहा ॥

८—जम्बायमान कमलरूपी कर्णाभूषण धारण करनेवाले लोध्र
से श्वेत स्त्रियों के कपोलों के समान स्थित नवीन उलप
(तृण विशेष)से युक्त रतकेसमान कान्तिवाले शुद्ध शिवार
से संयुक्त जलों को धारण कररहा ॥

९—कमलों की पंक्तियों के आधीन चंचलभृंगवाला वृक्षों की
पंक्तियों से आतपको दूरकरने वाला रमणीक अलकान्त
(जुल्फों) वाली देवताओं की स्त्रियों को राक्षसों से नहीं
व्याकुल कराकर धारण करने वाला ॥

१०—श्रीकृष्णजी की प्रसन्नता के लिये देवतालोगों से सुमेरुके
शृंगों को लायकर बढ़ाये गये इस पर्व्वत की उन्नतता और
सौंदर्यके गुणप्रगल्भ वचनवाले कवियों के मिथ्या कथन
नहीं होते हैं ॥

११—लोक श्रेष्ठ बड़े बहुत प्रस्थों (शिखर और एक प्रकार की
तोल) से भृत (इकट्ठेकिये गये और मापे गये)बड़ीकांति
वाले रत्न जिस(पर्व्वत) से धनिक वैश्यके समान सदा
वारंवार लेते हैं ॥

१२–अखिद्यतासन्नमुदग्रतापं
रविन्दधानेऽप्यरविन्दधाने।
भृंगावलिर्यस्य तटे निपीत-
रसा नमत्तामरसा न मत्ता

१३–यत्राधिरूढेन महीरुहोच्चै-
रुन्निद्रपुष्पाक्षिसहस्रभाजा।
सुराधिपाधिष्ठितहस्तिमल्ल-
लीलान्दधौ राजतगण्डशैलः॥

१४–विभिन्नवर्णा गरुडाग्रजेन
सूर्य्यस्य रथ्याः परितः स्फुरन्त्या।
रत्नैः पुनर्यत्र रुचा रुचं स्वा-
मानिन्यिरे वंशकरीरनीलैः॥

१५–यत्रोज्झिताभिर्मुहुरम्बुवाहैः
समुन्नमद्भिर्न समुन्नमद्भिः।
वनं बबाधे विषपावकोत्था
विपन्नगानामविपन्नगानाम्॥

१६–फलद्भिरुष्णांशुकराभिमर्षात्
कार्शानवं धाम पतंगकान्तैः।
शशंस यः पात्रगुणाद् गुणानां
संक्रान्तिमाक्रान्तगुणातिरेकम्॥

१७–दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारे-
रपूर्ववद्विस्मयमाततान।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति
तदेव रूपं रमणीयतायाः॥

१२–निकटमें प्राप्त बड़ेताप वाले सूर्य्यको धारण करने परभी अरविन्दों (कमलों) की खानि जिस गिरिके किनारे पर अत्यन्त मकरन्दके पीने वाली कमलों की झुकाने वाली मतवाली भ्रमरोंकी पंक्ति खिन्न नहींहुई ॥

१३–जिसपर्व्वतमें चांदीके पर्व्वतसे गिराहुआ स्थूल शिलाओं का समूह फूलेहुए पुष्प रूपी हजारों नेत्रों के धारण करने वाले वृक्षसे इन्द्रसे स्थितकिये हुए ऐरावत की शोभा को धारण करताहै ॥

१४–अरुणसे अन्यवर्णको प्राप्तकिये गये सूर्य्यके घोड़े यहां वांस के अंकुरोंके समान हरित मरकत मणियोंसे सब ओरफैलतीहुईकान्तिकेद्वारा फिरअपनीकान्तिकोप्राप्तकियेगये॥

१५–जिस पर्व्वतमें झुकेहुये मेघोंसे छोड़ेहुए जलोंसे सिंचेहुए सर्पयुक्त वृक्षोंके वनको विषकी अग्निसे उठी हुई विपत्ति नहीं बाधा करतीथी ॥

१६–जो पर्व्वत सूर्य्यकी किरणोंके लगने से अग्निसम्बन्धी तेज कोवमन करतीहुई सूर्य्यकान्ति मणियों से गुणोंकी प्राप्ति कोआधारके गुणसे विशेषगुणकी प्राप्त करनेवालीकहताहै॥

१७–वारंवार देखा हुआ भी वहपर्व्वत श्रीकृष्णजीको अपूर्व के समान विस्मयको प्राप्त कराताथा क्षणक्षण में अपूर्व्वता को जो प्राप्त होताहै वही रमणीयता का लक्षण है ॥

१८—उच्चारणज्ञोऽथ गिरान्दधान-
मुच्चारणत्पक्षिगणास्तटीस्तम्।
उत्कन्धरं द्रष्टुमवेक्ष्य शौरि-
मुत्कन्धरं दारुक इत्युवाच ॥

१९—आच्छादितायतदिगम्बरमुच्चकैर्गा-
माक्रम्य संस्थितमुदग्रविशालशृंगम्।
मूर्ध्नि स्खलत्तुहिनदीधितिकोटिमेन-
मुद्वीक्ष्य को भुवि न विस्मयते नगेशम्॥

२०—उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जा-
वहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टा-
द्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्॥

२१—वहति यः परितः कनकस्थलीः
सहरिताल्लसमाननवांशुकः।
अचल एष भवानिव राजते
सहरितालसमाननवांशुकः ॥

२२—पाश्चात्यभागमिह सानुषु सन्निषण्णाः
पश्यन्ति शान्तमलसान्द्रतरांशुजालम्।
सम्पूर्णलब्धललनालपनोपमान-
मुत्संगसंगिहरिणस्य मृगांकमूर्त्तेः ॥

१८—इसके उपरान्त वाणियों के उच्चारणके जानने वाले दारुक जोरसे शब्द करते हुए पक्षियों वाले तटोंको धारण करने वाले पर्व्वतके देखने को उत्सुक उन्नत कन्धे वाले श्रीकृष्ण जीको देखकर बोले ॥

१९—दीर्घ दिशारूपी वस्त्र अथवा दिशा और आकाशके आच्छादन करनेवाले उन्नत पृथ्वीको अथवा विशाल शृंग वाले बैल को दबाकर स्थित उन्नत और विशाल शिखर वाले मूर्द्धा (शिखर और शिर) में दीप्तिमान् चन्द्रमाकी कोटि (किरण और कला) वाले नगेश (रैवतक पर्व्वत और शिवजी) को देखकर कौन नहीं विस्मित होता है ॥

२०—विस्तृत और ऊंचीरस्सीके समान किरण वाले सूर्य्य के उदयहोने पर और चन्द्रमाके अस्त होनेपर यह पर्व्वत विशेष लम्बायमान दोघण्टाओंसे वेष्टित बड़े हाथीकीशोभा को प्राप्त होता है ॥

२१—दीप्यमान नवीन किरणवाला जो पर्व्वत दूर्वासहित सुवर्णकी भूमियों को सबओरसे धारण करताहै वहयह पर्वत हरतालके समान पीत वस्त्रवाले आपके समान शोभित होता है ॥

२२—इसपर्व्वत में शिखरों परस्थित पुरुष कलंकसे रहित घनी किरणके समूहवाले संपूर्ण स्त्रीके मुख की उपमा को प्राप्त होने वाले गोदीमें मृगको धारण करने वाले चन्द्रमा के पीछे के भाग को देखते हैं ॥

२३–कृत्वा पुंवत्पातमुच्चैर्भृगुभ्यो
मूर्ध्नि ग्राव्णां जर्जरा निर्झरौघाः ।
कुर्वन्ति द्यामुत्पतन्तः स्मरार्त्त-
स्वर्लोकस्त्रीगात्रनिर्वाणमत्र ॥

२४–स्थगयन्त्यमूः शमितचातकार्त्तस्वरा
जलदास्तडित्तुलितकान्तकार्त्तस्वराः ।
जगतीरिह स्फुरितचारुचामीकराः
सवितुः क्वचित् कपिशयन्ति चामीकराः ॥

२५–उत्क्षिप्तमुच्छ्रितसितांशुकरावलम्बै-
रुत्तम्भितोडुभिरतीवतरां शिरोभिः ।
श्रद्धेयनिर्झरजलव्यपदेशमस्य
विष्वक् तटेषु पतति स्फुटमन्तरीक्षम् ॥

२६–एकत्र स्फटिकतटांशुभिन्ननीरा
नीलाश्मद्युतिभिदुराम्भसोऽपरत्र ।
कालिन्दीजलजनितश्रियः श्रयन्ते
वैदग्धीमिह सरितः सुरापगायाः ॥

२७–इतस्ततोऽस्मिन् विलसन्ति मेरोः
समानवप्रे मणिसानुरागाः ।
स्त्रियश्च पत्यौ सुरसुन्दरीभिः
समानवप्रे मणिसानुरागाः ॥

२८–उच्चैर्महारजतराजिविराजितासौ
दुर्वर्णभित्तिरिह सान्द्रसुधासवर्णा ।
अभ्येति भस्मपरिपाण्डुरितस्मरारे-
रुद्वह्निलोचनललामललाटलीलाम् ॥

२३—इस पर्व्वत में झरने पुरुषके समान ऊंचेत
ओंके ऊपर गिरके जर्जरीभूत आकाशमें उछर
से व्याकुल देवांगनाओं के शरीरके सुखको

२४—इसपर्व्वतमें कहीं इनभूमियोंको चातक के दु
शान्तकरनेवाले सुन्दर सुवर्णको बिजली के
वालेमेघ आच्छादितकरतेहैं और कहीं सुवर्ण
सुन्दरकरनेवाली यहसूर्य्यकी किरणें चित्रव
२५--उन्नत चन्द्रमाके कर (किरणें और हाथ) वा
आच्छादन करनेवाले शिरों (शिखर और मस्
त्यन्त उठायाहुआ आकाश विश्वासयोग्य भ्
व्यवहारवालाइसशिखरकेतटोंमेंसबओरसेप्रत्
२६--एक भाग में स्फटिकके तटोंकी किरणों से
वाली दूसरे भागमें नीलमणि की किरणों
जलवाली नदियां इसपर्व्वत में यमुनाजी के
त्पन्न शोभावाली गंगाजीकीसी शोभाको प्राप्त
२७—सुमेरुपर्व्वतके तुल्य परकोटेवाले इसपर्व्वतमें
रत्न के तटों की कान्तियां फैलती हैं और नव
पतिमें अनुराग संयुक्त देवांगनाओंके समान
करती हैं ॥
२८—इस पर्व्वत में घने अमृत के तुल्य सुवर्ण की
भित यह उन्नत चाँदी की दीवार भस्मसे पी
शिवजीके अग्निसंयुक्त लोचनरूपी भूषणवाले
शोभाको प्राप्तहोती हैं ॥

२९–अयमतिजरठाः प्रकामगुर्वी-
रलघुविलम्बिपयोधरोपरुद्धाः ।
सततमसुमतामगम्यरूपाः
परिणतदिक्करिकास्तटीर्बिभर्त्ति ॥

३०–धूमाकारं दधाति पुरः सौवर्णे
वर्णेनाग्नेः सदृशि तटे पश्यामी ।
श्यामीभूताः कुसुमसमूहेऽलीनां
लीनामालीमिह तरवो बिभ्राणाः ॥

३१–व्योमस्पृशः प्रथयता कलधौतभित्ती-
रुन्निद्रपुष्पचणचम्पकपिंगभासः ।
सौमेरवीमधिगतेन नितम्बशोभा-
मेतेन भारतमिलावृतवद्विभाति ॥

३२–रुचिरचित्रतनूरुहशालिभि-
र्विचलितैः परितः प्रियकव्रजैः ।
विविधरत्नमयैरभिभात्यसा-
ववयवैरिव जंगमतां गतैः ॥

३३–कुशेशयैरत्र जलाशयोषिता
मुदा रमन्ते कलभाविकस्वरैः ।
प्रगीयते सिद्धगणैश्च योषिता-
मुदा रमन्ते कलभाविकस्वरैः ॥

२९--यह पर्व्वत अत्यन्त जरठ (कठिन और वृद्ध) अत्यन्त गुर्वी (श्रेष्ठ और स्थूल) बड़े लम्बायमान पयोधरों (मेघ और स्तनों) से आच्छादित सर्वदा प्राणियों को नहीं गमन करने के योग्य रूपवाली तिरछे दाँत के प्रहार करने वाले दिग्गजोंवाली अथवा शुष्कदन्तक्षत और नखक्षत वाली तटी (तट) धारणकरता है ॥

३०--इस पर्व्वत में आगे अग्निके समान वर्ण वाले सुवर्ण के तटपर पुष्प के समूहों में बैठीहुई भ्रमरोंकी पंक्तियों को धारण करतेहुए श्यामवर्णवाले यह वृक्षधूमके आकार को धारण करते हैं देखो ॥

३१--आकाशके छूने वाले फूले पुष्पोंसे ज्ञात चंपकके समान पीत वर्णवाले सुवर्ण के तट सुमेरु सम्बन्धिनी नितम्बकी शोभाको प्राप्त इस रैवतक पर्व्वत से भारतखण्ड इलावृत खण्डके समान शोभितहोताहै ॥

३२--यहपर्व्वत उज्ज्वल नानावर्ण वाले रोमोंसे युक्त सब ओर को घूमरहे प्रियको (एकप्रकारकेमृगों) केसमूहों से जंगमता (चरता) को प्राप्तहुए अनेकप्रकारके रत्नमयअंगों से मानों शोभित होताहै ॥

३३--इस पर्व्वतमें जलाशयोंके रहने वाले तीसवर्षके हाथीफूले हुएकमलोंसे प्रीतिपूर्व्वक रमणाकरतेहैं और मधुरउद्दीपन करने वाले स्वरोंसे युक्त देवताओंके समूह स्त्रियों के समीप उच्चस्वर से गान करते हैं ॥

३४—आसादितस्य तमसा नियतेर्नियोगा-
दाकांक्षतः पुनरपक्रमणेन कालम्।
पत्युस्त्विषामिह महौषधयः कलत्र-
स्थानं परैरनभिभूतममूर्वहन्ति ॥

३५—वनस्पतिस्कन्धनिषण्णबाल-
प्रवालहस्ताः प्रमदा इवात्र।
पुष्पेक्षणैर्लम्भितलोचकैर्वा
मधुव्रतव्रातवृतैर्व्रतत्यः ॥

३६—विहगाः कदम्वसुरभाविह गाः
कलयन्त्यनुक्षणमनेकलयम्।
भ्रमयन्नुपैति मुहुरभ्रमयं
पवनश्च धूतनवनीपवनः ॥

३७—विद्वद्भिरागमपरैर्विवृतं कथञ्चित्
श्रुत्वापि दुर्ग्रहमनिश्चितधीभिरन्यैः।
श्रेयान् द्विजातिरिव हन्तुमघानि दक्षं
गूढार्थमेष निधिमन्त्रगणं विभर्त्ति ॥

३८—विम्बोष्ठं वहु मनुते तुरंगवक्त्र-
श्चुम्बन्तं मुखमिह किन्नरं प्रियायाः।
श्लिष्यन्तं मुहुरितरोऽपि तं निजस्त्री-
मुत्तुंगस्तनभरभंगभीरुमध्याम् ॥

३४--इसपर्व्वतमें यह महौषधियां भाग्यके वशसे अन्धकार से आच्छादित फिर लौटनेसे समागमके समयको चाहतेहुए कान्तियोंके पति (सूर्य्य) की अन्य तेजोंसे नहीं तिरस्कार की हुई स्त्रीरूपकान्तियों की स्थितिको निर्वाह करतीहैं ॥

३५--जिसपर्व्वतमें वृक्षोंके स्कन्धोंमें स्थितछोटे पल्लवरूपी हाथ वाली भ्रमरोंके समूहोंसे आच्छादित इसीसे मानों कज्जल धारण किये हुए पुष्परूपी नेत्रोंसे लतायें स्त्रियों के समान लक्षित होती हैं ॥

३६--कदम्बोंसे सुगान्धित इसपर्व्वतमें पक्षी क्षण क्षण में अनेक प्रकारके लयोंसे शब्द करतेहैं और नवीन कदम्बके वनोंका कँपानेवाला यह वायुवारंवार मेघकोघुमाताहुआ आताहै ॥

३७--यहपर्व्वत श्रेष्ठ ब्राह्मणके समान आगम (निधि और मन्त्र शास्त्र) में प्रधान विद्वानों से किसी प्रकार प्रकाशितकिया गया नहीं निश्चित बुद्धिवालोंसे दुस्साध्य अघ (दुःखऔर पाप) के नाशकरनेमें समर्थ छिपेहुए अर्थ (द्रव्यऔर अ-भिप्राय) वाले मंत्रोंके समान निधियों के अथवा निधियों के समान मंत्रोंको धारण करताहै ॥

३८--इसपर्व्वतमें घुड़मुहे विम्बके समान ओष्ठवाले प्रियाकेमुख को चुम्बन करतेहुए किन्नरको श्रेष्ठ मानते हैं किन्नरभी ऊंचे स्तनों के भारसे जोभंग उससे डरीहुई कटिवाली अपनी स्त्रीको वारंवार आलिंगन करतेहुए उसको श्रेष्ठमानताहै ॥

३९—यदेतदस्यानुतटं विभाति
वनं ततानेकतमालतालम्।
न पुष्पितात्रस्थगितार्करश्मा-
वनन्ततानेकतमालतालम्॥

४०—दन्तोज्ज्वलासु विमलोपलमेखलान्ताः
सद्रत्नचित्रकटकासु बृहन्नितम्बाः।
अस्मिन् भजन्ति घनकोमलगण्डशैला
नार्य्योऽनुरूपमधिवासमधित्यकासु॥

४१—अनतिचिरोज्झितस्य जलदेन चिर-
स्थितबहुबुद्बुदस्य पयसोऽनुकृतिम्।
विरलविकीर्णवज्रशकला सकला-
मिह विदधाति धौतकलधौतमही॥

४२—वर्जयन्त्या जनैः संगमेकान्तत-
स्तर्कयन्त्या सुखं संगमेकान्ततः।
योषयैष स्मरासन्नतापांगया
सेव्यतेऽनेकया सन्नतापांगया॥

४३—सङ्कीर्णकीचकवनस्खलितैकबाल-
विच्छेदकातरधियश्चलितुं चमर्य्यः।
अस्मिन् मृदुश्वसनगर्भतदीयरन्ध्र-
निर्य्यत्स्वनश्रुतिसुखादिव नोत्सहन्ते॥

९–इसपर्व्वतके तटोंमें विस्तृत अनेक तमालके वृक्षवाला जो यहवन शोभित होताहै आतपके नाश करने वाले इसबड़े विस्तृत वनमें कौनसी लता अत्यन्त नहीं फूली है ॥

०–इसपर्व्वतमें दन्तों (निकुंज और दांत) से उज्ज्वल अच्छे रत्नोंसे चित्र वर्णवाले सानु (शिखर और कंकण) वाली पर्व्वत के ऊपर की भूमियोंमें उज्ज्वल उपल (मणि और शिला) वाली मेखलाओं (क्षुद्रघंटिका और नितम्बभूमियों) से रम्य बड़े नितम्ब (शिखर और कटिपश्चाद्भाग) वालीसघन और कोमल गंडशैल (गण्डस्थल और स्थूल पत्थर) वाली स्त्रियां इच्छाकेसदृश स्थानको प्राप्तहोती हैं॥

१–इसपर्व्वतमें नहीं सघन बिथुरेहुए वज्रके टुकड़ेवाली श्वेत चाँदीकी पृथ्वी मेघसे उसीसमय त्यागाकियेहुए बहुतकाल तक रहनेवाले और बहुत से बुद्बुदोंवाले जलकी सम्पूर्ण तुल्यताको धारण करतीहै ॥

२–एकान्तमें कान्तसे संगमहोनेपर सुखका विचार कररहीं लोगोंके संगको त्यागतीहुई कामसे प्राप्त ज्वरवाले अंगवाली झुकेहुए नेत्रके कोरवालीं बहुतसी स्त्रियोंसे यह पर्व्वत सेवा कियाजाताहै ॥

३–इसपर्व्वतमें मिलेहुएकीचकों (वायुसे आपवजनेवाले बाँसों) के वनमें गिरेहुए एकरोमके टूटनेसे डरीहुई बुद्धि वाली सुरागायें भीतर मन्दपवनवाले कीचकोंके छिद्रोंसे निकलतेहुए शब्दके सुननेसे उत्पन्नहुए सुखसे मानों चलनेको नहीं उत्साह करती हैं ॥

४४—मुक्तं मुक्तागौरमिह क्षीरमिवाभ्रै-
वापीष्वन्तर्लीनमहानीलदलासु।
शस्त्रीश्यामैरंशुभिराशु द्रुतमम्भ-
श्छायामच्छामृच्छति नीली सलिलस्य॥

४५—या न ययौ प्रियमन्यबधूभ्यः
सारतरागमना यतमानम्।
तेन सहेह बिभर्त्ति रहः स्त्री
सा रतरागमनायतमानम्॥

४६—भिन्नेषु रत्नकिरणैः किरणेष्विहेन्दो-
रुच्चावचैरुपगतेषु सहस्रसंख्याम्।
दोषापि नूनमहिमांशुरसौ किलेति
व्याकोशकोकनदतां दधते नलिन्यः॥

४७—अपशंकमंकपरिवर्त्तनोचिता-
श्चलिताः पुरः पतिमुपेतुमात्मजाः।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां
विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः॥

४८—मधुकरविटपानमिता-
स्तरुपङ्क्तीर्बिभ्रतोऽस्य विटपानमिताः।
परिपाकपिशंगलता-
रजसा रोधश्चकास्ति कपिशंगलता॥

४९—प्राग्भागतः पतदिहेदमुपत्यकासु
शृंगारितायतमहेभकराभमम्भः।
संलक्ष्यते विविधरत्नकरानुविद्ध-
मूर्ध्वप्रसारितसुराधिपचापचारु॥

४४–इस पर्व्वतमें भीतर प्राप्त बड़े नीलमणिवाली वापियोंमें मेघोंसे छोड़ाहुआ मोतीके समान श्वेतदूधके समानास्थित जलछुरीके समान श्माम किरणोंसे उसक्षिण चलायागया नलिनाम औषधिकेपत्रोंकेरसकीकान्तिको प्राप्तहोताहै ॥

४५–इस पर्व्वत में अन्यास्त्रियों से श्रेष्ठ गमनवाली जो स्त्री प्रार्थना करतेहुए प्रियको नहीं प्राप्तहुई वह स्त्री एकान्त में उस प्रियकेसाथ बड़े क्रोधके विना सुरतकी अभिलाषा को धारण करती है ॥

४६–इस पर्व्वत में चन्द्रमा की किरणों के अनेकप्रकार की मणियों की किरणों से मिलनेसे हजारपने को प्राप्तहोने पर कमलिनी यह सूर्य्यही है यह विचारकर रात्रिमें भी मानों फूलेहुए कमलपने को प्राप्तहोती हैं ॥

४७–निश्शंक गोदी में लोटनेके योग्य पतियोंके मिलनेको आगे चलीहुई आत्मजा (कन्या और अपने से उत्पन्न हुई)नदियों के पीछे दीनपक्षियोंके शब्दोंसे यह (पर्व्वत) मानों रोता है ॥

४८–भ्रमररूपी विटों (जारपुरुषों) के चुम्बनको प्राप्तशाखाओं के विस्तारसे झुकीहुई वृक्षों की पंक्तियों को धारण करते हुए इसपर्व्वत का नितम्ब गिरतीहुई पीतवर्णवाली लताओं की रजसे पीतवर्ण शोभित होताहै ॥

४९–इसपर्व्वतमें ऊपरके भागसे नीचे के भागोंमें गिरताहुआ शृंगारयुक्त लम्बे बड़े हाथी की सूड़के समान शोभावाला अनेक रत्नोंकी किरणोंसे युक्त यहजल ऊपर फैलेहुएइन्द्र के धनुषके समान लक्षितहोताहै ॥

५०—दधति च विकसद्विचित्रकल्प-
द्रुमकुसुमैरभिगुम्फितानिवैताः।
क्षणमलघुविलम्बि पिञ्छदाम्नः
शिखरशिखाः शिखिशेखरानमुष्य॥

५१—सवधूकाः सुखिनोऽस्मि-
न्नवरतममन्दरागतामरसदृशः।
नासेवन्ते रसव-
न्नवरतममन्दरागतामरसदृशः॥

५२—आच्छाद्य पुष्पपटमेष महान्तमन्त-
रावर्त्तिभिर्गृहकपोतशिरोधराभैः।
स्वांगानि धूमरुचिमागुरवीं दधानै-
र्धूपायतीव पटलैर्नवनीरदानाम्॥

५३—अन्योन्यव्यतिकरचारुभिर्विचित्रै-
रत्रस्यन्नवमणिजन्मभिर्मयूखैः।
विस्मेरान् गगनसदः करोत्यमुष्मि-
न्नाकाशे रचितमभित्ति चित्रकर्म॥

५४—समीरशिशिरः शिरःसु वसतां
सतां जवनिकानिकामसुखिनाम्।
बिभर्त्ति जनयन्नयं मुदमपा-
मपायधवला वलाहकततीः॥

५५—मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय
क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।
ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य
वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्॥

५०—इसपर्व्वत की यह शिखररूपी शिखायें फूलेहुए अनेकवर्ण वाले कल्पवृक्षके पुष्पोंसे मानों गुथेहुए बड़ी लम्बायमान-पूंछ रूपी मालावाले मयूररूपी शिरके आभूषणों को क्षणमात्र मानों धारण करती हैं ॥

५१—इसपर्व्वतमें अत्यन्तश्रेष्ठ मन्दराचलसे आये हुए देवताओं के समान अत्यन्त रक्त कमलों के समान दृष्टिवाले भोगी पुरुष स्त्रियों समेत अनुराग संयुक्त नवीन सुरतको सेवन करते हैं ॥

५२—यह पर्व्वत बड़े पुष्परूपी वस्त्रको ओढ़कर भीतर घूमतेहुए घरके कबूतरों के कण्ठके समान कान्तिवाले अगरके धूम के समान कान्तिवाले नवीन मेघोंके समूहोंसे अपने अं-गों को मानों धूपदेता है ॥

५३—इस पर्व्वतमें परस्पर मिलनेसे सुन्दर अनेकप्रकारके वर्ण वाली मणियोंके दोषोंसे रहित नवीन मणियों से उत्पन्न किरणों से बनीहुई दीवार के विना चित्ररचना आकाशमें रहनेवालों को विस्मित करतीहै ॥

५४—वायुसे शीतल शिखरों में रहनेवाले अत्यन्त सुखी सज्जन लोगों के आनन्दको उत्पन्न करताहुआ यह पर्व्वत जलोंके नाशसे श्वेतमेघोंकी पंक्तिरूपी कनातोंको धारण करताहै॥

५५—इस पर्व्वतमें योगी लोग मैत्रीआदिक चित्तके शोधनकरने वालोंकोप्राप्तहोतेहुएक्लेशकोत्यागकरकेअवलंबनसहितयो-गकोप्राप्तहोकर प्रकृतिऔरपुरुषकीपरस्पर भिन्नतासेख्याति (ज्ञान) को प्राप्तहोकर उस(ख्याति)कोभी रोकनाचाहते हैं॥

५६—मरकतमयमेदिनीषु भानो-
स्तरुविटपान्तरपातिनो मयूखाः ।
अवनतशितिकण्ठकण्ठलक्ष्मी-
मिह दधति स्फुरिताणुरेणुजालाः ॥

५७—या बिभर्त्ति कलवल्लकीगुण-
स्वानमानमतिकालिमालया ।
नात्र कान्तमुपगीतया तया
स्वानमानमतिकालिमालया ॥

५८—सायं शशांककिरणाहतचन्द्रकान्त-
निस्यन्दिनीरनिकरेण कृताभिषेकाः ।
अर्कोपलोल्लसितवह्निभिरह्नि तप्ता-
स्तीव्रं महाव्रतमिवात्र चरन्ति वप्राः ॥

५९--एतस्मिन्नधिकपयः श्रियं वहन्त्यः
संक्षोभं पवनभुवा जवेन नीताः ।
वाल्मीकेररहितरामलक्ष्मणानां
साधर्म्यं दधति गिरां महासरस्यः ॥

६०--इह मुहुर्मुदितैः कलभैरवः
प्रतिदिशं क्रियते कलभैरवः ।
स्फुरति चानुवनं चमरीचयः
कनकरत्नभुवां च मरीचयः ॥

५६–इस पर्व्वतमें मरकतमणिकी भूमियोंमें वृक्षोंके पत्तोंके मध्य से आने वाली दीप्तिमान् सूक्ष्मरजके समूहवाली नम्र मोरके कण्ठकी शोभाको धारण करती हैं ॥

५७–इस पर्व्वतमें अत्यन्त श्याम नहीं स्थिति करने वाली जो भ्रमरोंकी पंक्ति बीणाके मधुर शब्दकी उपमानताको धारणकरतीहै समीपमें गानकरने में प्रवृत्त उसी (भ्रमरों की पंक्ति) से सुख पूर्व्वक आकर्षण करने के योग्य कौनसी स्त्री प्रियको नहीं नवती है ॥

५८–जिस पर्व्वतमें शिखर रात्रिके समय चन्द्रमा की किरणों से स्पर्शहुई चन्द्रकान्ति मणियोंसे वहेहुए जलके समूहोंसे स्नान करने वाली दिनमें सूर्य्यकान्ति मणियोंसे उत्थित अग्निसे संतप्त होकर मानों दुश्चर महातप करतेहैं ॥

५९–इस पर्व्वतमें अधिक जनकी समृद्धिको अथवा अधिक वानर वाली शोभाकी धारण करने वाली वायुसे उत्पन्नहुए वेगसेक्षोभको प्राप्तअथवा हनुमान्जीसे क्षोभकोप्राप्त बड़े २ तड़ाग राम और लक्ष्मणसे युक्त अथवा प्रिय सहित सारसों की स्त्री वाली बाल्मीकि की वाणियों की तुल्यता को धारण करते हैं ॥

६०–इस पर्व्वत में प्रसन्न हाथियों के बच्चे दिशा दिशामें मधुर और भयानक शब्द वारंवार करते हैं वन वनमें सुरागायों के समूहप्रकट होतेहैं और सुवर्ण और मणिवाली भूमियों की किरणें चमकती हैं ॥

६१--त्वक्साररन्ध्रपरिपूरणलब्धगीति-
रस्मिन्नसौ मृदितपक्ष्मलरल्लकाङ्गः ।
कस्तूरिकामृगविमर्दसुगन्धिरेति
रागीव सक्तिमधिकां विषयेषु वायुः ॥

६२--प्रीत्यै यूनां व्यवहिततपनाः
प्रौढध्वान्तं दिनमिह जलदाः ।
दोषामन्यं विदधति सुरत-
क्रीडायासश्रमशमपटवः ॥

६३--भग्नो निवासोऽयमिहास्य पुष्पैः
सदानतोयेन विषाणिनागः ।
तीव्राणि तेनोज्झति कोपितोऽसौ
सदानतोयेन विषाणि नागः ॥

६४--प्रालेयशीतमचलेश्वरमीश्वरोऽपि
सान्द्रेभचर्मवसनावरणोऽधिशेते ।
सर्वर्तुनिर्वृतिकरे निवसन्नुपैति
न द्वन्द्वदुःखमिह किञ्चिदकिञ्चनोऽपि ॥

६५--नवनगवनलेखाश्याममध्याभिराभिः
स्फटिककटकभूभिर्नाटयत्येष शैलः ।
अहिपरिकरभाजो भास्मनैरङ्गरागै-
रधिगतधवलिम्नः शूलपाणेरभिख्याम् ॥

६१–इस पर्व्वत में त्वचामें सारांशवालों (बांसों) के छिद्रों के पूर्ण करनेसे गीतके सुखको प्राप्तहोनेवाले कम्बलके रोमों का रगड़नेवाला कस्तूरी के मृगोंके रगड़ने से उत्तम सुगन्धिवाला यह पवनकामीके समान विषयों में अधिक आसक्तिको प्राप्त होता है ॥

६२–इस पर्व्वत में युवती और युवापुरुषों की प्रीति के लिये सूर्य्यके छिपानेवाले सुरतकी क्रीड़ासे उत्पन्नहुए व्यायाम (कसरत)के श्रमके शान्तकरनेमें समर्थ मेघ बड़े अन्धकार वाले दिनको रात्रिमाननेवाला बनाताहै ॥

६३–इस पर्व्वत में इससर्प का निवास पुष्पोंसे नम्र यहवृक्ष मदजलवाले जिस हाथीने तोड़ाहै उसी हाथी से कोपको प्राप्तकरायागया यहसर्प तीव्रविषोंको उगलताहै ॥

६४–शिवजीभी घने गजचर्मरूपी वस्त्र के आच्छादन करनेवाले होकर पाले से शीत हिमवान् पर्व्वत में सोते हैं संपूर्ण ऋतुओं से सुखके देनेवाले इस (पर्व्वत) में रहनेवाला दरिद्री भी स्वल्पभी शीत और उष्ण के दुःखको नहींप्राप्त होता है ॥

६५–यह पर्व्वत नवीन वृक्षोंके वनकी पंक्तिसे श्याममध्यवाली स्फटिक मणिकी किनारे की भूमियों से सर्परूपी परिकरके बांधनेवाले भस्म के अंगरागों से श्वेतवर्णवाले शिवजीकी शोभाका अनुकरण करताहै ॥

६६–दधद्भिरभितस्तटौ विकचवारिजाम्बूनदै-
विनोदितदिनक्लमाः कृतरुचश्च जाम्बूनदैः ।
निषेव्य मधु माधवाः सरसमत्र कादम्बरं
हरन्ति रतये रहः प्रियतमांगकादम्बरम् ॥

६७–दर्पणनिर्मलासु पतिते घनतिमिरमुषि
ज्योतिषि रौप्यभित्तिषु पुरःप्रतिफलति मुहुः ।
व्रीडमसम्मुखोऽपि रमणैरपहृतवसनाः
काञ्चनकन्दरासु तरुणीरिह नयति रविः ॥

६८–अनुकृतशिखरौघश्रीभिरभ्यागतेऽसौ
त्वयि सरभसमभ्युत्तिष्ठतीवाद्रिरुच्चैः ।
द्रुतमरुदुपनुन्नैरुन्नमद्भिः सहेलं
हलधरपरिधानश्यामलैरम्बुवाहैः ॥

इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालबधे महाकाव्ये रैवतकवर्णनं नाम
चतुर्थः सर्गः ४ ॥

६६–इस पर्व्वत में यादवलोग फूलेहुए कमलयुक्त जलवाले किनारों को धारणकरनेवाले नदोंसे दिनके संतापको दूर करके सुवर्ण के आभूषणों से उत्पन्नहुई शोभावाले होकर स्वादुयुक्त इक्षुकी मदिराको पीकर रतिकेलिये एकान्त में प्रियाओंके शरीरसे वस्त्रोंको खेंचते हैं ॥

६७–इस पर्व्वत में सूर्य्य दर्पण के समान निर्मलचांदी की दीवारों में व्याप्त बड़े अन्धकार के नाशकरनेवाले अपनेतेज के सुवर्ण की कन्दराओं में वारंवार जानेपर पतियों से ले लियेगये वसनवाली स्त्रियों को सन्मुख नहींभी स्थित होकर लज्जाको प्राप्तकरताहै ॥

६८–यह पर्व्वत आपके आनेपर शिखरके समूहोंकी शोभा के अनुकरण करने वाले शीघ्रपवनसे प्रेरित लीलापूर्व्वक उठतेहुए बलभद्रके वस्त्रोंके समान नीलवर्णवाले मेघों से मानों एकाएकी अभ्युत्थान करताहै ॥

इतिश्रीमाघकृतशिशुपालबधस्य भाषानुवादे रैवतकवर्णनं नाम चतुर्थस्सर्गः ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ॥

सेनावर्णनपुरस्सरं भगवतः श्रीकृष्णस्य सेनानिवेशवर्णनम् ॥

१—इत्थङ्गिरः प्रियतमा इव सोऽव्यलीकाः
शुश्राव सूततनयस्य तदा व्यलीकाः ।
रन्तुन्निरन्तरमियेष ततोऽवसाने
तासां गिरौ च वनराजिपटं वसाने ॥

२—तं स द्विपेन्द्रतुलितातुलतुंगशृंग-
मभ्युल्लसत्कदलिकावनराजिमुच्चैः ।
विस्ताररुद्धवसुधोऽन्वचलञ्चचाल
लक्ष्मीन्दधत्प्रतिगिरेरलघुर्बलौघः ॥

३—भास्वत्करव्यतिकरोल्लसिताम्बरान्ताः
सापत्रपा इव महाजनदर्शनेन ।
संविव्युरम्बरविकाशि चमूसमुत्थं
पृथ्वीरजः करभकण्ठकडारमाशाः ॥

पांचवां सर्ग ॥

पर्व्वतमें डेरोंके डालने समेत श्रीकृष्णजीकी सेनाका वर्णन ॥

१–उनश्रीकृष्णजीने अप्रिय रहित प्रियतमाओंके समानास्थित सत्य २ दारुककी वाणियां सुनी इसके उपरान्त उन वाणियोंकी समाप्ति में छिद्रसे रहित वनोंकी पंक्तिरूपी वस्त्रकेआच्छादनकरनेवालेपर्व्वतमेंरमणकरनेकीइच्छाकी॥

२–शोभायमान कदलीरूपी पताकावाले अथवा शोभायमान कदलीके वनोंकी पंक्तिवाले उन्नत विस्तारसे पृथ्वीकेव्याप्त करनेवाले द्वितीय पर्व्वतकी शोभाको धारण करताहुआ बड़ासेनाओंका समूह हाथियोंके तुल्य अनुपम बड़े शृंगवाले पर्व्वतमें चला ॥

३–दिशाओंने सूर्य्यकी किरणोंके व्याप्तहोनेसे प्रकाशितआकाशवाली अथवा दीप्तिमान् (पुरुष) केहाथके स्पर्शसे गिरेहुए वस्त्रवाली इससे बड़ोंके देखनेसे मानों लज्जायुक्त अम्बर (आकाश और वस्त्र) में शोभितसेनासे उत्पन्नहुआ उष्ट्रके बच्चोंके कन्धेके समान धुमैली पृथ्वी की रजको धारण किया ॥

४—आवर्त्तिनः शुभफलप्रदशुक्तियुक्ताः
सम्पन्नदेवमणयो भृतरन्ध्रभागाः।
अश्वाः प्यधुर्वसुमतीमतिरोचमाना-
स्तूर्णं पयोधय इवोर्मिभिरापतन्तः॥

५—आरक्षमग्नमवमत्य सृणिं सिताग्र-
मेकः पलायत जवेन कृतार्त्तनादः।
अन्यः पुनर्मुहुरुदप्लवतास्तभार-
मन्योन्यतः पथि वताविभितामिभोष्ट्रौ॥
६—आयस्तमैक्षत जनश्चटुलाग्रपादं
गच्छन्तमुच्चलितचामरचारुमश्वम्।
नागं पुनर्मृदु सलीलनिमीलिताक्षं
सर्वः प्रियः खलु भवत्यनुरूपचेष्टः॥

७—त्रस्तः समस्तजनहासकरः करेणो-
स्तावत् खरः प्रखरमुल्ललयाञ्चकार।
यावच्चलासनविलोलनितम्वविम्ब-
विस्रस्तवस्त्रमवरोधवधूः पपात॥
८—शैलोपशल्यनिपतद्रथनेमिधारा-
निष्पिष्ट निष्ठुरशिलातलचूर्णगर्भाः।
भूरेणवो नभसि नद्धपयोदचक्रा-
श्चक्रीवदंगरुहधूम्ररुचो विसस्रुः॥

४–आवर्त्त (घोड़ों के एकप्रकारके चिह्न और भँवर) वाले शुभफलके देनेवाली शुक्तियों (सीपी और घोड़ोंके चिह्न विशेषों) से युक्त सम्पूर्ण देवमणियों (घोड़ोंके चिह्नविशेष और कौस्तुभादिकों) से युक्त पूर्ण रंध्रभाग (बगलें और नीचेकेस्थान)वाले अत्यन्त रोचमान(कण्ठके चिह्नवाले और दीप्तिमान्) उर्म्मियों (घोड़ोंकी गति और तरंगों)से दौ-ड़तेहुएघोड़ोंने समुद्रोंके समान पृथ्वीका आच्छादनकिया ॥

५–मार्गमें हाथी और ऊंट परस्परमें डरे एक (हाथी) कुम्भ के नीचे प्रविष्ट तीक्ष्ण अग्रभागवाले अंकुशको न गिनकर बड़ा नादकरताहुआ वेगसे भागा अन्य (ऊंट) भारको छो-ड़कर भागा ॥

६–लोगोंने आगेके चरणको चंचलकरके चलतेहुए चंचल चामरोंसे सुन्दर यत्नपूर्व्वक लायेहुए घोड़े को देखा फिर गर्जतेहुए लीलापूर्व्वक नेत्रोंके मूंदनेवाले मन्दगमनकरते हुए हाथीको देखा अनुरूप चेष्टाकरनेवाले होकर सम्पूर्ण प्राणी प्रियहोते हैं ॥

७– हथिनीसे डराहुआ गर्दभ सम्पूर्ण लोगोंको हँसानेवाला होकर तबतक बहुत उछला जब तक कि चंचल आसन से अलगहुए नितम्ब से वस्त्रगिरकर स्त्रीनहीं गिरपड़ी ॥

८–पर्व्वतके किनारेकी पृथ्वीमें दौड़तेहुए रथोंकी नेमियोंकी धाराओंसे पिसीहुई कठिन शिलातलोंके चूर्णवाली आ-काशमें मेघोंके समूहोंकी बाँधनेवाली गधेके रोमोंकेसमान धुमेलेवर्णवाली पृथ्वीकी धूलियां फैलीं ॥

९—उद्यत्कृशानुशकलेषु खुराभिघाता-
द्भूमीसमायतशिलाफलकाचितेषु ।
पर्य्यन्तवर्त्मसु विचक्रमिरे महाश्वाः
शैलस्य दर्दुरपुटानिव वादयन्तः ॥

१०—तेजोनिरोधसमतावहितेन यन्त्रा
सम्यक्कशात्रयविचारवता नियुक्तः ।
आरट्टजश्चटुलनिष्ठुरपातमुच्चै-
श्चित्रं चकार पदमर्द्धपुलायितेन ॥

११—नीहारजालमलिनः पुनरुक्तसान्द्राः
कुर्वन् वधूजनविलोचनपक्ष्ममालाः ।
क्षुण्णः क्षणं यदुबलैर्दिवमाततांसुः
पांशुर्दिशां मुखमतुत्थयदुत्थितोऽद्रेः ॥

१२—उच्छिद्य विद्विष इव प्रसभं मृगेन्द्रा-
निन्द्रानुजानुचरभूपतयोऽध्यवात्सुः ।
वन्येभमस्तकनिखातनखाग्रमुक्त-
मुक्ताफलप्रकरभाञ्जि गुहागृहाणि ॥

१३—बिभ्राणया बहलयावकपंकपिंग-
पिच्छावचूडमनुमाधवधाम जग्मुः ।
चञ्च्वग्रदष्टचटुलाहिपताकयान्ये
स्वावासभागमुरगाशनकेतुयष्ट्या ॥

९–खुरोंके लगनेसे उठेहुए अग्निके कणवाले पृथ्वीमें बराबर विस्तीर्ण शिलाओंके खंडोंसे बिछेहुए पर्वत के किनारेके मार्गोंमें बड़े घोड़े दर्दुरों (वाद्यविशेषों) के पुटोंको मानों बजातेहुए चले ॥

१०–वेगके रोकनेसे समताको प्राप्त करानेवाले चाबुकोंके त्रय (उत्तम मध्यम और अधम घोड़ेको मृदुसम और निष्ठुर ताड़न) के जाननेवाले सवारसे अच्छे प्रकारसे नियुक्त उन्नत आरट्ट (एकप्रकारके घोड़ेकी जाति) में उत्पन्न (घोड़ा) चंचल और निष्ठुर (चरणोंका) प्रक्षेप करकेअ-र्धपुलायित (घोड़ोंकी एकप्रकारकीगति) से अद्भुत पद-क्रम (पैरोंकारखना) करताथा ॥

११–पालेके समान मलिन स्त्रियोंके नेत्रोंके पलकोंको फिरदूनी घनी करतीहुई क्षणभर यादवोंकी सेनासे मभाईगई प-र्वतसे उठीहुई आकाशमें फैलनेकी इच्छा करतीहुईधूलि ने दिशाओंके मुखोंको आच्छादन किया ॥

१२–इन्द्रके छोटेभाई (श्रीकृष्णजी) के अनुचर राजालोगश-त्रुओंके समान सिंहोंको हठसे मारकर वनके हाथियोंके मस्तकमें गाढ़ेगये नखोंके अग्रभागोंसे गिरेहुए मोतियोंके समूहवाले गुहारूपी गृहोंमें रहे ॥

१३--अन्य राजालोग महावरकी कीचसे रक्तवर्ण मयूरकी पूछ रूपी केशके समूहोंकी धारण करनेवाली चोंचकेअग्रभागों से काटीगई सर्परूपी पताकावाली गरुड़की पताकासे श्री कृष्णजीके खेमेमें अपने निवास के देशको प्राप्त हुए ॥

१४--छायामपास्य महतीमपि वर्त्तमाना-
मागामिनीं जगृहिरे जनतास्तरूणाम् ।
सर्वोहि नोपगतमप्यपचीयमानं
वर्द्धिष्णुमाश्रयमनागतमभ्युपैति ॥

१५--अग्रे गतेन वसतिं परिगृह्य रम्या-
मापात्यसैनिकनिराकरणाकुलेन ।
यान्तोऽन्यतः प्लुतकृतस्वरमाशु दूरा-
दुद्बाहुनाजुहुविरे मुहुरात्मवर्ग्याः ॥

१६--सिक्ता इवामृतरसेन मुहुर्जनानां
क्लान्तिच्छिदो वनवनस्पतयस्तदानीम् ।
शाखावसक्तवसनाभरणाभिरामाः
कल्पद्रुमैः सह विचित्रफलैर्विरेजुः ॥

१७--यानाज्जनः परिजनैरवतार्य्यमाणा
राज्ञीर्नरापनयनाकुलसौविदल्लाः ।
स्रस्तावगुण्ठनपटाः क्षणलक्ष्यमाण-
वक्त्रश्रियः सभयकौतुकमीक्षते स्म ॥

१८--कण्ठावसक्तमृदुबाहुलतास्तुरंगा-
द्राजावरोधनबधूरवतारयन्तः ।
आलिंगनान्यधिकृताः स्फुटमापुरेव
गण्डस्थलीः शुचितया न चुचुम्बुरासाम्॥

१९--दृष्ट्वेव निर्जितकलापभरामधस्तात्
व्याकीर्णमाल्यकवरां कवरीं तरुण्याः ।
प्रादुद्रवत् सपदि चन्द्रकवान् द्रुमाग्रात्
संहर्षिणा सह गुणाभ्यधिकैर्दुरासम् ॥

१४–जनों के समूह वृक्षोंकी बड़ीभी छायाको त्यागकरके आने वाली छायामें प्राप्तहुए संपूर्ण पुरुष प्राप्तभी क्षयहोते हुए आश्रयको नहीं ग्रहणकरतेहैं परन्तु नहीं प्राप्तहुएभी बढ़ने वाले आश्रयको ग्रहणकरतेहैं ॥

१५–आगे प्राप्तउत्तम निवासको पाकर स्वयं ग्रहण करनेके लिये आतेहुए सैनिकों के रोकने में व्याकुल हाथके उठाने वाले किसी पुरुषने दूसरी ओर जातेहुए पुरुषोंको प्लुतस्वर से आह्वान करके शीघ्रही दूरसे वारंवार बुलाया ॥

१६–मानों अमृतके रससे सींचे गये वारंवार मनुष्यों के श्रमके दूर करनेवाले शाखाओंमें लगे हुए वस्त्र और आभूषणों से सुन्दर वनके वृक्ष विचित्र फल वाले कल्पद्रुमों के साथ उस समय शोभितहुए ॥

१७–परिजनोंसे वाहनों परसे उतारी गईं देखने वाले पुरुषोंके हटाने में व्याकुल कंचुकी वालीं गिरे हुए डुपट्टे वालीं क्षणभरदेखीगईं मुखकी शोभावालीं रानियां भय औरकौतुक केसाथ देखीगईं ॥

१८–घोड़ोंपरसे राजाओं की स्त्रियोंके उतारने वाले अधिकारी लोगों ने कण्ठमें लगीहुई कोमल भुजारूपी लतावाले होकर साक्षात् आलिंगनको प्राप्तही हुए परन्तु इनस्त्रियों के कपोल शुद्धतासे नहीं चुम्बन किये ॥

१९–वृक्षकेनीचे मोरकी पूंछकी जीतनेवाली फैलीहुई मालासे चित्रवर्णवाली स्त्रीकी कवरी (केशोंके समूह) को मानों देखकर शीघ्र मोर वृक्षकी चोटी पर से उड़गया निश्चय मत्सरवालेसे गुणमें अधिकवालोंकेसाथ नहींरहाजासक्ता॥

२०–रोचिष्णुकाञ्चनचयांशुपिशङ्गिताशा
वंशध्वजैर्जलदसंहतिमुल्लिखन्त्यः ।
भूभर्त्तुरायतनिरन्तरसन्निविष्टाः
पादा इवाभिबभुरावलयो रथानाम् ॥

२१–छायाविधायिभिरनुज्झितभूतिशोभै-
रुच्छ्रायिभिर्बहुलपाटलधातुरागैः ।
दूष्यैरिव क्षितिभृतां द्विरदैरुदार-
तारावलीविरचनैर्व्यरुचन्निवासाः ॥

२२–उत्क्षिप्तकाण्डपटकान्तरलीयमान-
मन्दानिलप्रशमितश्रमघर्मतोयैः ।
दूर्वाप्रतानसहजास्तरणेषु भेजे
निद्रासुखं वसनसद्मसु राजदारैः ॥

२३–प्रस्वेदवारिसविशेषविषक्तमङ्गे
कूर्पासकं क्षतनखक्षतमुत्क्षिपन्ती ।
आविर्भवद्घनपयोधरबाहुमूला
शातोदरी युवदृशां क्षणमुत्सवोऽभूत् ॥

२४–यावत्स एव समयः सममेव ताव-
दव्याकुलाः पटमयान्यभितो वितत्य ।
पर्य्यापतत्क्रयिकलोकमगण्यपण्य-
पूर्णापगा विपणिनो विपणीर्विभेजुः ॥

२०–दीप्तिमान् सुवर्ण के समूहोंकी किरणोंसे दिशाओं कोपीत-वर्णकरने वाली बांसोंकी ध्वजाओं से अथवा वांसरूपी ध्वजाओंसे मेघके समूहों को स्पर्श करनेवाली विस्तीर्ण और निरन्तर स्थितरथोंकी पंक्तियां पर्वतके नीचेकीशिला-ओंके समान शोभित हुईं ॥

२१–राजालोगोंके निवास छाया (कान्ति और साया) करने वाले भूति (भस्म और सम्पत्ति) की शोभाके नहींत्याग-नेवाले उन्नत घनेरक्त धातुरागवाले उत्तम मोतियों की पंक्तियोंकी रचना वाले खेंमोंके समान हाथियोंसे शोभित होतेथे ॥

२२–उठाये हुए वायुके आनेके लिये खेंमेमें लगेहुए कपड़े के भीतरप्राप्त मन्द पवन से शान्त स्वेद के जलवाली राजा लोगों की स्त्रियां दूर्वाके समूहरूपी स्वाभाविक बिछौनेवाले खेंमोंमें निद्राके सुखको प्राप्तहुईं ॥

२३–शरीरमें पसीनेके जलसे अत्यन्त टपकीहुई कंचुकी (आंगी)को फिरनखक्षतोंको विदीर्णकरके उतारतीहुई प्रकाश-मान घने पयोधर और बाहुमूल वाली शातोदरी (सूक्ष्म उदर वाली स्त्री) युवा पुरुषोंके नेत्रों की क्षणभर उत्सव रूपहुई ॥

२४–वैश्य लोगोंने उसीसमय एकवार व्याकुल न होकर दोनों ओर तंबुओंको विस्तार करके दौड़तेहुए खरीदने वालोंसे युक्त असंख्य बेचने की वस्तुओंसे पूर्ण दुकान वाले बाजार बनाये ॥

२५—अल्पप्रयोजनकृतोरुतरप्रयासै-
रुद्गूर्णलोष्टलगुडैः परितोऽनुविद्धम्।
उद्यन्तमुद्द्रुतमनोकहजालमध्या-
दन्यः शशं गुणमनल्पमवन्नवाप॥

२६—त्रासाकुलः परिपतन् परितो निकेतान्
पुम्भिर्न कैश्चिदपि धन्विभिरन्वबन्धि।
तस्थौ तथापि न मृगः क्वचिदङ्गनाना-
माकर्णपूर्णनयनेषु हतेक्षणश्रीः॥

२७—आस्तीर्णतल्परचितावसथः क्षणेन
वेश्याजनः कृतनवप्रतिकर्मकाम्यः।
खिन्नानखिन्नमतिरापततो मनुष्यान्
प्रत्यग्रहीच्चिरनिविष्ट इवोपचारैः॥

२८—सस्नुः पयः पपुरनेनिजुरम्बराणि
जक्षुर्विसंधृतविकाशिविसप्रसूनाः।
सैन्याः श्रियामनुपभोगनिरर्थकत्व-
दोषप्रवादममृजन् नगनिम्नगानाम्॥

२९—नाभिह्रदैः परिगृहीतरयाणि यत्र
स्त्रीणां बृहज्जघनसेतुनिवारितानि।
जग्मुर्जलानि जलमण्डुकवाद्यवल्गु
वल्गद्घनस्तनतटस्खलितानि मन्दम्॥

३०—आलोलपुष्करमुखोल्लसितैरभीक्ष्ण-
मुक्षाम्बभूवुरभितो वपुरम्बुवर्षैः।
खेदायतश्वसितवेगनिरस्तमुग्ध-
मूर्द्धन्यरत्ननिकरैरिव हास्तिकानि॥

२५–थोड़े प्रयोजनके लिये बड़े परिश्रमके करने वाले ढीले और लाठियों के उठाने वाले पुरुषों से सब ओर से रोकेगये वृक्षों के मध्यसे उठेहुए भागेहुए खरगोस को रक्षाकरताहुआ अन्यपुरुषबड़े उत्कर्षको (गुणको) प्राप्तहुआ ॥

२६--भयसे व्याकुल स्थानोंके सब ओर दौड़तेहुए हिरणको कितनेही धनुषधारी पुरुषोंने पीछानहीं किया तथापि स्त्रियोंके कर्ण पर्य्यन्त खींचेहुए नेत्ररूपी बाणों से हतहुई नेत्रोंकी शोभावाला कहींभी नहीं ठहरा ॥

२७–क्षणभरमें शय्याको बिछाकर निवासस्थानों के बनानेवाले कियेहुए नवीन शृंगारसे कामनाकरनेके योग्य प्रसन्नचित्त मानों सदैवके रहनेवाले वेश्याओं के समूहनेथकेहुए आते हुए मनुष्यों को उपचारों (सत्कारों) से वशीभूत किया॥

२८–सैनिक लोगोंने पर्व्वतकी नदियोंकी शोभाओं का निष्फल भोगरूपी दोष दूरकिया स्नानकिया जलपिया वस्त्र धोये फूलेहुए कमलोंके लेनेवालोंने कमलकी डंडियां खाईं ॥

२९–स्त्रियोंकी नाभिरूपी तड़ागोंसे निषेधकियेगये वेगवाले बड़ेजंघारूपी बाँधोंसे रोकेगये जलरूपी मंडूकवाद्य (वाद्यविशेष)से सुन्दर घने स्तनतटों से गिरेहुए जल मन्द २ बहनेलगे ॥

३०–हाथियों के समूह चंचलसूड़ोंके अग्रभागोंके छिद्रों से फेंकेगये जलोंके कणोंके द्वारा परिश्रमसे अत्यन्तदीर्घश्वास के पवनके वेगसे बाहर फेंकेगये सुन्दर मस्तक पर रहने वाले रत्नोंके समूहोंसे शरीर को वारंवारसींचतेथे ॥

३१—ये पाक्षिणः प्रथममम्बुनिधिंगतास्ते
येऽपीन्द्रपाणितुलितायुधलूनपक्षाः ।
ते जग्मुरद्रिपतयः सरसीर्विगाढु
माक्षिप्तकेतुकुथसैन्यगजच्छलेन ॥

३२—आत्मानमेव जलधेः प्रतिविम्बितांग-
मूर्मौ महत्यभिमुखापतितं गजेन ।
क्रोधादधावदपभीरभिहन्तुमन्य
नागाभियुक्त इव युक्तमहो महेभः ॥

३३—नादातुमन्यकरिमुक्तमदाम्बुतिक्तं
धूतांकुशेन न विहातुमपीच्छताम्भः ।
रुद्धे गजेन सरितः सरुषावतारे
रिक्तोदपात्रकरमास्त चिरं जनौघः ॥

३४—पन्थानमाशु विजहीहि पुरःस्तनौ ते
पश्यन् प्रतिद्विरदकुम्भविशंकिचेताः ।
स्तम्बेरमः परिणिनंसुरसावुपैति
षिड्गैरगद्यत ससम्भ्रममेव काचित् ॥

३५—कीर्णं शनैरनुकपोलमनेकपानां
हस्तैर्विगाढमदतापरुजः शमाय ।
आकर्णमुल्लसितमम्बु विकाशिकाश-
नीकाशमाप समतां सितचामरस्य ॥

३१—जोपक्ष संयुक्त पर्व्वतोंके स्वामीथेवह पहलेही समुद्रमें प्रविष्टहुए (और) जो इन्द्रके हाथसे प्रेरणा कियेहुए वज्रसे कटेहुए पक्षवाले थे वहभी पताकाऔर फूलोंसे रहित सेनाकेगजोंके बहानेसे तड़ागोंके मझाने को चले ॥

३२—बड़ाहाथीतड़ागकीबड़ीतरंगमेंप्रतिविम्बितशरीरवालेसन्मुख आतेहुए अपनेहीको देखकरअन्य हाथीसे सन्मुखताकिये गयेके समान जल्दीसे भयको त्यागकर क्रोधसे दौड़ा मूर्खतासे ऐसा होना ठीकही है ॥

३३—दूसरे हाथी से छोड़ेगये मदजल से सुगन्धित जलकेग्रहण करने को और त्यागकरने को भी नहीं इच्छा करते भये अंकुशके कपाने वाले क्रोधयुक्त हाथी से पर्व्वती नदी के किनारे के रुकनेपर जनों का समूह हाथों में खाली पात्रों को लेकरबहुत देरतक ठहरा ॥

३४—मार्गको शीघ्रछोड़ो सन्मुख तुम्हारे स्तनों को देखताहुआ अन्यहाथी के मस्तक की शंकासे युक्त चित्तवाला हाथीप्रहार करनेकी इच्छाकरताहुआ यह आताहै यहबात किसी स्त्रीसे जारलोगोंने शीघ्रतासे कही ॥

३५—हाथियों के बड़े मदसे उत्पन्न पापरूपी रोगकी शान्ति के लिये कपोलोंमें फेंकाहुआ कानपर्य्यन्त प्राप्तफूलेहुए कांस के फूलके समान जल श्वेतचमरकी तुल्यताको प्राप्तहुआ॥

३६--गण्डूषमुज्झितवता पयसः सरोषं
नागेन लब्धपरवारणमारुतेन।
अम्भोधिरोधसि पृथुप्रतिमानभाग
रुद्धोरुदन्तमुसलप्रसरं निपेते॥

३७--दानं ददत्यपि जलैः सहसाधिरूढे
को विद्यमानगतिरासितुमुत्सहेत।
यद्दन्तिनः कटकटाहतटान्मिमंक्षो-
र्मङ्क्षूदपाति परितः पटलैरलीनाम्॥

३८--अन्तर्जलौघमवगाढवतः कपोलौ
हित्वा क्षणं विततपक्षतिरन्तरीक्षे।
द्रव्याश्रयेष्वपि गुणेषु रराज नीलो
वर्णः पृथग्गत इवालिगणो गजस्य॥

३९--संसर्पिभिः पयसि गैरिकरेणुरागै-
रम्भोजगर्भरजसांगनिषङ्गिणा च।
क्रीड़ोपभोगमनुभूय सरिन्महेभा-
वन्योन्यवस्त्रपरिवर्त्तमिव व्यधत्ताम्॥

४०--याञ्चन्द्रकैर्मदजलस्य महानदीनां
नेत्रश्रियं विकसतो विदधुर्गजेन्द्राः।
ताम्प्रत्यवापुरविलम्बितमुत्तरन्तो
धौतांगलग्ननवनीलपयोजपत्रैः॥

३६–अन्यहाथी की वायुको पानेवाला क्रोधपूर्व्वक सूंड़के जल का फेंकनेवाला हाथी समुद्र के किनारेपर दाँतोंके मध्यसे बड़े मुसलरूपी दांतोंके विस्तारके रुकनेपर गिरा ॥

३७–दान (धन और मद) के देनें परभी जलों (जड़ों और नीरों) से दबजानेपर अन्यगतिवाला कौन पुरुष वहांठहरने को उत्साह करेगा जिसकारण से मज्जन करने की इच्छाकरते हुए हाथीके कटाह (कढ़ाव) रूपी मस्तक से भ्रमरोंके समूह चारोंओर को शीघ्रही उड़गये ॥

३८–जल के समूहों में प्रविष्ट हाथीके गंडस्थलों को छोड़कर क्षणमात्र आकाश में फैलेहुए पक्षमूलवाला भ्रमरों का समूह गुणोंके द्रव्यके आश्रयहोनेपर भी पृथक्स्थित हाथी के नीलवर्ण के समान शोभितहुआ ॥

३९–नदी और बड़ाहाथी यह दोनों जलमें फैलेहुए गेरूकीरेणुरूपी राग से और अंग में लगेहुए कमल के मध्यके पराग से क्रीड़ापूर्व्वक अच्छे भोग को अनुभव करके मानों आपस में वस्त्रों को बदलते थे ॥

४०–बड़ेहाथी खुलेहुए सबओरसे जलमें तेलकी बूंदके समान फैलते हुए मदजलके चन्द्राकार मंडलोंसे बड़ी नदियोंकी जिस नेत्र शोभाको करतेथे उसी नेत्रकी शोभाको जलसे निकलने पर धोयेहुए अंगोंमें लगेहुए नवीन नीलकमलों के पत्रोंसे शीघ्रही प्राप्त होतेथे ॥

४१–प्रत्यन्यदन्ति निशितांकुशदूरभिन्न-
निर्य्याणनिर्यदसृजं चलितं निषादी ।
रोद्धुम्महेभमपरिव्रढिमानमागा-
दाक्रान्तितो न वशमेति महान् परस्य ॥

४२–सेव्योऽपि सानुनयमाकलनाय यन्त्रा
नीतेन वन्यकरिदानकृताधिवासः ।
नाभाजि केवलमभाजि गजेन शाखी
नान्यस्य गन्धमपि मानभृतः सहन्ते ॥

४३–अद्रीन्द्रकुञ्जचरकुञ्जरगण्डकाष-
संक्रान्तदानपयसो वनपादपस्य ।
सेनागजेन मथितस्य निजप्रसूनै-
र्म्म्ले यथागतमगामि कुलैरलीनाम् ॥

४४–नोच्चैर्यदा तरुतलेषु ममुस्तदानी-
माधोरणैरभिहिताः पृथुमूलशाखाः ।
बन्धाय चिच्छिदुरिभास्तरसात्मनैव
नैवात्मनीनमथवा क्रियते मदान्धैः ॥

४५–उष्णोष्णशीकरसृजः प्रबलोष्मणोऽन्त-
रुत्फुल्लनीलनलिनोदरतुल्यभासः ।
एकान् विशालशिरसो हरिचन्दनेषु
नागान् बबन्धुरपरान्मनुजा निरासुः ॥

४१–अन्यहाथी के प्रति दौड़तेहुए तीक्ष्ण अंकुशसे अत्यन्त छि-
देहुए नेत्रके समीपवर्त्ती अपांग देशसे निकलतेहुए रुधिर
वाले बड़ेहाथी को रोकनेके लिये महावत समर्थनहींहुआ
क्योंकि बलवान् बलात्कारसे दूसरेके वशीभूत नहींहोता ॥

४२–महावतसे बाँधने के लिये बड़ी नम्रतापूर्व्वक लेजाये गये
हाथीसे वनके रहनेवाले हाथियोंके मद जलसेकीहुई सुग-
न्धवाला वृक्षसेवनकरने के योग्यभी नहीं सेवनकियागया
परन्तु केवल यहीनहीं (किन्तु) तोड़भी डालागया मानी
लोग अन्यकी गन्धको भी नहीं सहसके हैं ॥

४३–रैवतककी कुंजोंमें घूमनेवाले हाथीके गंडस्थलों के रगड़ने
से लगेहुए मद जलवाले सेनाके हाथीसे तोड़ेगये वृक्षके
निजफूलम्लान होगये भ्रमरके समूहतो जिसप्रकार आये
थे (उसीप्रकार से) चलेगये ॥

४४–जिससमय ऊंचेवृक्षों के नीचे नहीं समाये उससमय हा-
थियोंने महावतोंसे कहेगये मोटीबड़ी शाखाएं अपनेबाँधने
के लिये आपही तोड़ीं अथवा मदान्ध अपनाहित नहीं
करते हैं ॥

४५–मनुष्यों ने उष्णजलोंके कणोंके छोड़नेवाले अन्तःकरणमें
बड़ी ऊष्मावाले फूले नीलकमलकी रजकेसमान कान्ति-
वाले कुछ नाग (हाथी) हरिचन्दनों में बाँधे अन्य नाग
(सर्प) निकालदिये ॥

४६--कण्डूयतः कटभुवं करिणो मदेन
स्कन्धं सुगन्धिमनुलीनवता नगस्य-
स्थूलेन्द्रनीलशकलावलिकोमलेन
कण्ठे गुणत्वमलिनां वलयेन भेजे ॥

४७--निर्धूतवीतमपि बालकमुल्ललन्तं
यन्ता क्रमेण परिसान्त्वनतर्जनाभिः ।
शिक्षावशेन शनकैर्वशमानिनाय
शास्त्रं हि निश्चितधियां क्व न सिद्धिमेति॥

४८--स्तम्भं महान्तमुचितं सहसा मुमोच
दानं ददावतितरां सरसाग्रहस्तः ।
बद्धापराणि परितो निगडान्यलावीत्
स्वातन्त्र्यमुज्ज्वलमवाप करेणुराजः ॥

४९--जज्ञे जनैर्मुकुलिताक्षमनाददाने
संरब्धहस्तिपकनिष्ठुरचोदनाभिः ।
गम्भीरवेदिनि पुरः कवलं करीन्द्रे
मन्दोऽपि नाम न महानवगृह्य साध्यः ॥

५०--क्षिप्तं पुरो न जगृहे मुहुरिक्षुकाण्डं
नापेक्षते स्म निकटोपगतां करेणुम् ।
सस्मार वारणपतिः परिमीलिताक्ष-
मिच्छाविहारवनवासमहोत्सवानाम् ॥

४६–गंडस्थल को खुजलातेहुए हाथीके मदसे सुगन्धित वृक्षके स्कन्ध (गुद्दे) में स्थित बड़ी नीलमणियों के समानसुन्दर भ्रमरोंके समूह कण्ठमें कंकणपनेको प्राप्तहुए ॥

४७–महावतने पादघातको न मान करके कूदतेहुए पांचवर्ष के हाथीको शिक्षाके वशसे क्रमपूर्वक परिसांत्वनाओं (पुचकारना)से और तर्जनाओंसे शनैःशनैः शान्तकोप्राप्तकिया॥

४८–बड़ा हाथी अत्यन्त स्वतन्त्रताको प्राप्तहुआ, (उसने) उचित बड़े स्तंभ (हाथीके पैरकी जंजीर और जड़ता) को तोड़डाला गलितहस्ताग्रवाला होकर अत्यन्त दान (मदऔर धन) दिया बंधाहै पश्चिम पाद जिनमें अथवा बँधेहैं अन्य पुरुष जिनमें ऐसी जंजीरें तोड़डालीं ॥

४९–गंभीरवेदी (एकप्रकारके) हाथीके क्रुद्ध महावतकी निष्ठुर तर्जनाओंसेभी नेत्रको मूंदकरग्रासके न लेनेपरमन्दभी(एक प्रकारका) हाथी बलमें अधिक पकड़कर साध्यनहीं होताहै यह लोगोंने जाना ॥

५०–बड़ेहाथीने आगे फेंकेहुए इक्षुदंड (गांडे) को नहीं ग्रहण किया(और) समीपमें प्राप्तहथिनीकी इच्छानहींकी किन्तु नेत्रोंको मूंदकरइच्छापूर्वक विहारवाले वनवास रूपी महोत्सवोंका स्मरणकिया ॥

५१--दुःखेन भोजयितुमाशयिता शशाक
तुंगाग्रकायमनमन्तमनादरेण।
उत्क्षिप्तहस्ततलदत्तविधानपिण्ड-
स्नेहस्रुतिस्नपितबाहुरिभाधिराजम् ॥
५२--शुक्लांशुकोपरचितानि निरन्तराभि-
र्वेश्मानिरश्मिविततानि नराधिपानाम्।
चंद्राकृतीनि गजमण्डलिकाभिरुच्चै-
र्नीलाभ्रपंक्तिपरिवेशमिवाधिजग्मुः ॥
५३--गत्यूनमार्गगतयोऽपि गतोरुमार्गाः
स्वैरं समाचकृषिरे भुवि वेल्लनाय।
दर्पोदयोल्लसितफेनजलानुसार-
संलक्ष्य पल्ययनवर्ध्रपदास्तुरंगाः ॥

५४--आजिघ्रति प्रणतमूर्द्धनि वाह्लिजेऽश्वे
तस्यांगसंगमसुखानुभवोत्सुकायाः।
नासाविरोकपवनोल्लसितं तनीयो
रोमाञ्चतामिव जगाम रजः पृथिव्याः॥
५५--हेम्नः स्थलीषु परितः परिवृत्य वाजी
धुन्वन् वपुः प्रविततायतकेशपंक्तिः।
ज्वालाकणारुणरुचा निकरेण रेणोः
शेषेण तेजस इवोल्लसता रराज ॥

५१—उठायेहुए हाथोंमें रक्खेहुए हाथीके ग्रासके घृतके बहने से गीली भुजावाला भोजन करानेवालाउन्नत आगे के शरीर वाले अनादरसे नहीं झुकतेहुए बड़े हाथी को दुःखसे भो-जन करानेको समर्थहुआ ॥

५२—श्वेत वस्त्रोंसे कल्पित अथवा श्वेतकिरणोंसे व्याप्त किरणों से विस्तृत चन्द्रमाके समान आकृतिवाले राजालोगों के खेमे छिद्ररहित हाथियोंके झुंडोंसे श्याम मेघोंकी पंक्तियों से वेष्टन (घेरे) को मानों प्राप्तहुए ॥

५३--विशेष गमनसे रहित मार्गकी गतिवालेभी बड़ेमार्ग में प्रस्थान करनेवाले तेजकी उत्कटतासे फेनरूपहुए उद्धत स्वेद जलके अनुसार जानेगये पल्ययनवर्ध्र (काठी की रस्सी अर्थात् तंग)चिह्नवाले घोड़े पृथ्वीमें अंगोंकेलौटाने के लिये धीरेधीरे खैंचेगये ॥

५४--वाह्लि (घोड़ोंकी उत्पत्तिका कोईदेश)में उत्पन्न घोड़े के शिर झुकानेपर नासिकाके रंध्रकी वायुसे उठीहुई सूक्ष्म रज घोड़ेके शरीरके संगमसे उत्पन्नसुखके अनुभव करनेमें उत्सुक पृथ्वीकी रोमांचताको प्राप्तहुई ॥

५५--सुवर्ण की भूमियों में सबओर को चक्कर लगाकर शरीरको कंपाताहुआ पृथक् २ बड़ी २ केशोंकी पंक्तिवाला घोड़ा अग्निकणोंके समान कान्तिवाले धूलिके समूहसे अत्यन्त उत्कटतापूर्वक बाहर प्राप्त मानों बड़ेदर्प से शोभितहुआ ॥

५६--दन्तालिकाधरणनिश्चलपाणियुग्म-
मर्द्धोदितो हरिरिवोदयशैलमूर्ध्नः ।
स्तोकेन नाक्रमत वल्लभपालमुच्चैः
श्रीवृक्षकी पुरुषकोन्नमिताग्रकायः ॥

५७--रेजे जनैः स्नपनसान्द्रतरार्द्रमूर्त्ति-
र्देवैरिवानिमिषदृष्टिभिरीक्ष्यमाणः ।
श्रीसन्निधानरमणीयतरोऽश्व उच्चै-
रुच्चैःश्रवा जलनिधेरिव जातमात्रः ॥

५८- मश्रावि भूमिपतिभिः क्षणवीतनिद्रै-
रश्नन् पुरो हरितकं मुदमादधानः ।
ग्रीवाग्रलोलकलकिंकिणिकानिनाद-
मिश्रं दधद्दशनचुर्चुरशब्दमश्वः ॥
५९--उत्खाय दर्पचलितेन सहैव रज्ज्वा
कीलं प्रयत्नपरमानवदुर्ग्रहेण ।
आकुल्यकारि कटकस्तुरगेण तूर्ण-
मश्वेति विद्रुतमनुद्रवताश्वमन्यम् ॥
६०--अव्याकुलं प्रकृतमुत्तरधेयकर्म-
धाराः प्रसाधयितुमव्यतिकीर्णरूपाः ।
सिद्धं मुखे नवसु वीथिषु कश्चिदश्वं
वल्गाविभागकुशलो गमयाम्बभूव ॥

५६--पुरुषक (एकप्रकारके घोड़ोंकी स्थिति) से ऊर्ध्वस्थितआगे के शरीरवाला उदयाचलके मस्तकसे आधे उदयहुएसूर्य के समान स्थित श्रीवृक्षक (नामघोड़ों के चिह्न) वाला घोड़ा लगामके पकड़ने में निश्चल दोनों हाथवाले उत्तम सवारको कठिनता से नहीं उल्लंघन करताभया ॥

५७--स्नान करनेसे साचिक्कण और गीली आकृतिवाला देवताओंके समान निमेष रहित दृष्टिवाले पुरुषोंसे देखा गया श्री (लक्ष्मी और शोभा) की निकटतासे अत्यन्त रमणीय उन्नतघोड़ा समुद्रसे शीघ्र उत्पन्नहुए उच्चैःश्रवा के समान शोभित हुआ ॥

५८--आगेहरेतृणोंको खातेहुए ग्रीवाकेअग्रभागमें चंचल क्षुद्रघंटिकाओंकेशब्दोंसे मिलेहुए दांतोंके चुर२शब्दोंको धारण करतेहुए आनन्दको उत्पन्न करतेहुए घोड़े (घोड़ेके शब्द) को क्षणभरमें निद्राकेत्यागकरनेवाले राजालोगोंनेसुना ॥

५९--दर्पसे चलेहुए रस्सी समेत खूंटेको उखाड़ कर शीघ्र भागे हुए अन्य घोड़ेकी ओर घोड़ीकी भ्रांति से दौड़ते हुए यत्न में तत्पर मनुष्योंसे नहींग्रहण करनेमें योग्य घोड़ेनेकटकको व्याकुल करदिया ॥

६०--लगामके विवेकपूर्वक प्रयोगमें कुशल किसी सवार ने नहीं डरे हुए सजे हुए मुखकर्म (घोड़ोंके सिद्धकरने का एकप्रकार) में सिद्ध घोड़ेको युद्धादिकोंके समयमें विधान करनेके योग्य जो कर्मतद्रूप नहींमिलेहुए रूप वालीधाराओं (घोड़ोंकी पांचप्रकारकी गतियों) के सिद्धकरने को नवीन गलियों में घुमाया ॥

६१--मुक्तास्तृणानि परितः कटकं चरन्त-
स्त्रुट्यद्वितानतनिकाव्यतिषंगभाजः ।
सस्रुः सरोषपरिचारकवार्य्यमाणा
दामाञ्चलस्खलितलोलपदं तुरंगाः ॥

६२--उत्तीर्णभारलघुनाप्यलघूलपौघ-
सौहित्यनिःसहतरेण तरोरधस्तात् ।
रोमन्थमन्थरचलद्गुरुसास्नमासा-
ञ्चक्रे निमीलदलसेक्षणमौक्षकेण ॥

६३--मृत्पिण्डशेखरितकोटिभिरर्द्धचन्द्र-
शृंगैः शिखाग्रगतलक्ष्ममलं हसद्भिः ।
उच्छृंगितान्यवृषभाः सरितां नदन्तो
रोधांसि धीरमवचस्करिरे महोक्षाः ॥

६४--मेदस्विनः सरभसोपगतानभीकान्
भङ्क्त्वा पराननडुहो मुहुराहवेन ।
ऊर्जस्वलेन सुरभीरनु निःसपत्नं
जग्मे जयोद्धुरविशालविषाणमुक्ष्णा ॥

६५--बिभ्राणमायतिमतीमवृथा शिरोधिं
प्रत्यग्रतामतिरसामधिकं दधन्ति ।
लोलौष्ठमौष्ट्रकमुदग्रमुखं तरूणा-
मभ्रंलिहानि लिलिहे नवपल्लवानि ॥

६१—(विहार के लिये) छोडे गये पड़ावके चारों ओर तृणोंको चरते हुए टूटीहुई तम्बुओंकी डोरियोंमें फंसे हुए क्रोधसं-युक्त सेवकोंसे भगायेगये घोड़े पैरोंमें बाँधनेकी रस्सियों के लगने से चंचलपदवाले होकर भागे ॥

६२—भारके उतरनेसे लघुभी वल्वज (तृणविशेष) के समूह कीतृप्तिसे अत्यन्त दुस्सह बैलोंका समूहवृक्षके नीचेपागुर (रोंथ) करनेसे धीरे २ चलायमान सासना (बैलों की घांटी) ओंको बोझलकरके आलस्ययुक्त नेत्रोंको सुख से बन्दकरके बैठा ॥

६३--मृत्तिकाके खंडोंसे शेखर (शिरोभूषण) युक्त अग्रभाग वाले शिखाके अग्रभागमें प्राप्त चिह्नरूपी मलवाले अर्द्ध-चन्द्रको हंसरहे शृंगोंसे अन्य वृषभोंके शृंगों के उखाड़ने वाले गंभीर गर्जना करने वाले बड़े बैल नदियोंके किनारों को लिखते (खरोंचते) थे ॥

६४--बलवान् वृषभ मोटे एकाएकीआये हुए कामुक अन्य वृषभों को वारंवार युद्धसे जीतकर जयसे निर्भर बड़े शृंगवाला होकर शत्रुओं से रहित गौओंके पीछेचला ॥

६५--लंबी सफल ग्रीवाको धारणकरने वाला ऊँचेमुखवाला उष्ट्रों का समूह अत्यन्त स्वादुयुक्त नवीनताके धारणकरने वाले मेघोंके छूनेवाले वृक्षोंके नवीनपत्रोंको ओष्ठोंको चंचल करके खाताथा ॥

६६–सार्द्धं कथञ्चिदुचितैः पिचुमर्दपत्रै-
रास्यान्तरालगतमाम्रदलं म्रदीयः ।
दासेरकः सपदि संवलितं निषादै-
र्विप्रं पुरा पतगराडिव निर्जगार ॥

६७–स्पष्टं वहिः स्थितवतेऽपि निवेदयन्त-
श्चेष्टाविशेषमनुजीविजनाय राज्ञाम् ।
वैतालिकाः स्फुटपदप्रकटार्थमुच्चै-
र्भोगावलीः कलगिरोऽवसरेषु पेठुः ॥

६८–उन्नमूताम्रपटमण्डपमण्डितन्त-
दानीलनागकुलसंकुलमाबभासे ।
सन्ध्यांशुभिन्नघनकर्वुरितान्तरीक्ष-
लक्ष्मीविडम्बि शिविरं शिवकीर्त्तनस्य ॥

६९–धरस्योद्धर्त्तासि त्वमितिननुसर्वत्र जगति
प्रतीतस्तत्किं मामतिभरमधः प्रापिपयिषुः ।
उपालब्धेवोच्चैर्गिरिपतिरिति श्रीपतिमसौ
बलाक्रान्तः क्रीडद्द्विरदमथितोर्वीरुहरवैः ॥

इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालबधे महाकाव्ये
पञ्चमः सर्गः ५ ॥

६६--उचित नींबके पत्रोंकेसाथ किसी प्रकारसे मुखके बीचमें गयेहुए कोमल आमकेपत्तेको ऊंटने पहले म्लेच्छोंसे मिलेहुए ब्राह्मणको गरुड़के समान उगलदिया ॥

६७--बाहर स्थितभी सेवकोंके लिये राजालोगोंकी विशेषचेष्टाओंको निवेदन करतेहुए मधुर वचनवाले भाटलोग समयपर प्रसिद्ध पदोंसे अर्थको प्रकटकरके उच्चस्वरसे प्रबन्धोंको पढ़ते थे ॥

६८--ऊंची रक्तवर्ण कनातोंसे युक्त नीलवर्णवाले हाथियोंके समूहोंसे व्याप्त संध्या समयके रागयुक्त मेघोंसे चित्रवर्ण वाले आकाशकी शोभाकेसमान मंगलकीर्त्ति (श्रीकृष्णजी) का वह कटक शोभित हुआ ॥

६९--सेनाओं से आच्छादित रैवतक पर्व्वत, विहार करतेहुए हाथियोंसे तोड़ेहुए वृक्षोंके शब्दोंके द्वारा श्रीकृष्णजीसे तुम पर्व्वतके उद्धार करनेवाले संपूर्ण संसारमें विख्यातहो तो किसहेतुसे मुझबड़े भारवाले को क्यों नीचे प्राप्त करनेकी इच्छाकरते हो यह मानों उलहना देताथा ॥

इतिश्रीमाघकृतमहाकाव्यशिशुपालबधस्य भाषानुवादे
पञ्चमस्सर्गः ५ ॥

षष्ठः सर्गः।

वसन्तादिषड्तूनामनेकधा वर्णनम् ॥

१--अथ रिरंसुममुं युगपद्गिरौ
कृतयथास्वतरुप्रसवश्रिया ।
ऋतुगणेन निषेवितुमादधे
भुवि पदं विपदन्तकृतं सताम् ॥

२--नवपलाशपलाशवनं पुरः
स्फुटपरागपरागतपंकजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्
स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥

३--विलुलितालकसंहतिरामृशन्
मृगदृशां श्रमवारि ललाटजम् ।
तनुतरंगततिं सरसां दलत्-
कुवलयं वलयन्मरुदाववौ ॥

४--तुलयति स्म विलोचनतारकाः
कुरवकस्तवकव्यतिषंगिणि ।
गुणवदाश्रयलब्धगुणोदये
मलिनिमालिनि माधवयोषिताम् ॥

छठा सर्ग ॥

वसन्तादिक छओं ऋतुओंका नानाप्रकारसे वर्णन ॥

१—इसकेउपरान्त रैवतक पर्व्वतमें रमणकरनेकी इच्छा वाले सज्जनोंकी विपत्तियोंके नाशकरनेवाले इन (श्रीकृष्णजी) की सेवा करनेकेलिये अपने २ वृक्षको नहीं उल्लंघनकरके स्थित पुष्प और फलकी संपत्तिवाले ऋतुओंके समूहने एकहीबार पृथ्वीमें पदरक्खा ॥

२—उन (श्रीकृष्णजी) ने सन्मुख पहले नवीन पत्तोंसे युक्त पलाश वृक्षोंके वनवाले फूलेहुए और रजसेव्याप्त कमल वाले कोमल और म्लान पत्तेवाले पुष्पोंकी वृद्धिसे सुगन्धित वसन्तकोदेखा ॥

३—केशोंके समूहको कँपाकर स्त्रियोंके ललाटमें उत्पन्नहुए प्रस्वेदको सुखाताहुआ कमलोंको प्रफुल्लित करके तड़ागों की सूक्ष्म तरंगोंकी पंक्तियोंको चलायमान करताहुआवायु चलनेलगा ॥

४—श्रीकृष्णजीकी स्त्रियोंके नेत्रोंकी पुतलियों ने कुरवक(वृक्ष विशेष) के गुच्छोंमें संगकरनेवाले गुणवान् के आश्रयसे प्राप्तगुणके उदयवाले भ्रमरमें कृष्णत्वकी तुल्यताकी ॥

५--स्फुटमिवोज्ज्वलकाञ्चनकान्तिभि-
युतमशोकमशोभत चम्पकैः
विरहिणां हृदयस्य भिदाभृतः
कपिशितं पिशितं मदनाग्निना ॥

६--स्मरहुताशनमुर्मुरचूर्णतां
दधुरिवाम्रवणस्य रजःकणाः।
निपतिताः परितः पथिकव्रजा-
नुपरि ते परितेपुरतो भृशम् ॥

७--रतिपतिप्रहितेव कृतक्रुधः
प्रियतमेषु वधूरनुनायिका।
वकुलपुष्परसासवपेशल-
ध्वनिरगान्निरगान्मधुपावलिः ॥

८--प्रियसखीसदृशं प्रतिबोधिताः
किमपि काम्यगिरा परपुष्टया।
प्रियतमाय वपुर्गुरुमत्सर-
च्छिदुरयादुरयाचितमंगनाः ॥

९--मधुकरैरपवादकरैरिव
स्मृतिभुवः पथिका हरिणा इव।
कलतया वचसः परिवादिनी-
स्वरजिता रजिता वशमाययुः ॥

१०--समभिसृत्य रसादवलम्बितः
प्रमदया कुसुमावचिचीषया।
अविनमन्न रराज वृथोच्चकै-
रनृतया नृतया वनपादपः ॥

५– शुद्ध सुवर्णकी प्रभावाले चंपकोंसे युक्तफूलाहुआ अशोक भिन्न विरहियोंके हृदयकी अग्निसे चित्रवर्णवाले मांसके समान शोभितहुआ ॥

६–आम्रके वनकी रजके कण मानों कामाग्निरूपी भूसकी अग्निकेचूर्णपनेको धारण करतेथे इसी कारणसे सबओर से ऊपर गिरेहुए वह (रजकेकण) पथिकोंके समूहोंको अत्यन्तसंतप्त करतेथे ॥

७–अत्यन्त प्रियोंमें क्रोधकी करनेवाली बधुओंको शिक्षाकरती हुई मानों कामदेवकी भेजीहुई वकुलके पुष्पोंके रसरूपी मद्यसे, मधुरस्वरवाली भ्रमरोंकी पंक्ति वृक्षसे निकली ॥

८–बड़े द्वेषके नाशकरनेवाली ग्रहण करनेकेयोग्य वचनवाली कोकिलासे प्रियसखीके तुल्य कुछ उपदेश कीगई स्त्रियां प्रियतमको विना प्रार्थना कियेही शरीरको अर्पण करतीथीं॥

९–व्याधरूपी भ्रमरोंसे हरिणोंके समान पथिकजन वीणाके स्वरकी जीतनेवाली गीतकी मधुरता के द्वाराखींचेगये कामके वशीभूत होजाते भये ॥

१०–स्त्रीसे पुष्पोंके तोड़नेकी इच्छासे रागपूर्व्वक आकर अवलंबन किया (पकड़ा) गया तिसपर भी नहीं नम्रहुआ व्यर्थ उन्नतिवाला वनकावृक्षभूठे पुरुषार्थसे शोभितहुआ ॥

११—इदमपास्य विरागि परागिणी-
रलिकदम्बकमम्बुरुहान्ततीः।
स्तनभरेण जितस्तवकानम-
न्नवलते वलतेऽभिमुखं तव ॥

१२—सुरभिनिःश्वसिते दधतस्तृषं
नवसुधामधुरे च तवाधरे।
अलमलेरिव गन्धरसावमू
मम न सौमनसौ मनसो मुदे ॥

१३—इति गदन्तमनन्तरमंगना
भुजयुगोन्नमनोच्चतरस्तनी।
प्रणयिनं रभसादुदरश्रिया
वलिभयालिभयादिव सस्वजे ॥

१४—वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्-
भ्रमरसम्भ्रमसम्भृतशोभया।
चलितया विदधे कलमेखला-
कलकलोऽलकलोलदृशान्यया ॥

१५—अजगणन् गणशः प्रियमग्रतः
प्रणतमप्यभिमानितया न याः।
सति मधावभवन्मदनव्यथा-
विधुरिता धुरिताः कुकुरस्त्रियः ॥

१६—कुसुमकार्मुककार्मुकसंहित-
द्रुतशिलीमुखखण्डितविग्रहाः।
मरणमप्यपराः प्रतिपेदिरे
किमु मुहुर्मुमुहुर्गतभर्तृकाः ॥

११--हे स्तनके भारसे जीतेहुये गुच्छोंके द्वारा नवीनलताकी-भुकानेवाली, यह विराग संयुक्त भ्रमरोंका समूह परागवाली वृक्षोंकीपंक्तियोंको छोड़कर तुम्हारे सन्मुख चलताहै ॥

१२--तुम्हारे सुगन्धित श्वासमें और नवीन सुधाके समान मधुर ओष्ठमें तृष्णाको धारण करने वाले भ्रमरके समान मेरे यहपुष्पसम्बन्धी सुगन्धि और मधुरतामनको आनन्दकर-ने को नहीं समर्थ हैं ॥

१३--इसप्रकारसे कहतेहुये प्रियको इसके उपरान्त दोनों भु-जाओंके उठानेसे अत्यन्त उन्नत स्तनवाली त्रिवलीयुक्त उदर की शोभासे उपलक्षित स्त्रीनेमानों भ्रमरके भयसे एकाएकी आलिंगन किया ॥

१४--मुखकी सुगन्धिके लोभसे घूमतेहुये भ्रमरके द्वारा व्याकु-लतासे संचितकीहुई शोभावाली चलरही अलकों के गिरने से चंचलनेत्रवाली अन्यस्त्रीने मधुर मेखलाका शब्दकिया ॥

१५--जिन यादवोंकी स्त्रियोंने वारंवार आगे प्रणाम करनेवाले भी पतियोंको नहीं गिनाथा वह (यादवोंकी) स्त्रियां वस-न्तप्रवृत्तहोने पर कामकी विथासे विह्वल होकर आगे उ-पस्थित हुई ॥

१६ वियोगिनी अन्यास्त्रियां कामके धनुषमें चढ़ेहुये वेगयुक्तबाणों से खंडित शरीरवाली होकर मरणको भी प्राप्तहुई (तो) वारंवार मूर्च्छित हुई यह क्या कहनाहै ॥

१७—रुरुदिषा वदनाम्बुरुहश्रियः
सुतनु ! सत्यमलंकरणाय ते।
तदपि सम्प्रति सन्निहिते मधा-
वधिगमं धिगमंगलमश्रुणः ॥

१८—त्यजति कष्टमसावचिरादसून्
विरहवेदनयेत्यघशंकिभिः।
प्रियतया गदितास्त्वयि बान्धवै-
रवितथावितथाः सखि ! मा गिरः ॥

१९—न खलु दूरगतोऽप्यतिवर्त्तते
महमसाविति बन्धुतयोदितैः।
प्रणयिनो निशमय्य बधूर्वहिः
स्वरमृतैरमृतैरिव निर्ववौ ॥
विशेषकम्।

२०—मधुरया मधुबोधितमाधवी-
मधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकरांगनया मुहुरुन्मद-
ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥

२१—अरुणिताखिलशैलवना मुहु-
र्विदधती पथिकान् परितापिनः।
विकचकिंशुकसंहतिरुच्चकै-
रुदवहद्वहव्यवहाश्रियम् ॥

१७--हे उत्तम अंगवाली रोनेकी इच्छा तुम्हारे कमलरूपी मुख की शोभाके अलंकारकेलिये सत्यहै तिसपरभी वसन्तके निकट होनेपर अमंगलरूप अश्रुओंकी प्राप्तिको धिक्कारहै॥

१८--स्नेहसे अनर्थकी शंकाकरनेवाले बन्धुओंसे तुम्हारे विषयमें कहीगई (कि) कष्टका विषयहै कि यह (बाला) विरह की वेदनासे थोड़ेही कालमें प्राणोंकोत्यागकरेगी इसप्रकारकी वाणियां हेसखी सत्यमतकरो ॥

१९--किन्तु यह (तेराप्रिय) दूरगयाभी उत्सवको नहीं उल्लंघनकरेगा इन बन्धुओंके समूहके कहेहुए सत्यवचनोंसे बाहर प्रियके वचनको सुनकर बधूमानों अमृतसे सींचीगई ॥

२०--मनके हरनेवाली वसन्तसे प्रफुल्लित माधवीलता (कुंद) की मकरन्दकी संपत्तिसे बढ़ीहुई बुद्धिवाली मदकी करने वाली ध्वनिको धारण करनेवाली भ्रमरकी अंगनाने वारंवार अक्षरोंको नहीं स्फुट करके उच्चस्वर से गानाकिया ॥

२१--सम्पूर्ण पर्व्वत और वनोंके अरुण करनेवाले वारंवार पथिकोंको संतप्तकरनेवाले उन्नत फूलेहुए टेसूके पुष्पों के समूहने दावाग्निकी शोभाको धारणकिया ॥

२२–रवितुरंगतनूरुहतुल्यतां
दधति यत्र शिरीषरजोरुचः।
उपययौ विदधन्नवमल्लिकाः
शुचिरसौ चिरसौरभसम्पदः॥

२३–दलितकोमलपाटलकुड्मले
निजबधूश्वसितानुविधायिनि।
मरुति वाति विलासिभिरुन्मद-
भ्रमदलौ मदलौल्यमुपाददे॥

२४–निदधिरे दयितोरसि तत्क्षण-
स्नपनवारितुषारभृतस्तनाः।
सरसचन्दनरेणुरनुक्षणं
विचकरे च करेण वरोरुभिः॥

२५–स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः
प्रियमिवागलितोरुपयोधरा।
जलधरावलिरप्रतिपालित-
स्वसमया समयाज्जगतीधरम्॥

२६–गजकदम्बकमेचकमुच्चकै-
र्नभसि वीक्ष्य नवाम्बुदमम्बरे।
अभिससार न वल्लभमंगना
न चकमे च कमेकरसं रहः॥

२७–अनुययौ विविधोपलकुण्डल-
द्युतिवितानकसंवलितांशुकम्।
धृतधनुर्वलयस्य पयोमुचः
शवलिमा वलिमानमुषो वपुः॥

२२--जिसग्रीष्मऋतुमें सिरसवृक्षके रजोंकी कान्तियां सूर्य्य के घोड़ोंके रोमोंकी समानताको धारण करतीहैं यह ग्रीष्म ऋतु चमेलीको बहुत कालतक स्थितरहनेवाली सुगंधि की सम्पत्तिवाली करतीहुई आई ॥

२३–कोमल पाटला (वृक्षविशेष) की कलियोंके प्रफुल्लित करने वाले अपनी स्त्रियोंके श्वासकी समानता करनेवाले उन्मत्त और भ्रमणयुक्त भ्रमरवाले वायुके चलनेपर कामियों ने मदसे चंचलता धारणकी ॥

२४–स्त्रियोंने उसीसमय स्नानकरने से जलकणों के धारणकरने वाले स्तन प्रियोंके हृदयमें रक्खे किन्तु हाथसे गीली चन्दनकीरेणु (घिसेहुए चन्दनकीपंक) वारंवार बखेरी ॥

२५–देदीप्यमान चंचल बिजली रूपी अथवा बिजलीके समान नेत्रवाली पूर्णबड़े मेघवाली अथवा नहीं पतितहुए जंघा और स्तनवाली मेघोंकी पंक्ति अपने समयकी अपेक्षा न करके प्रियके समान रैवतक पर्व्वतको प्राप्तहुई ॥

२६–श्रावणके महीने में आकाशमें हाथियों के समूहके समान श्याम ऊंचे नवीन मेघको देखकर स्त्रीने एकरसवाले किस प्रियको एकान्तमें नहीं चाहा और नहीं गई ॥

२७–धनुषके धारण करनेवाले मेघकी विचित्रताने नानावर्णकी मणियोंसे युक्त कुंडलोंकी कांतियों के समूहसे मिलीहुई कान्तिवाले बलिके मानको नाशकरनेवाले (श्रीकृष्णजी) के शरीरका अनुकरण किया ॥

२८--द्रुतसमीरचलैः क्षणलक्षित-
व्यवहिता विटपैरिव मञ्जरी।
नवतमालनिभस्य नभस्तरो-
रचिररोचिररोचत वारिदैः॥

२९--पटलमम्बुमुचां पथिकांगना
सपदि जीवितसंशयमेष्यती।
सनयनाम्बु सखीजनसम्भ्रमा-
द्विधुरवन्धुरबन्धुरमैक्षत॥

३०--प्रवसतः सुतरामुदकम्पय-
द्विदलकन्दलकम्पनलालितः।
नमयति स्म वनानि मनस्विनी-
जनमनोनमनो घनमारुतः॥

३१--जलदपङ्क्तिरनर्त्तयदुन्मदं
कलविलापि कलापिकदम्बकम्।
कृतसमार्जनमर्दलमण्डल-
ध्वनिजया निजया स्वनसम्पदा॥

३२--नवकदम्बरजोरुणिताम्बरै-
रधिपुरन्धि शिलीन्ध्रसुगन्धिभिः।
मनसि रागवतामनुरागिता
नवनवा वनवायुभिरादधे॥

२८–वेगयुक्त पवनके द्वारा चंचल मेघों से क्षणभरमें लक्षित और आच्छादित कीगई बिजली (वेगयुक्त पवनसे चंचल) शाखाओंसे क्षणभरमें लक्षित और आच्छादित नवीन तमालवृक्षके समान नीलवर्ण वाले आकाशरूपी वृक्षकी मंजरीके समान सुशोभितहुई ॥

२९–पथिककी स्त्रीने शीघ्र मरणको प्राप्त होरही अश्रुयुक्त सखियों के क्षोभ से विह्वल बन्धुवाली होकर मेघों के समूह को सुन्दर नहीं देखा ॥

३०–प्रफुल्लित कंदली के पुष्पों के कंपाने से लाड़ कियागया स्त्रियोंके मनोंको नम्र करनेवाला मेघों का वायु वनों को झुकाताहुआ विदेशी लोगोंको अत्यन्तकंपित करताभया॥

३१–अपनी शब्दकी सम्पत्तिसे मार्जन कियेहुए मर्द्दलों (वाद्यविशेष) के समूह की ध्वनिकीजीतनेवाली मेघोंकी पंक्तिने बड़े मदवाले मधुर शब्द करनेवाले मोरों के समूह को नचाया ॥

३२–नवीन कदम्बकी रजसे आकाशके अरुण करनेवाले कंदली के पुष्पोंकी सुगन्धवाले वनके पवनोंने स्त्रियों में रागयुक्त पुरुषों के मनोंमें नवीन प्रकारका अनुराग उत्पन्नकिया ॥

३३--शमिततापमपोढमहीरजः
प्रथमबिन्दुभिरम्बुमुचोऽम्भसाम् ।
प्रविरलैरचलांगनमंगना-
जनसुगं न सुगन्धि न चक्रिरे ॥

३४--द्विरददन्तवलक्षमलक्ष्यत
स्फुरितभृंगमृगच्छवि केतकम् ।
घनघनौघविघट्टनया दिवः
कृशशिखं शशिखण्डमिव च्युतम् ॥

३५--दलितमौक्तिकचूर्णविपाण्डवः
स्फुरितनिर्झरशीकरचारवः ।
कुटजपुष्पपरागकणाः स्फुटं
विदधिरे दधिरेणुविडम्बनाम् ॥

३६--नवपयःकणकोमलमालती-
कुसुमसन्ततिसन्ततसंगिभिः ।
प्रचलितोडुनिभैः परिपाण्डिमा
शुभरजोभरजोऽलिभिराददे ॥

३७--निजरजः पटवासमिवाकिर-
द्धृतपटोपमवारिमुचां दिशाम् ।
प्रियवियुक्तवधूजनचेतसा-
मनवनी नवनीपवनावलिः ॥

३८--प्रणयकोपभृतोऽपि पराङ्मुखाः
सपदि वारिधरारवभीरवः ।
प्रणयिनः परिरब्धुमथांगना
ववलिरे वलिरेचितमध्यमाः ॥

३३–मेघोंने विरल जलके प्रथम विंदुओं से शान्त आतप (धूप) वाले धूलिसे रहित सुगन्धित रैवतक पर्व्वतके आंगन को स्त्रियोंके सुखपूर्व्वक जानेके योग्य क्या नहीं किया किन्तु किया ॥

३४–हाथीके दांत के समान श्वेतवर्ण देदीप्यमान भृंगरूपी मृग की दीप्तिमान् छबिसे युक्त केतकीका पुष्प घने मेघोंके समूह के घातसे आकाशसे गिरेहुए सूक्ष्म अग्रभागवाले चन्द्रमा के समान लक्षित हुआ ॥

३५–पिसेहुए मोतियोंके चूर्णके समान श्वेतवर्णवाले दीप्तिमान् झिरनों के जलके कणोंके समान सुन्दर इन्द्रजौकी रजोंके कणोंने दधिके चूर्णकी तुल्यता धारणकी ॥

३६–नवीन जलके कणोंके समान कोमल मालतीके पुष्पोंकी पंक्तियोंमें निरन्तर संग करनेवाले चलायमान नक्षत्रों के समान भ्रमरोंने सुन्दर रजके समूहसे उत्पन्न श्वेतवर्ण ग्रहण किया ॥

३७–प्रियसे रहित स्त्रियों के चित्तकी नहीं रक्षा करनेवाली नवीन कदम्बके वनकी पंक्तिने वस्त्रके समान मेघोंकी धारण करनेवाली दिशाओंमें अपनी रजको मानों वस्त्रोंके समान फेंका ॥

३८–प्रणय (प्रीतिपूर्वक प्रार्थना) में कोपकी धारण करनेवाली विमुख भी शीघ्र मेघोंके गरजने से डरीहुई स्त्रियां इसके उपरान्त प्रियोंको आलिंगन करनेके लिये त्रिवली रहित कटिवाली होकर प्रवृत्त हुईं ॥

३९—विगतरागगुणोऽपि जनो न क-
श्चलति वाति पयोदनभस्वति ।
अभिहितेऽलिभिरेवमिवोच्चकै-
रननृते ननृते नवपल्लवैः ॥

४०—अरमयन् भवनादचिरद्युतेः
किल भयादपयातुमनिच्छवः ।
यदुनरेन्द्रगणन्तरुणीगणा-
स्तमथ मन्मथमन्थरभाषिणः ॥

४१—ददतमन्तरिताहिमदीधितिं
खगकुलाय कुलायनिलायिताम् ।
जलदकालमबोधकृतं दिशा-
मपरथाप रथावयवायुधः ॥

४२—स विकचोत्पलचक्षुषमैक्षत
क्षितिभृतोऽङ्कगतां दयितामिव ।
शरदमच्छगलद्वसनोपमा-
क्षमघनामघनाशनकीर्त्तनः ॥

४३—जगति नैशमशीतकरः करै-
र्वियति वारिदवृन्दमयन्तमः ।
जलजराजिषु नैद्रमदिद्रव-
न्न महतामहताः क्व च नारयः ॥

३९–मेघों के वायुके चलनेपर राग और गुणसे रहित भी कौन पुरुष चलायमान नहीं होताहै मानों इसप्रकार भ्रमरों के द्वारा उच्चस्वरसे सत्यवचन कहे जानेपर नवीनपल्लव नृत्य करने लगे ॥

४०–बिजली के भयके बहानेसे गृहसे निकलने की नहीं इच्छा करतेभये कामसे आलस्यपूर्वक भाषण करनेवाले स्त्रियों के समूह उस राजायदुवंशियों के समूह को रमणकरातेथे॥

४१–चक्रायुध (श्रीकृष्णजी) सूर्य्य के आच्छादन करने वाले पक्षियोंके समूह को घोंसले में बैठने वाले पनको देतेभए दिशाओंके नहीं बोधकरानेवाले वर्षाकाल को अन्यप्रकार से प्राप्तहुए ॥

४२--पापनाशक कीर्त्तनवाले उन श्रीकृष्णजीने फूलेहुए कमल-रूपी नेत्रवाली श्वेतवर्ण गिरतेहुए वस्त्रकी उपमाके योग्य मेघवाली राजाकी गोद में प्राप्तहुई स्त्री के समान शरद ऋतु को देखा ॥

४३--सूर्य्यने किरणों से संसारमें निशासम्बन्धी अंधकार भगाया (और) आकाश में मेघोंके समूहरूप अंधकार को भगाया कमलोंकी पंक्तियों में निमीलन (बन्दहोना)रूप अंधकार भगाया क्योंकि महात्माओंके शत्रुकहां नहीं हतहुएहैं किन्तु सबकहीं हुए हैं ॥

४४—समय एव करोति बलाबलं
प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम् ।
शरदि हंसरवाः परुषीकृत-
स्वरमयूरमयूरमणीयताम् ॥

४५—तनुरुहाणि पुरोविजितध्वने-
र्धवलपक्षविहंगमकूजितैः ।
जगलुरक्षमयेव शिखण्डिनः
परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः ॥

४६—अनुवनंवनराजिवधूमुखे
बहलरागजवाधरचारुणि ।
विकचबाणदलावलयोऽधिकं
रुरुचिरे रुचिरेक्षणविभ्रमा ॥

४७—कनकभंगपिशंगदलैर्दधे
सरजसारुणकेशरचारुभिः ।
प्रियविमानितमानवतीरुषां
निरसनैरसनैरवृथार्थता ॥

४८—मुखसरोजरुचं मदपाटला-
मनुचकार चकोरदृशां यतः ।
धृतनवातपमुत्सुकतामतो
न कमलं कमलम्भयदम्भसि ॥

४९—विगतशस्यजिघत्समघट्टयत्
कलमगोपवधूर्न मृगव्रजम् ।
श्रुततदीरितकोमलगीतक-
ध्वनिमिषेऽनिमिषेक्षणमग्रतः ॥

४४--समयही प्राणियोंका बलाबल करता है इसप्रकारसे मानों प्रतिपादन करते हुए शरदृत्तु में हंसों के शब्द मयूरों के स्वरों को निष्ठुरकरके रमणीयता को प्राप्तहुए ॥

४५--सन्मुख हंसों के शब्दोंसे जीतीगई ध्वनिवाले मयूरोंकी पूंछें मानोंईर्षासे गलितहोगईं क्योंकि शत्रुसेउत्पन्नहुआ अनादर अत्यन्त असह्य होताहै ॥

४६--वनवनमें दृढ़रागवाली जवा (वृक्षविशेष) रूपी ओष्ठसे सुन्दर वनों की पंक्तिरूपी बधूके मुखमें सुन्दरनेत्रोंके समान शोभावाली प्रफुल्लित नीलझिंटी (पियावासे)के पत्रों की पंक्तियां अधिक शोभितहुई ॥

४७--सुवर्ण के खंडोंके समान पीलेदलवाले रजयुक्तरक्तकेसरों से सुन्दर प्रियोंसे अनादर की हुई मानयुक्तास्त्रियोंके मान के नाशकरनेवाले असनों (पुष्पविशेषों) ने सार्थकनाम धारणकिया ॥

४८--जिस कारण से नवीन आतपके धारण करनेवाले जलमें स्थितकमलने मदसे अरुण स्त्रियोंके मुखारविन्दकी शोभा का अनुकरण किया इसी कारण से किस पुरुषको उत्कंठताको नहीं प्राप्तकिया ॥

४९--धानकी रक्षाकरनेवालीस्त्रीने उसस्त्रीसे कहेहुए मधुरगीत की ध्वनिको सुननेवाले फिर निमेष रहित नेत्रवाले अन्न के भोजन की इच्छा न करनेवाले मृगके समूहों को नहीं ताड़नाकी ॥

५०—कृतमदन्निगदन्त इवाकुली-
कृतजगत्त्रयमूर्जमतंगजम् ।
ववुरयुक्छदगुच्छसुगन्धयः
सततगास्ततगानगिरोऽलिभिः ॥

५१—विगतवारिधरावरणाः क्वचि-
द्ददृशुरुल्लसितासिलतासिताः ।
क्वचिदिवेन्द्रगजाजिनकञ्चुकाः
शरदि नीरदिनीर्यदवो दिशः ॥

५२—विलुलितामनिलैः शरदंगना
नवसरोरुहकेशरसम्भवाम् ।
विकरितुं परिहासविधित्सया
हरिवधूरिव धूलिमुदक्षिपत् ॥

५३—हरितपत्रमयीव मरुद्गणैः
स्रगवनद्धमनोरमपल्लवा ।
मधुरिपोरभिताम्रमुखी मुदं
दिवि तता विततान शुकावलिः ॥

५४—स्मितसरोरुहनेत्रसरोजला-
मतिसितांगविहंगहसद्दिवम् ।
अकलयन्मुदितामिव सर्वतः
स शरदं शरदन्तुरदिङ्मुखाम् ॥

५०–सतावरके गुच्छों से उत्तमसुगन्धिवाले भृंगोंसेविस्तारयुक्त गानकेगानेवाले पवनमदके उत्पन्नकरनेवाले तीनोंलोकों के व्याकुल करनेवाले कार्त्तिक मासरूपी हाथीको मानों कहते हुए चले ॥

५१–शरद ऋतुमें यदुवंशियोंने कहीं मेघोंके आवरण से रहित कहीं दीप्तिमान्खड्गरूपी लताके समान श्याम कहीं मेघों सेयुक्तऐरावतके चर्मरूपी कंचुकसे मानों युक्तदिशायें देखीं॥

५२–स्त्रीरूपी शरदऋतुने वायु से क्षोभित नवीन कमलों से उत्पन्नकेशरकी रजको हास्यकरनेकी इच्छासे श्रीकृष्णजी की स्त्रियों को मानों फेंकने के लिये प्रेरणाकी ॥

५३--रक्तमुखवाली तोतोंकी पंक्तिने आकाश में देवतालोगों से विस्तार कीगई हरेपत्तोंवाली गुथेहुए सुन्दर पत्तों वाली मालाके समान श्रीकृष्णजीके आनन्दका विस्तार किया॥

५४--श्रीकृष्ण जी ने फूलेहुए कमलरूपी नेत्रोंसे युक्त तड़ागोंके जलवाली अत्यन्त श्वेतपक्षवाले पक्षियों (हंसों) से मानों हँसते हुए आकाशवाली शरों (तृणविशेष)से उन्नतदन्त-युक्त दिशाओं के मुखवाली शरदऋतुको मानों सब प्रकार से आनन्दयुक्त माना ॥

५५—गजपतिद्वयसीरपि हैमन-
स्तुहिनयन् सरितः पृषताम्पतिः ।
सलिलसन्ततिमध्वगयोषिता-
मतनुतातनुतापकृतं दृशाम् ॥

५६—इदमयुक्तमहो महदेव य-
द्वरतनोः स्मरयत्यनिलोऽन्यदा ।
स्मृतसयौवनसोष्मपयोधरान्
सतुहिनस्तु हिनस्तु वियोगिनः ॥

५७—प्रियतमेन यया सरुषा स्थितं
न सहसा सहसा परिरभ्य तम् ।
श्लथयितुं क्षणमक्षमताङ्गना
न सहसा सहसा कृतवेपथुः ॥

५८—भृशमदूयत याधरपल्लव-
क्षतिरनावरणा हिममारुतैः ।
दशनरश्मिपटेन च शीत्कृतै-
र्निवसितेव सितेन सुनिर्ववौ ॥

५९—व्रणभृता सुतनोः कलशीत्कृत-
स्फुरितदन्तमरीचिमयं दधे ।
स्फुटमिवावरणं हिममारुतै-
र्मृदुतया दुतयाधरलेखया ॥

६०—धृततुषारकणस्य नभस्वत-
स्तरुलताङ्गुलितर्जनविभ्रमाः ।
पृथु निरन्तरमिष्टभुजान्तरं
वनितयानितया न विषेहिरे ॥

५५--हाथीके प्रमाण गहरी नदियोंको पालेके समान करनेवाले हेमन्त ऋतुमें उत्पन्नहुए वायुने पाथिकों की स्त्रियोंके नेत्रों की बड़ेसन्तापकी उत्पन्नकरने वाली जलकीपंक्ति (अश्रु) विस्तारकी ॥

५६--पवन अन्य समयमें वियोगियों को स्त्रियोंका स्मरण कराताहै यहभी अत्यन्त अनुचितहै और हिमसहित तो यौवन-युक्त और ऊष्मा सहित पयोधरों के स्मरण करनेवाले वियोगियोंको मारे ॥

५७--रोषयुक्त जो स्त्री प्रीतमके साथ नहीं स्थितहुईथी वह स्त्री मार्गशीर्ष माससे उत्पन्न हुए कंपवाली होकर उसी प्रिय-को हास्य पूर्वक शीघ्र आलिंगन करके क्षणमात्रभी छोड़ने को नहीं समर्थहुई ॥

५८--आच्छादन रहित जो पल्लवरूपी ओष्ठोंका व्रण हिमके पव-नोंसे अधिक दुःखित हुआ वहीव्रण शीत्कारोंसे उत्पन्नहुए श्वेत दांतोंके किरणरूपी पटसे मानों आच्छादित होकर अत्यन्त सुखको प्राप्तहुआ ॥

५९--कोमलता के कारण हिमके पवनोंसे दुःखित व्रणके धारण करनेवाली स्त्रीकी अधररूपी रेखाने मधुर शीत्कारसे प्रका-शित दन्तोंकी किरणरूपी पटको मानों धारणकिया ॥

६०--हिमके कणोंके धारण करनेवाले पवन सम्बन्धी वृक्षकी लतारूपी अंगुलियों के तर्जनारूपी विलास, विशाल प्रिय केवक्षःस्थलमेंनिरन्तर नहीं प्राप्तहोनेवाली स्त्रीने नहींसहे॥

६१–हिमऋतावपि ताः स्मभृशस्विदो
युवतयः सुतरामुपकारिणि ।
प्रकटयत्यनुरागमकृत्रिमं
स्मरमयं रमयन्ति विलासिनः ॥

६२–कुसुमयन् फलिनीरलिनीरवै-
र्मदविकाशिभिराहितहुंकृतिः ।
उपवनं निरभर्त्सयत प्रियान्
वियुवतीर्युवतीः शिशिरानिलः ॥

६३–उपचितेषु परेष्वसमर्थतां
व्रजति कालवशाद् बलवानपि ।
तपसि मन्दगभस्तिरभीषुमा-
न्नहि महाहिमहानिकरोऽभवत् ॥

६४–अभिषिषेणयिषुम्भुवनानि यः
स्मरमिवाख्यत लोध्ररजश्चयः ।
क्षुभितसैन्यपरागविपाण्डुर-
द्युतिरयं तिरयन्नुदभूद्दिशः ॥

६५–शिशिरमासमपास्य गुणोऽस्य नः
क इव शीतहरस्य कुचोष्मणः ।
इति धियास्तरुषः परिरेभिरे
घनमतो नमतोऽनुमतान् प्रियाः ॥

६६–अधिलवंगममी रजसाधिकं
मलिनिताः सुमनोदलतालिनः ।
स्फुटमिति प्रसवेन पुरोऽहसत्
सपदि कुन्दलता दलतालिनः ॥

६१--कामसे उत्पन्न सहजप्रेमके प्रकटकरनेवाले अत्यन्त उपकार करनेवाले हेमन्तऋतुमें भी अत्यन्त स्वेदयुक्त वह स्त्रियाँ प्रियोंके साथ रमण करतीभईं ॥

६२--वनमें प्रियंगु (काकुनि) की लताओंको पुष्पयुक्त करतेहुए मदसे उत्पन्नहुए भ्रमरियों के शब्दोंसे हुंकारयुक्त शिशिर ऋतुकेवायुनेप्रियोंके वियोगकरनेवालीस्त्रियोंकीतर्जनाकी॥

६३--कालके वशसे बलवान्भी, शत्रुओं के बढ़नेपर दुर्बलताको प्राप्तहोताहै जिस कारणसे माघके महीने में मन्द किरण वाले सूर्य्यबड़े हिमकी हानि करनेवाले न हुए ॥

६४--क्षोभको प्राप्त जो सेनाकी रजकेसमान श्वेतवर्णवाले जिस लोधकी रजके समूहने लोकों पर चढ़ाई करने की इच्छा करतेहुए कामदेवको मानोंकहा वह लोधकी रजका समूह दिशाओंका तिरस्कार करताहुआ उत्पन्नहुआ ॥

६५--शिशिरऋतुके महीनोंको छोड़कर शीतके नाशकरनेवाली हमारे कुचोंकी ऊष्माका क्यागुण है इसबुद्धिसे इसकारण इस शिशिरऋतुके मासोंमें स्त्रियां क्रोधरहित होकर नम्र प्रियोंको बहुत आलिंगन करतीभयीं ॥

६६--लवंग में पुष्पों के दलोंपर स्थित यह भ्रमर रजसे अधिक मलिन कियेगये, इसकारणसे सन्मुख शीघ्र कुन्द पुष्प की लता फूलेहुए फूलों से हंसी ॥

६७—अतिसुरभिरभाजि पुष्पश्रिया
मतनुतरतयेव सन्तानकः ।
तरुणपरभृतः स्वनं रागिणा-
मतनुत रतये वसन्तानकः ॥

६८—नोज्झितुं युवतिमाननिरासे
दक्षमिष्ट मधुवासरसारम् ।
चूतमालिरलिनामतिरागा-
दक्षमिष्टमधुवासरसारम् ॥

६९—जगद्वशीकर्त्तुमिमाः स्मरस्य
प्रभावनीके तनवै जयन्तीः ।
इत्यस्य तेने कदलीमधुश्रीः
प्रभावनीकेतनवैजयन्तीः ॥

७०—स्मररागमयी वपुस्तमिस्रा
परितस्तार रवेरसत्यवश्यम् ।
प्रियमाप दिवापि कोकिले स्त्री
परितस्ताररवे रसत्यवश्यम् ॥

७१—वपुरम्बुविहारहिमं शुचिना
रुचिरं कमनीयतरा गमिता ।
रमणेन रमण्यचिरांशुलता
रुचिरङ्कमनीयत रागमिता ॥

७२—मुदमब्दभुवामपां मयूराः
सहसायन्त नदी पपाट लाभे ।
अलिना रमतालिनी शिलीन्ध्रे
सह सायन्तनदीपपाटलाभे ॥

७–अत्यन्त सुगन्धित कल्पवृक्ष पुष्पों की संपत्तियो
से मानों भग्न (टूटा) हुआ क्योंकि वसन्तकी
तरुणकोकिलने कामियोंके रतिके बढ़ानेकेलिये ः

८–अत्यन्त प्राप्तहोने की इच्छा कियेहुए मकरन्द
रनेपररागवाली भ्रमरोंकी पंक्ति,स्त्रियोंके मानके
में प्रवीण वसन्त के दिनों में श्रेष्ठ आमको अत
त्याग करने को नहीं समर्थ हुई ॥

९–संपादन करनेवाली वसन्त की लक्ष्मीने संसार
में समर्थ इसकामदेवकी सेनामें जीतनेवाली ध
बनाऊं (इसबुद्धि से) केले के वृक्ष बनाये ॥

०–दुष्ट कामसे उत्पन्नहुए रागरूपी अन्धकार ने र
एडल ढकलिया सत्यहै क्योंकि सब ओरसे बढ़
वाली कोकिला के कूजनेपर स्त्रियां दिनमें भी
भूत प्रियको प्राप्तहुई ॥

७१–ग्रीष्म ऋतुसे जल विहारके द्वारा शीतल शरीर
गई अत्यन्त रमणीय बिजली के समान कान्ति
रागको प्राप्त स्त्रीको, प्रियने अपनी गोदमें बैठ

७२–मेघोंसे उत्पन्न जलोंके मिलनेपर मोरआनन्दव
नदी बहनेलगी भ्रमर के साथ सायंकाल संबं
समानपीतवर्णवाले कन्दली (वृक्षविशेष)के पु
रमण करनेलगी ॥

७३–कुटजानि वीक्ष्य शिखिभिः शिखरीन्द्रं
समयावनौ घनमदभ्रमराणि।
गगनं च गीतनिनदस्य गिरोच्चैः
समया वनौघनमदभ्रमराणि॥

७४–अभीष्टमासाद्य चिराय काले
समुद्धृताशं कमनी चकाशे।
योषिन्मनोजन्मसुखोदयेषु
समुद्धृताशंकमनीचकाशे॥

७५–स्तनयोः समयेन याङ्गनाना-
मभिनद्धारसमा न सा रसेन।
परिरम्भरुचिं ततिर्जलाना-
मभिनद्धा रसमानसारसेन॥

७६–जातप्रीतिर्या मधुरेणानुवनान्तं
कामे कान्ते सारसिकाकाकुरुतेन।
तत्सम्पर्कम्प्राप्य पुरा मोहनलीलां
कामे कान्ते सा रसिका का कुरुते न॥

७७–कान्ताजनेन रहसि प्रसभं गृहीत-
केशे रते स्मरसहासवतोषितेन।
प्रेम्णा मनःसु रजनीष्वपि हैमनीषु
के शेरते स्म रसहासवतोषितेन॥

७८–गतवतामिव विस्मयमुच्चकै-
रसकलामलपल्लवलीलया।
मधुकृतामसकृद्गिरमावली-
रसकलामलपल्लवलीलया॥

७३--रैवतक पर्वत के समीप पृथ्वी में बड़े मदसेयुक्त भ्रमरवाले कुटजके पुष्पोंको और जलके समूहसे झुकेहुएमेघवाले आकाशको देखकर मयूरोंने गानकी ध्वनिके समान उच्च-स्वरसे शब्दकिया ॥

७४--कामना करनेवाली स्त्रीनेउन्नत कांसके वृक्षवाले समयमें कामसम्बन्धी सुखके उदय में आशा रखनेवाले प्रियलोगों को अच्छेप्रकारसे संकोचके त्यागपूर्वक प्राप्तहोकरआनंद-युक्त होके विलासकिया ॥

७५--शब्दकरतेहुए सारसोंसे युक्तसमयसे उत्पन्नस्त्रियोंके स्तनों में जो जलोंकी पंक्ति सबओर से बँधेहुए हारके तुल्यउस जलोंकी पंक्तिने राग से आलिंगन की इच्छा का नाश नहीं किया ॥

७६--जो स्त्री वनके मध्य में मधुर सारसों के विकारयुक्त शब्दों से कामके तुल्य प्रियमें स्नेहयुक्त हुईथी उसकौनसीस्त्रीने एकान्त में उसप्रियके संपर्क को प्राप्त होकर पहलेही सुरत की क्रीड़ा नहीं की ॥

७७--कामदेवके सहनेवाले मद्यसे तुष्ट अनुराग और हास्यसे युक्त प्रेमसे पुरुषों के चित्तों में रहनेवाली स्त्रियोंसेएकान्त में बलात्कार से केशोंके पकड़नेपर रतिके विषय हेमन्त सम्बन्धी भी रात्रियोंमें कौन युवा पुरुष सोतेथे ॥

७८--नहीं संपूर्ण निर्मल पत्रोंकी लीलासे मानों विस्मयको प्राप्त भ्रमरोंकी लवली (वृक्षविशेष) की लताओं में स्थितहुई पंक्तिने रससे अप्रकट और मधुरवाणी वारंवार कही ॥

७९—कुर्वन्तमित्यतिभरेण नगानवाचः
पुष्पैर्विराममलिनां च न गानवाचः।
श्रीमान् समस्तमनुसानु गिरा विहर्त्तुं
विभ्रत्यचोदि स मयूरगिरा विहर्त्तुम्॥

इतिश्रीमाघकृते शिशुपालबधे महाकाव्ये ऋतुवर्णनंनाम
षष्ठः सर्गः ६॥

७९–इसप्रकार पुष्पोंसे उत्पन्न बड़ेभारसे वृक्षोंको नम्रकरतीहुई भ्रमरोंकी गीतध्वनियों को नहीं समाप्त करतीहुई संपूर्ण ऋतुओंको शिखरोंमें धारणकरनेवाले इस पर्वतमें क्रीड़ा करनेके लिये श्रीमान् वह (श्रीकृष्णजी) मयूरकी वाणी से प्रेरणा कियेगये ॥

इति श्रीमाघकृतमहाकाव्यशिशुपालबधस्य भाषानुवादे
ऋतुवर्णनं नाम षष्ठःसर्गः ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥

भगवतः श्रीकृष्णस्य वनविहारवर्णनम् ॥

१—अनुगिरमृतुभिर्वितायमाना-
मथ स विलोकयितुं वनान्तलक्ष्मीम् ।
निरगमदभिराद्धुमादृतानां
भवति महत्सु न निष्फलः प्रयासः ॥
२—दधति सुमनसो वनानि बह्वी-
र्युवतियुता यदवः प्रयातुमीषुः ।
मनसिशयमहास्त्रमन्यथामी
न कुसुमपञ्चकमप्यलं विसोढुम् ॥
३—अवसरमधिगम्य तं हरन्त्यो
हृदयमयत्नकृतोज्ज्वलस्वरूपाः ।
अवनिषु पदमङ्गनास्तदानीं
न्यदधत विभ्रमसम्पदोऽङ्गनासु ॥
४—नखरुचिरचितेन्द्रचापलेखं
ललितगतेषु गतागतं दधाना ।
मुखरितवलयं पृथौ नितम्बे
भुजलतिका मुहुरस्खलत्तरुण्याः ॥
५—अतिशयपरिणाहवान् वितेने
बहुतरमर्पितरत्नकिंकिणीकः ।
अलघुनि जघनस्थलेऽपरस्या
ध्वनिमधिकं कलमेखलाकलापः ॥

सातवां सर्ग ॥

श्रीकृष्णजी का अच्छे प्रकारसे वनविहार वर्णन ॥

१–इसके उपरान्त रैवतक पर्व्वतमें श्रीकृष्णजी ऋतुओंसे विस्तारकीहुई वनके मध्यकी लक्ष्मीको देखनेकेलिये निकले आराधन करनेकेलिये आदर करनेवालोंका परिश्रम महात्माओं में निष्फल नहीं होता ॥

२–यदुवंशी लोगोंने बहुत पुष्पोंके धारण करनेवाले वनों में स्त्रीसमेत जानेकी इच्छाकरी नहीं तो यह यदुवंशीलोग कामके बड़े अस्त्ररूप पांच पुष्पोंकेभी सहनेको नहीं समर्थथे ॥

३–उस समयको प्राप्तहोकर हृदयको हरतीहुई स्वाभाविक उज्ज्वल स्वरूपवाली स्त्रियोंने उससमय पृथ्वीमें पैररक्खा (और) स्त्रियोंमें विलासकी संपत्तियोंने चरणरक्खा ॥

४–मन्द गमनोंमें नखोंकी कान्तियोंसे इन्द्रके धनुषकी रेखाओंको बनातीहुई गमन और आगमनको धारणकरतीहुई स्त्रियोंकी भुजारूपी लता कंकड़ोंको शब्दायमान करके वारंवार नितम्बों में स्खलितहुई ॥

५–अत्यन्त विशालतावाले बहुतसी रत्नमयी किंकिणियों से युक्त मधुर शब्दकरनेवाले मेखलाओं के समूहने अन्य स्त्री के बडे जघनस्थलमें अधिक ध्वनि करी ॥

६--गुरुनिविडनितम्बबिम्बभारा-
क्रमणनिपीडितमंगनाजनस्य।
चरणयुगमसुस्रुवत्पदेषु
स्वरसमसक्तमलक्तकच्छलेन ॥

७--तव सपदि समीपमानये ता-
महमिति तस्य मयाग्रतोऽभ्यधायि।
अतिरभसकृतालघुप्रतिज्ञा
मनृतगिरं गुणगौरि! मा कृथा माम् ॥

८--न च सुतनु! न वेद्मि यन्महीया-
नसुनिरसस्तव निश्चयः परेण।
वितथयति न जातु मद्वचोऽसा-
विति च तथापि सखीषु मेऽभिमानः ॥

९--सततमनभिभाषणं मया ते
परिपणितं भवतीमनानयन्त्या।
त्वयि तदिति विरोधनिश्चितायां
भवति! भवत्वसुहृज्जनः सकामः ॥

१०--गतधृतिरवलम्बितुं बतासू-
ननलमनालपनादहं भवत्याः।
प्रणयिनि यदि न प्रसादबुद्धि-
र्भव मम मानिनि! जीविते दयालुः ॥

६—गुरुत्व युक्त दृढ नितम्बरूपी भारके दबावसे पीड़ायुक्त स्त्रियों के दोनों चरणोंने चरण रखनेके स्थानोंमें महावर के बहाने से अपना रस लगातार टपकाया ॥

७--उसको शीघ्र तेरे समीप में लाऊंगी यह मैंने उसके आगे कहाहै हे गुणोंसे पार्वतीके तुल्य अत्यन्तशीघ्र बड़ी प्रतिज्ञा की करनेवाली मुझे असत्यवचनवाली मतकर ॥

८--हे सुन्दर शरीरवाली क्या मैं नहीं जानती किन्तु जानती हूं कि तेरा बड़ाभारी निश्चय अन्यपुरुषसे सुखपूर्वक त्याग कराने के योग्य नहीं है तिसपर भीयह मेरी सखी कभी भी मेरे वचनको मिथ्या नहीं करैगी यहमेरा सखियोंके मध्य में अभिमानहै ॥

९--तुझे लेजाने को असमर्थ मैंने सदातुझसे न बोलने की प्रतिज्ञाकी है हे सुभगे तुझे वह न बोलनाहोवे इसप्रकार विरोधके निश्चयकरनेवाली होनेपर शत्रुओंकासमूहसफल मनोरथवाला होवे ॥

१०--धैर्य रहित मैं तेरे न बोलने से प्राणधारण करनेको नहीं समर्थहूं खेदका विषयहै हेमानवाली जो प्रियमें अनुग्रह की बुद्धि नहीं है तो मेरे जीवनमें दयावालीहो ॥

११–प्रियमिति वनिता नितान्तमागः
स्मरणसरोषकषायितायताक्षी।
चरणगतसखीवचोऽनुरोधात्
किल कथमप्यनुकूलयाञ्चकार॥

१२–द्रुतपदमिति मा वयस्य! यासी-
र्ननु सुतनुं परिपालयानुयान्तीम्।
न हि न विदितखेदमेतदीय-
स्तनजघनोद्वहने तवापि चेतः॥

१३–इति वदति सखीजनेऽनुरागा-
द्दयिततमामपरश्चिरं प्रतीक्ष्य।
तदनुगमवशादनायतानि
न्यधित मिमान इवावनिम्पदानि॥

१४–यदि मयि लघिमानमागताथा-
स्तव धृतिरस्ति गतास्मि सम्प्रतीयम्।
अनिभृतपदपातमापपात
प्रियमिति कोपपदेन कापि सख्या॥

१५–अविरलपुलकः सह व्रजन्त्याः
प्रतिपदमेकतरस्तनस्तरुण्याः।
घटितविघटितः प्रियस्य वक्ष-
स्तटभुवि कन्दुकविभ्रमं बभार॥

१६–अशिथिलमपरावसज्य कण्ठे
दृढपरिरब्धबृहद्वहिस्तनेन।
हृषिततनुरुहा भुजेन भर्त्तु-
र्मृदममृदु व्यतिविद्धमेकबाहुम्॥

११--इसप्रकार अत्यन्त अपराधके स्मरण से क्रोधयुक्त रक्तवर्ण युक्त विशाल नेत्रवाली नायकाने चरण में प्राप्त सखी के वचनों के अनुरोध से प्रिय को किसी प्रकार से अनुकूल किया ॥

१२--हे मित्र इसप्रकारशीघ्रताकी चालसे मतचलो पीछेआती हुई अच्छे शरीरवाली स्त्रीकी बाटदेखो तुम्हाराचित्त भी इसके जघन और स्तनों के लेचलनेमें क्या खेदका जानने वाला नहीं है किन्तु है ॥

१३--इसप्रकार सखियों के कहनेपर किसी पुरुषने स्नेहसेअति प्रियाकी बाटको बहुतकालतक देखकर उसके पीछे चलने से मानों पृथ्वी को नापतेहुएने छोटे छोटे डगरक्खे ॥

१४--हेसखी जो मुझे लघुताप्राप्त होनेपर तुझे धैर्य्य है तो इसी प्रकार इसीसमय चलतीहूं यह कहतीहुई सखी के साथ कोपके बहाने से कोई नायका शीघ्रपदोंको रखकर प्रियके पीछे चली ॥

१५--साथ चलनेवाली स्त्रीका घनेरोमांचवाला एकस्तन प्रियकी तटरूपी छातीकी पृथ्वी में पद पद पर संयोग और वियोगको प्राप्तहोकर गेंदकी शोभाको प्राप्त हुआ ॥

१६--अन्यस्त्री दृढ़ता पूर्वक बड़े स्तनकी ग्रहण करनेवाली रोमांचयुक्त भुजासे अच्छेप्रकारसे संगको प्राप्त कोमल भुजाको पतिके कण्ठमें दृढ़ता पूर्व्वक रखकर चली ॥

१७--मुहुरसुसममाघ्नती नितान्तं
प्रणदितकाञ्चि नितम्बमण्डलेन ।
विघमितपृथुहारयष्टि तिर्यं-
क्कुचमितरन्तदुरःस्थले निपीड्य ॥
१८--गुरुतरकलनूपुरानुनादं
सललितनर्त्तितवामपादपद्मा ।
इतरदनतिलोलमादधाना
पदमथ मन्मथमन्थरं जगाम ॥
विशेषकम् ।
१९--लघुललितपदन्तदंसपीठ-
द्वयनिहितोभयपाणिपल्लवान्या ।
सकठिनकुचचूचुकप्रणोदं
प्रियमबला सविलासमन्वियाय ॥
२०--जघनमलघुपीवरोरु कृच्छ्रा-
दुरुनिबिरीसनितम्बभारखेदि ।
दयिततमशिरोधरावलम्बि
स्वभुजलताविभवेन काचिदूहे ॥
२१--अनुवपुरपरेण बाहुमूल-
प्रहितभुजाकलितस्तनेन निन्ये ।
निहितदशनवाससा कपोले
विषमवितीर्णपदं बलादिवान्या ॥

१७–नितम्बोंके द्वारा क्षुद्र घण्टिकाको अत्यन्त शब्दायमान करके वारंवार प्राणेश्वर (प्रियतम) को ताड़ना करतीहुई मोटी हाररूपी यष्टिकाको टेढ़ीकरके दूसरे स्तनको उस पतिके हृदयमें तिरछी दबातीहुई चली ॥

१८–घने मधुर नूपुरों के शब्दोंको करके लीला पूर्वक वामचरणको नचानेवाली दूसरे दक्षिण चरणको धीरे २ रखती हुई कामदेवसे आलस्य पूर्वक चली ॥

१९--अन्यस्त्री उस प्रियके पीठरूपी कन्धोंमें पल्लवरूपी हाथोंके रखनेवाली होकर पदोंको शीघ्रतायुक्त और ललित करके कठिनकुचोंके अग्रभागों के पीड़न पूर्वक और विलासकरके सहित प्रियके पीछे चली ॥

२०--किसी स्त्रीने गुरुत्वयुक्त स्थूल विशाल और घने नितम्बरूपी भारसे खेदयुक्त जघनको प्रियतमकी ग्रीवामें रक्खी हुई भुजारूपी लताओंकी सामर्थ्यसे दुःखपूर्वक धारणकिया ॥

२१–अन्यस्त्रीको शरीरके पीछे पुट्ठोंके नीचेसे फैलाई हुई भुजाओंके द्वारा स्तनका ग्रहणकरनेवाला कपोलमें ओष्ठका रखनेवाला अन्य कामी तिरछे पैरोंको रखकर मानोंवल से लेचला ॥

२२—अनुवनमसितभ्रुवः सखीभिः
सहपदवीमपरः पुरोगतायाः।
उरसि सरसरागपादलेखा-
प्रतिमतयानुययावसंशयानः॥

२३—मदनरसमहौघपूर्णनाभी-
ह्रदपरिवाहितरोमराजयस्ताः।
सरित इव सविभ्रमप्रयात-
प्रणादितहंसकभूषणा विरेजुः॥

२४—श्रुतिपथमधुराणि सारसाना-
मनुनदि शुश्रुविरे रुतानि ताभिः।
विदधति जनतामनःशरव्य-
व्यधपटुमन्मथचापनादशंकाम्॥

२५—मधुमथनवधूरिवाह्वयन्ति
भ्रमरकुलानि जगुर्यदुत्सुकानि।
तदभिनयमिवावलिर्वनाना-
मतनुत नूतनपल्लवांगुलीभिः॥

२६—असकलकलिकाकुलीकृतालि-
स्खलनविकीर्णविकाशिकेशराणाम्।
मरुदवनिरुहां रजो वधूभ्यः
समुपहरन् विचकार कोरकाणि॥

२२—और अन्यकामी वनकेप्रति सखियोंके साथ आगेगईहुई स्त्रीके मार्गमें भीतर रसयुक्त रागवाले चरणके रखने की तुल्यतासे संशयरहित होकर पीछेचला ॥

२३—कामदेव सम्बन्धी रस (शृंगार और जल) के बड़ेप्रवाहसे पूर्ण नाभिरूपी तड़ागोंकी पंक्तिरूपी जलके निकलने के मार्गकी बनानेवाली विलासयुक्त गमनों से शब्दायमान नूपुरोंके आभूषण अथवा हंसरूपी आभूषणवाली स्त्रियां नदियोंके समान शोभितहुईं ॥

२४—नदियों के समीप उनस्त्रियोंने मनुष्योंके समूहके मनरूपी लक्ष्योंके बेधने में समर्थ कामके धनुषकी ध्वनिकी शंका के उत्पन्न करनेवाले कानों में मधुर सारसोंके शब्द सुने ॥

२५—उत्सुक भ्रमरोंके समूहजोगानकरतेथे मानों श्रीकृष्णजीकी स्त्रियों का आह्वानकरतेथे वनोंकीपंक्तिने नूतनपल्लवरूपी अंगुलियों से मानों उसका भावबताया ॥

२६—पवनने अधकच्ची कलियोंसे क्षोभकोप्राप्त भ्रमरोंकेगिरने से बिखरेहुए केशरवाले वृक्षोंकीरज स्त्रियोंको देतेहुएने कलियां प्रफुल्लित कीं ॥

२७--उपवनपवनानुपातदक्षै-
रलिभिरलम्भि यदंगनागणस्य ।
परिमलविषयस्तदुन्नताना-
मनुगमने खलु सम्पदोऽग्रतःस्थाः ॥

२८--रथचरणधरांगनाकराब्ज-
व्यतिकरसम्पदुपात्तसौमनस्याः ।
जगति सुमनसस्तदादि नूनं
दधति परिस्फुटमर्थतोऽभिधानम् ॥

२९--अभिमुखपतितैर्गुणप्रकर्षा-
दवजितमुद्धतिमुज्ज्वलां दधानैः ।
तरुकिसलयजालमग्रहस्तैः
प्रसभमनीयत भंगमंगनानाम् ॥

३०--मुदितमधुभुजो भुजेन शाखा-
श्चलितविशृंखलशंखकं धुवत्याः ।
तरुरतिशयितापरांगनायाः
शिरसि मुदेव मुमोच पुष्पवर्षम् ॥

३१--अनवरतरसेन रागभाजा
करजपरिक्षतिलब्धसंस्तवेन ।
सपदि तरुणपल्लवेन बध्वा
विगतदयं खलु खण्डितेन मम्ले ॥

३२--प्रियमभि कुसुमोद्यतस्य बाहो-
र्नवनखमण्डनचारु मूलमन्या ।
मुहुरितरकराहितेन पीन-
स्तनतटरोधि तिरोदधेंऽशुकेन ॥

२७–बनसंबंधी पवन के अनुसरण करनेसे चतुरभ्रमरोंने जिस-
कारण स्त्री सम्बन्धी सुगन्धिरूपी विषय पाया इसीकारण
से महात्माओंके अनुसरण करनेसे सम्पत्तियां आगे स्थित
रहती हैं ॥

२८–पुष्प श्रीकृष्णजीकी स्त्रियोंके कमलरूपी हाथोंसे संसर्गरूपी
सम्पत्तिके द्वारा संतुष्ट चित्तको प्राप्तहोकर तबसे लेकर अर्थ
से प्रसिद्धनामको धारण करते हैं ॥

२९–सन्मुख प्राप्त उत्कृष्ट उद्धतपनेको धारण करनेवाले स्त्रियों
के अग्रहस्तोंने गुणकी अधिकतासे अनादर कियेगये वृक्षों
के समूहको हठपूर्वक भंगको प्राप्तकिया ॥

३०–प्रसन्न भ्रमरवाली शाखाओंको, हाथसे, चलायमान कंकडों
को शब्द युक्त करके कंपातीहुई अन्य स्त्रियोंके उल्लंघन
करनेवाली स्त्रीके शिरपर वृक्षने, मानों आनन्दसे पुष्पोंकी
वृष्टिकरी ॥

३१–निरन्तर रससे रागयुक्त नखक्षतोंमें परिचयवाला स्त्रीसे
निर्दयता पूर्वक छिन्न भिन्न कियागया तरुण पल्लव म्ला-
न होगया ॥

३२–अन्य स्त्रीने प्रियके सन्मुख पुष्पोंके लिये उद्यत भुजाके
नवीन नखक्षतरूपी आभरणसे सुन्दर मूलको वारंवार
दूसरे हाथसे लगाये हुए डुपट्टेके द्वारा स्थूल स्तनतटको
आच्छादित करके छिपाया ॥

३३--विततवलिविभाव्यपाण्डुलेखा
कृतपरभागविलीनरोमराजिः।
कृशमपि कृशतां पुनर्नयन्ती
विपुलतरोन्मुखलोचनावलग्नम्॥

३४--प्रसकलकुचबन्धुरोद्धुरोरः-
प्रसभविभिन्नतनूत्तरीयबन्धा।
अवनमदुदरोच्छ्वसद्दुकूल-
स्फुटतरलक्ष्यगभीरनाभिमूला॥

३५--व्यवहितमविजानती किलान्त-
र्वणभुवि वल्लभमाभिमुख्यभाजम्।
अधिविटपि सलीलमग्रपुष्प-
ग्रहणपदेन चिरं विलम्ब्य काचित्॥

३६--अथ किल कथिते सखीभिरत्र
क्षणमपरेव ससम्भ्रमा भवन्ती।
शिथिलितकुसुमाकुलाग्रपाणिः
प्रतिपदसंयमितांशुकावृतांगी॥

३७--कृतभयपरितोषसन्निपातं
सचकितसस्मितवक्त्रवारिजश्रीः।
मनसिजगुरुतत्क्षणोपदिष्टं
किमपि रसेन रसान्तरं भजन्ती॥

३३–कोई स्त्री विस्तारको प्राप्त त्रिवलियोंसे लक्षित पतिवर्णे-वाली रेखाओंसे उत्पन्नहुए वर्णकी उत्कृष्टतावाली अत्यन्त लयको प्राप्त रोमोंकी पंक्तिवाली कृश कटिको भी फिर कृशताको प्राप्त करतीभई बड़े और उन्मुख नेत्रवाली ॥

३४–अत्यन्त घने स्तनों से उन्नत और नत दृढ़ हृदयसे बलात्कारपूर्व्वक अलगहुए सूक्ष्म दुपट्टे के बन्धवाली भीतर प्राप्त उदरसे अलगहुए दुकूल (दुपट्टे) युक्त अत्यन्त स्फुटतापूर्व्वक लक्षित गंभीर नाभिके मूलवाली ॥

३५–किसीस्त्रीने वनके भीतरकी पृथ्वीमें छिपेहुए सन्मुख प्राप्त पतिको नहीं जानतीहुई वृक्षमें लीलापूर्व्वक वृक्षकेआगे पुष्पोंके लेनेके बहानेसे बहुत विलम्ब करके ॥

३६–इसके उपरान्त इस प्रियके विषयमें सखियों के कहनेसे क्षणमात्र संभ्रम (घवराहट) युक्त होतीभई पुष्पों में व्यापारयुक्त हाथके शिथिल करनेवाली हरस्थानमें अच्छे प्रकारसे लगायेहुएवस्त्रसे शरीरको आच्छादनकरनेवाली ॥

३७–भय और हर्षके इकट्ठे करनेवाले कामदेवरूपी गुरूसे उस क्षणमें उपदेश कियेगये किसी अन्यरसकोरागसे प्राप्तहोतीभई आश्चर्य्यको प्राप्त मन्दहास्ययुक्त मुखरूपी कमल की शोभावाली होकर ॥

३८--अवनतवदनेन्दुरिच्छतीव
व्यवधिमधीरतया यदास्थितास्मै।
अहरत सुतरामतोऽस्य चेतः
स्फुटमभिभूषयति स्त्रियस्त्रपैव॥
षड्भिः कुलकम्।

३९--किसलयशकलेष्ववाचनीयाः
पुलकिनि केवलमंगके निधेयाः।
नखपदलिपयोऽपि दीपितार्थाः
प्रणिदधिरे दयितैरनंगलेखाः॥

४०--कृतकृतकरुषा सखीमपास्य
त्वमकुशलेति कयाचिदात्मनैव।
अभिमतमभि साभिलाषमावि-
ष्कृतभुजमूलमबन्धि मूर्ध्नि माला॥

४१--अभिमुखमुपयाति मा स्म किञ्चित्
त्वमभिदधाः पटले मधुव्रतानाम्।
मधुसुरभिमुखाब्जगन्धलब्धे-
रधिकमधित्वदनेन मा निपाति॥

८–नम्र मुखवाली अधीरतासे मानों कुछ आड़कोढूंढ़तीहुई जो इसप्रियके लिये स्थितहुई इसीहेतुसे इसप्रियकेचित्त को अधिक हरलिया क्योंकि लज्जाही स्त्रियोंको आभूषित करतीहै यहप्रसिद्धहै–यह छः श्लोकों का कुलकहै ॥

९–पत्तोंके टुकड़ोंमें वर्त्तमान नहीं बांचनेकेयोग्य केवल पुलकित शरीरमें रखनेके योग्य नखों के चिह्नरूपी अक्षरवालीभी अर्थों के प्रकट करनेवाली कामकी पत्रियां प्रियोंने भेजीं ॥

१०--कृत्रिम रोषके करनेवाली किसी स्त्रीने तू प्रवीण नहीं है इसप्रकार सखीको हटाकर अपने आप अभिप्रायको अभिमुखकरके अभिलाषापूर्व्वक भुजाके मूलको प्रकाशित करके शिरमें मालाबांधी ॥

११--भ्रमरोंके समूहको सन्मुख आनेपर कुछ तुम न कहो मद्यसे सुगन्धित मुखरूपी कमलकी गंधिके लोभसे यहभ्रमरोंका समूह तुम पर सब कहीं न गिरे ॥

४२--सरजसमकरन्दनिर्भरासु
प्रसवविभूतिषु भूरुहां विरक्तः ।
ध्रुवममृतपनामवाञ्छयासा-
वधरममुं मधुपस्तवाजिहीते ॥

४३--इति वदति सखीजने निमीलद्-
द्विगुणितसान्द्रतराक्षिपक्ष्ममाला ।
अपतदलिभयेन भर्त्तुरङ्कं
भवति हि विक्लवता गुणोऽङ्गनानाम् ॥
विशेषकम् ।

४४--मुखकमलकमुन्नमय्य यूना
यदभिनवोढवधूर्बलादचुम्बि ।
तदपि न किल बालपल्लवाग्र-
ग्रहपरया विविदे विदग्धसख्या ॥

४५--व्रततिविततिभिस्तिरोहितायां
प्रतियुवतौ वदनं प्रियः प्रियायाः ।
यदधयदधरावलोपनृत्य-
त्करवलयस्वनितेन तद् विवव्रे ॥

४२--क्योंकि मधुप (भ्रमर और मद्यका पीनेवाला) भूरुह (वृक्ष और प्राणी) सम्बन्धी रज (पुष्पधूलि और स्त्रीके मासिक धर्मका रुधिर) से युक्त मकरन्द (पुष्परस और वीर्य्य) से पूर्ण प्रसव (पुष्प और जन्म) की विभूतियों (समृद्धि और परम्परा) में विरक्तहोकर अमृतप (अमृत का पीनेवाला) इसनामकी वाञ्छा से इस तुम्हारे ओष्ठ में मानों आताहै और अमृतप (देवता) इसनामकी वाञ्छासे निरन्तर पृथ्वीके सम्बन्धसे रहित इस परलोक के पथ को ढूंढताहै ॥

४३--इसप्रकार सखियोंके कहने पर बन्दहोते हुए द्विगुणताको प्राप्त अत्यन्त घनी नेत्रोंके पलकवाली कोई स्त्री भ्रमरोंके भयसे पतिकी गोदमें प्राप्तहुई क्योंकि डरपोकपना स्त्रियों का गुण होताहै ॥

४४--युवा पुरुषने बलात्कारपूर्वक कमलरूपी मुखको उठाकर जो चुम्बन किया वह चतुरसखीने नवीन पल्लवोंके लेनेमें तत्पर होकर जाना भी नहीं किन्तु प्रकाश नहीं किया यह क्या कहना ॥

४५--सपत्नी के लताओंके समूहसे छिपे होनेपर प्रियने प्रियाका जो मुख पानकिया वह ओष्ठोंके खंडनसे चलायमान कर सम्बन्धी कंकड़ों की ध्वनिसे प्रकाशितहुआ ॥

४६--विलसितमनुकुर्वती पुरस्ताद्
धरणिरुहाधिरुहो वधूर्लतायाः ।
रमणमृजुतया पुरः सखीना-
मकलितचापलदोषमालिलिङ्ग ॥

४७--सललितमवलम्ब्य पाणिनांसे
सहचरमुच्छ्रितगुच्छवाञ्छयान्या ।
सकलकलभकुम्भविभ्रमाभ्या-
मुरसि रसादवतस्तरे स्तनाभ्याम् ॥

४८--मृदुचरणतलाग्रदुःस्थितत्वा-
दसहतरा कुचकुम्भयोर्भरस्य ।
उपरि निरवलम्बनं प्रियस्य
न्यपतदथोच्चतरोच्चिचीषयान्या ॥

४९--उपरिजतरुजानि याचमानां
कुशलतया परिरम्भलोलुपोऽन्यः ।
प्रथितपृथुपयोधरां गृहाण
स्वयमिति मुग्धवधूमुदास दोर्भ्याम् ॥

५०--इदमिदमिति भूरुहाम्प्रसूनै-
र्मुहुरतिलोभयता पुरः पुरोऽन्या ।
अनुरहसमनायि नायकेन
त्वरयति रन्तुमहो जनं मनोभूः ॥

५१--विजनमिति बलादमुं गृहीत्वा
क्षणमथ वीक्ष्य विपक्षमन्तिकेऽन्या ।
अभिपतितुमना लघुत्वभीते-
रभवदयमुञ्चति वल्लभेऽतिगुर्वी ॥

४६--स्त्रीने सन्मुख वृक्षपर चढ़ीहुई लताका अनुकरण करतीहुई ने सरल स्वभावसे चपलतारूपी दोषको न विचार कर प्रियको आलिंगन किया ॥

४७--अन्य स्त्रीने उन्नत गुच्छोंके ग्रहणकरनेकी इच्छासे लीला-पूर्वक प्रियको हाथसे कन्धेको पकड़कर संपूर्ण हाथीके म-स्तककी समान शोभावाले स्तनोंके द्वारा रागसे हृदय में आच्छादन किया ॥

४८--अन्य स्त्री अत्यन्त उन्नत पुष्पोंके तोड़नेकी इच्छासे कोमल चरणतलोंके अग्रभागके द्वारा दुःखपूर्वक स्थिति होनेसे कुंभरूपी कुचोंके भारको न सहकर उस समय अवलम्बन-रहित होकर प्रियके ऊपर गिरी ॥

४९--वृक्षके ऊपर उत्पन्नहुए पुष्पोंको मांगतीहुई उत्तम स्थूल कुचवाली सरलस्वभाववाली स्त्रीको आलिंगन करने के लिये लुब्ध पुरुषने प्रवीणतासे अपने आप लेलो इसप्रकार (कहकर) हाथोंसे उठालिया ॥

५०--अन्य स्त्रीको यह लेनेके योग्यहै यह लेनेचाहिये इसप्रकार वृक्षोंके पुष्पोंके द्वारा आगे २ वारंवार लुभाताहुआ नायक एकान्तमें लेगया क्योंकि कामदेव पुरुषोंको रमण करनेके लिये शीघ्रता युक्त करताहै ॥

५१--अन्य स्त्री एकान्तके कारण प्रियको बलात्कारसे खेंचकर इ सकेउपरान्त समीपमें सपत्नीको देखकर तुच्छत्वके भय भागनेकी इच्छावाली प्रियके न छोड़नेपर अत्यन्त गौर वाली हुई ॥

५२–अथिरजनि जगाम धाम तस्याः
प्रियतमयेति रुषा स्रजावनद्धः ।
पदमपि चलितुं युवा न सेहे
किमिव न शक्तिहरं ससाध्वसानाम् ॥

५३–न खलु वयममुष्य दानयोग्याः
पिबति च पाति च यासकौ रहस्त्वाम् ।
व्रज विटपममुं ददस्व तस्यै
भवतु यतः सदृशोऽश्चिराय योगः ॥

५४--तव कितव ! किमाहितैर्वृथा नः
क्षितिरुहपल्लवपुष्पकर्णपूरैः ।
ननु जनविदितैर्भवद्व्यलीकै-
श्चिरपरिपूरितमेव कर्णयुग्मम् ॥

५५--मुहुरुपहसितामिवालिनादै-
र्वितरसि नः कलिकां किमर्थमेनाम् ।
वसतिमुपगतेन धाम्नि तस्याः
शठ ! कलिरेष महांस्त्वयाऽद्य दत्तः ॥

५६--इति गदितवती रुषा जघान
स्फुरितमनोरमपक्ष्मकेशरेण ।
श्रवणनियमितेन कान्तमन्या
सममसिताम्बुरुहेण चक्षुषा च ॥

कलापकम् ।

५२–रात्रिके समय उससपत्नीके गृहमें गयाथा इसकारण क्रोध पूर्वक अत्यन्त प्रियासे बाँधागया युवा पुरुष पदभर भी चलनेको नहीं समर्थहुआ क्योंकि भयभीतों को कौनसी वस्तु शक्तिकी हरनेवाली नहीं होती ॥

५३–हम इसके दानके योग्य नहीं हैं किन्तुजो यह एकान्त में तुझे पान करतीहै और रक्षा करती है उसे (तुम) इस पल्लवकोदो जाओ जिस्सेबहुतकालतक तुल्योंकायोगहोवे॥

५४–हे धूर्त्त व्यर्थ धारण कियेहुए तेरे वृक्ष सम्बन्धी पल्लव और पुष्परूपी कर्णभूषणों से हमको क्याहै किन्तुजनोंमें विदित तुम्हारे अप्रिय वचनोंसे दोनों कान बहुत कालसे पूर्ण हैं ॥

५५–भ्रमरोंकी ध्वनियोंसे मानों हँसीगई इस कलिका (कली और कलह) को हमें क्यों देतेहो हे शठ इसके गृहमें स्थितिको प्राप्त तुमने आज यह बड़ा कलह दियाहै ॥

५६--इसप्रकारसे कहतीहुई अन्य स्त्रीने क्रोधसे प्रियकोउज्ज्वल और रमणीक पलकरूपी केशर और केशररूपी पलक वाले कानमें रक्खे गये और कानसे रोकेगये नीलकमल और नेत्रसे एकसाथही ताड़नाकी ॥

५७--विनयति सुदृशो दृशः पराग-
म्प्रणयिनि कौसुममाननानिलेन ।
तदहितयुवतेरभीक्ष्णमक्ष्णो-
र्द्वयमपि रोषरजोभिरापुपूरे ॥

५८—स्फुटमिदमभिचारमन्त्र एव
प्रतियुवतेरभिधानमंगनानाम् ।
वरतनुरमुनोपहूय पत्या
मृदुकुसुमेन यदाहताप्यमूर्च्छत् ॥

५९—समदनमवतंसितेऽधिकर्ण-
म्प्रणयवता कुसुमे सुमध्यमायाः ।
व्रजदपि लघुताम्बभूव भारः
सपदि हिरण्मयमण्डनं सपत्न्याः ॥

६०—अवजितमधुना तवाहमक्ष्णो-
रुचिरतयेत्यवनम्य लज्जयेव ।
श्रवणकुवलयं विलासवत्या
भ्रमररुतैरुपकर्णमाचचक्षे ॥

६१—अवचितकुसुमा विहाय वल्ली-
र्युवतिषु कोमलमाल्यमालिनीषु ।
पदमुपदधिरे कुलान्यलीनां
न परिचयो मलिनात्मनाम्प्रधानम् ॥

६२—श्लथशिरसिजपाशपातभारा-
दिव नितरां नतिमद्भिरंसभागैः ।
मुकुलितनयनैर्मुखारविन्दै-
र्घनमहतामिव पक्ष्मणाम्भरेण ॥

५७–प्रियके प्रियाके नेत्रसे पुष्प संबंधी रजको मुखके पवन से निकालनेपर उसकी सपत्नीके दोनोंनेत्र रोषरूपी रजों से अत्यन्त पूर्णहुये ॥

५८–यह सपत्नीका नाम स्त्रियोंको मानों मारण मन्त्रहै जिस कारणसे पतिसे इससपत्नी नामके द्वारा बुलायकर कोमल पुष्पसेभी ताड़ित होकर मूर्च्छाको प्राप्तहुई ॥

५९–प्रियसे प्रियाके कानमें पुष्पके कामदेवपूर्वक आभूषित करनेपर शिथिलघुताको प्राप्त होताहुआ भी सपत्नीका सुवर्णमय आभूषणभी भारहुआ ॥

६०–स्त्रीके कर्णका कमल हम इससमय तुम्हारे नेत्रोंकी सुन्दरतासे जीतेगये यहलज्जासे नम्रहोकर मानों भ्रमरोंके शब्द से कानमें कहता था ॥

६१–भ्रमरोंके समूह ने तोड़ेहुये पुष्पवाली लताको त्यागकरके कोमल मालाओंके धारणकरनेवाली स्त्रियोंमें चरणरक्खा क्योंकि मलिनात्मा (काले शरीरवाले और दुष्टचित्त)ओं को परिचय प्रधान नहीं होता ॥

६२–शिथिल केशोंके समूहके गिरनेसे मानों नम्रकन्धों से जानी गई घने और बड़ेपलकोंके भारसे बन्दहुये नेत्रवाले मुखरूपी कमलों से उपलक्षित (पहचानी गई) ॥

६३—अधिकमरुणिमानमुद्वहद्भि-
विकसदशीतमरीचिरश्मिजालैः ।
परिचितपरिचुम्बनाभियोगा-
दुपगतकुंकुमरेणुभिः कपोलैः ॥

६४—अवसितललिताक्रियेण बाह्वो-
र्ललिततरेण तनीयसा युगेन ।
सरसकिसलयानुरञ्जितैर्वा
करकमलैः पुनरुक्तरक्तभाभिः ॥

६५—स्मरसरसमुरःस्थलेन पत्यु-
र्विनिमयसंक्रमितांगरागरागैः ।
भृशमतिशयस्वेदसम्पदेव
स्तनयुगलैरितरेतरं निषण्णैः ॥

६६—अतनुकुचभरानतेन भूयः
श्रमजनितानतिना शरीरकेण ।
अनुचितगतिसादनिःसहत्वं
कलभकरोरुभिरूरुभिर्दधानैः ॥

६७—अपगतनवयावकैश्चिराय
क्षितिगमनेन पुनर्वितीर्णरागैः ।
कथमपि चरणोत्पलैश्चलद्भि-
र्भृश विनिवेश वशात्परस्परस्य ॥

६८—मुहुरिति वनविभ्रमाभिषंगा-
दतमि तदा नितरां नितम्बिनीभिः ।
मृदुतरतनवोऽलसाः प्रकृत्या
चिरमपि ताः किमुत प्रयासभाजः ॥

६३--प्रियोंके चुम्बनके द्वारा मर्द्दनसे कुंकुमकी रजसे रहित सूर्य की किरणों के प्रतिविम्बवाले अधिक रक्तवर्णको धारण करनेवाले कपोलों से उपलक्षित (पहचानी हुई) ॥

६४--श्रमसे समाप्त सुकुमार चेष्टावाली अत्यन्त कोमल अत्यन्त दुर्बल दोनों भुजाओं से उपलक्षित (पहचानी गई) रसयुक्त पल्लवोंसे मानों रंगेगये द्विगुण रक्तदीप्तिवाले कररूपी कमलोंसे उपलक्षित (पहचानी गई) ॥

६५--कामदेवसे रागयुक्त होकर पतिके हृदयके द्वारा परस्परलेनेदेनेसे प्राप्तहुए अंगरागसे रागयुक्त अत्यन्त स्वेदकी संपत्तिसे मानों परस्पर मिलेहुये स्तनोंके जोड़ोंसे उपलक्षित॥

६६--बड़े कुचोंके भारसे नम्र फिर श्रमसे उत्पन्नहुई नम्रतावाले शरीरसे नहीं अभ्यास कियेगये गमनसे जो कृशता उससे जो है असमर्थता उसको धारण करनेवाली हाथियों की सूंड़ोंके समान बड़ी जंघाओंसे उपलक्षित ॥

६७--बहुत काल पृथ्वीमें गमनकरनेसे महावररहित फिर पृथ्वी में चलनेहीं से रागयुक्त परस्पर स्थिरता पूर्व्वक रखने से किसीप्रकार चलतेहुए चरणरूपी कमलोंसे उपलक्षित (पहचानीगई) ॥

६८--इसप्रकारकी स्त्रियां वारंवार वनमें घूमनेके संगसे अत्यन्त म्लानहुई क्योंकि अत्यन्त कोमल शरीरवाली वह स्त्रियां स्वभावसे आलस्ययुक्त हैं फिर बहुत कालतक परिश्रम करके तो क्याही कहनाहै ॥

६९—प्रथममलघुमौक्तिकाभमासीत्
श्रमजलमुज्ज्वलगण्डमण्डलेषु ।
कठिनकुचतटाग्रपाति पश्चा-
दथ शतशर्करतां जगाम तासाम् ॥

७०—विपुलकमपि यौवनोद्धतानां
घनपुलकोदयकोमलं चकाशे ।
परिमलितमपि प्रियैः प्रकामं
कुचयुगमुज्ज्वलमेव कामिनीनाम् ॥

७१—अविरतकुसुमावचायखेदा-
न्निहितभुजालतयैकयोपकण्ठम् ।
विपुलतरनिरन्तरावलग्न-
स्तनपिहितप्रियवक्षसा ललम्बे ॥

७२—अभिमतमभितः कृतांगभंगा
कुचयुगमुन्नतिवित्तमुन्नमय्य ।
तनुरभिलषितं क्लमच्छलेन
व्यवृणुत वेल्लितबाहुवल्लरीका ॥

७३—हिमलवसदृशः श्रमोदबिन्दू-
नपनयता किल नूतनोढवध्वाः ।
कुचकलशकिशोरकौ कथञ्चि-
त्तरलतया तरुणेन पस्पृशाते ॥

६९-उनस्त्रियोंका स्वेद पहलेउज्ज्वल कपोलोंमें स्थूल मोतियों की तुल्यताको प्राप्तहुआ पीछे कठोर कुचोंके अग्रभाग में गिरनेवालाहोकर इसके उपरान्त सैकड़ोंखंडोंकोप्राप्तहुआ॥

७०-युवावस्थासे उद्धत स्त्रियोंके कुचोंका जोड़ा विपुलक (रोमांचरहित और विस्तृत) भी घने रोमांचसे कोमल होकर प्रियोंसे अत्यन्त परिमलित (अत्यन्त मलिन कियागया और मर्दित) भी विमलही शोभितहुआ॥

७१-निरन्तर पुष्पोंके तोड़नेसे उत्पन्नहुए खेदसे पतिके कण्ठमें भुजाओंकी रखनेवाली अत्यन्त स्थूल और मिलेहुए स्तनों से प्रियके हृदयको आच्छादन करनेवाली स्त्री लंबायमान हुई॥

७२-स्त्रीने प्रियके इधर उधर उन्नतिसे प्रतीतहोते हुए दोनों कुचोंको उठाकर ऐड़ाई लेनेवाली चेष्टायुक्त बाहुरूपी लतावाली ने श्रमके दूरकरनेकेबहानेसे अभिलाषप्रकटकिया॥

७३-पालेके कणोंके तुल्य स्वेदके विन्दुओंको दूरकरतेहुए युवा पुरुषने नवोढ़ा (नवीनविवाहिता) स्त्री के कलशतुल्य कुचरूपी अश्वशावक किसी प्रकार चपलतासे स्पर्श किये॥

७४—गत्वोद्रेकं जघनपुलिने रुद्धमध्यप्रदेशः
क्रामन्नूरुद्रुमभुजलताः पूर्णनाभीह्रदांतः ।
उल्लंघ्योच्चैःकुचतटभुवं प्लावयन्रोमकूपान्
स्वेदापूरो युवतिसरितां व्याप गण्डस्थलानि ॥

७५—प्रियकरपरिमार्गादंगनानां यदाभूत्
पुनरधिकतरैव स्वेदतोयोदयश्रीः ।
अथ वपुरभिषेकुन्तास्तदाम्भोभिरीषु-
र्वनविहरणखेदम्लानमम्लानशोभाः ॥

इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये वनविहारोनाम
सप्तमः सर्गः ७ ॥

७४–स्त्रीरूपी नदियोंका स्वेदरूपी प्रवाह जंघारूपी किनारे में फैलकर मध्यप्रदेश (कटि और प्रवाहस्थान) का रोकने वाला नाभिरूपी तड़ागका पूर्णकरनेवाला कुचरूपी तटों की पृथ्वीको उल्लंघन करके रोमोंके छिद्ररूपी कूपोंको पूर्ण करताहुआ जंघारूपी वृक्ष और भुजारूपी लताओंको द-बाताहुआ गण्डस्थलों (कपोल और उन्नत पृथ्वीके भाग) में प्राप्तहुआ ॥

७५–जिस समय स्त्रियोंके प्रियोंके हाथोंके स्पर्शसे स्वेदके जलों के उदय होनेकी सम्पत्ति फिरभी अत्यन्त अधिकहुई उस समय नहीं म्लान शोभावाली स्त्रियोंने वन विहारके खेद से म्लान शरीरको जलोंसे अभिषेक करनेकी इच्छाकरी ॥

इतिश्रीमाघकृतमहाकाव्यशिशुपालबधस्य भाषानुवाद वन विहारो नाम सप्तमः सर्गः ७ ॥

अष्टमः सर्गः

भगवतः श्रीकृष्णस्य जलविहारवर्णनम् ॥

१--आयासादलघुतरस्तनैः स्तनाद्भिः
श्रान्तानामविकचलोचनारविन्दैः ।
अभ्यम्भः कथमपि योषितां समूहै-
स्तैरुर्वीनिहितचलत्पदं प्रचेले ॥

२--यान्तीनां सममसितभ्रुवां नतत्वा-
दंसानां महति नितान्तमन्तरेऽपि ।
संसक्तैर्विपुलतया मिथो नितम्बैः
सम्बाधं वृहदपि तद् बभूव वर्त्म ॥

३--नीरन्ध्रद्रुमशिशिरां भुवं व्रजन्तीः
साशंकं मुहुरपि कौतुकात्करैस्ताः ।
पस्पर्श क्षणमनिलाकुलीकृतानां
शाखानामतुहिनरश्मिरन्तरालैः ॥

४--एकस्यास्तपनकरैः करालिताया
बिभ्राणः सपदि सितोष्णवारणत्वम् ।
सेवायै वदनसरोजनिर्जितश्री-
रागत्य प्रियमिव चन्द्रमाश्चकार ॥

५--स्वं रागादुपरि वितन्वतोत्तरीयं
कान्तेन प्रतिपदवारितातपायाः ।
सच्छत्रादपरविलासिनीसमूहा-
च्छायासीदधिकतरा तदापरस्याः ॥

आठवां सर्ग

श्रीकृष्णजीका अनेकप्रकारसे जलविहार वर्णन ॥

१–बड़े स्तनवाले शब्दायमान नेत्ररूपी कमलवाले परिश्रमसे थकेहुए स्त्रियोंके वह समूह पृथ्वीमें चरणोंको रखकर चला-यमान करके जलके प्रति किसी प्रकार चले ॥

२–एकसाथ जातीहुई स्त्रियोंके कंधोंकी नम्रतासे अत्यन्त अव-काश होनेपर भी विशालताके कारण परस्पर मिलेहुए नि-तम्बोंसे बड़ा भी मार्ग स्वल्प अवकाशवाला हुआ ॥

३–छिद्ररहित वृक्षोंसे शीतल पृथ्वीमें जातीहुई उन स्त्रियोंको सूर्य्यने क्षणमात्र वायुसे चलाईहुई शाखाओंके मध्यसे मानों उत्सुकतापूर्व्वक शंकायुक्त होकर करों (हाथ और किरण) से स्पर्श किया ॥

४–मुखरूपी कमलसे जीतीहुई शोभावाले चन्द्रमाने सेवाके लिये आकर सूर्य्यकी किरणोंसे पीड़ित किसी स्त्रीके शीघ्रही श्वेत आतपत्रत्व (छत्रपने) को धारण करके प्रियकिया ॥

५–अनुरागसे ऊपर अपने डुपट्टेको तानतेहुए प्रियसे पद पद पर हटेहुए आतपवाली किसी स्त्रीकीछत्रयुक्त और स्त्रियों के समूहसे अत्यन्त अधिक छाया (परछाईंऔर कान्ति) हुई ॥

६--संस्पर्शप्रभवसुखोपचीयमाने
सर्वाङ्गे करतललग्नवल्लभायाः।
कौशेयं व्रजदपि गाढतामजस्रं
सस्रंसे विगलितनीवि नीरजाक्ष्याः॥

७--गच्छन्तीरलसमवेक्ष्य विस्मयिन्य-
स्तातन्वीर्न विदधिरे गतानि हंस्यः।
बुद्ध्वा वा जितमपरेण काममावि-
ष्कुर्वीत स्वगुणमपत्रपः क एव॥

८--श्रीमद्भिर्जितपुलिनानि माधवीना-
मारोहैर्निविडबृहन्नितम्बबिम्बैः।
पाषाणस्खलनविलोलमाशु नूनं
वैलक्ष्याद्ययुरवरोधनानि सिन्धोः॥

९--मुक्ताभिः सलिलरयास्तशुक्तिपेशी-
मुक्ताभिः कृतरुचि सैकतं नदीनाम्।
स्त्रीलोकः परिकलयाञ्चकार तुल्यं
पल्यङ्कैर्विगलितहारचारुभिः स्वैः॥

१०--आघ्राय श्रमजमनिन्द्यगन्धबन्धुं
निःश्वासश्वसनमसक्तमङ्गनानाम्।
आरण्याः सुमनस ईषिरे न भृङ्गै-
रौचित्यं गणयति को विशेषकामः॥

११--आयान्त्यां निजयुवतौ वनात्सशङ्कं
बर्हाणामपरशिखण्डिनी भरेण।
आलोक्य व्यवदधतं पुरो मयूरं
कामिन्यः श्रद्धुरनार्जवं नरेषु॥

६–हाथमें लगेहुए प्रियवाली कमलतुल्य नेत्रवाली किसीस्त्री के संपूर्ण अंगमें स्पर्शके प्रभावसे उत्पन्नहुएसुखसे पुष्टता होनेपर दृढ़ताको प्राप्तभी खुलीहुई ग्रन्थिवाला डुपट्टा अत्यन्त खिसकगया ॥

७–हंसकीस्त्रियोंने मन्द गमन करतीहुई उन स्त्रियोंको देखकर विस्मय युक्तहोकर गमन नहीं किया क्योंकि अन्यसे जीते हुए अपने गुणको जानकर कौन निर्लज्ज होकर अत्यन्त प्रकाशकरे ॥

८–शोभायुक्त घने नितम्बवाली श्रीकृष्णजीकी स्त्रियोंकी जंघाओंसे जीतेहुए किनारेवाली समुद्रकी स्त्रियों (नदियों) ने संकोचसे पाषाणोंमें घातकरनेसे चंचलतापूर्वक शीघ्र गमन किया ॥

९–स्त्रियोंके समूहने जलकेवेगसे प्रेरित सीपीरूपी पुटोंसे छूटे हुए मोतियोंके द्वारा कान्तियुक्त नदियोंकेकिनारेको टूटेहुए हारोंसे सुन्दर अपनी शय्याओंके तुल्यमाना ॥

१०–भ्रमरोंने श्रमसे उत्पन्न प्रशंसा योग्य सुगन्धियुक्त स्त्रियोंके श्वासकी वायुको निषेधके विना सूंघकर वनमें उत्पन्नहुए पुष्पोंकी इच्छा नहीं की क्योंकि विशेष कामवाला कौन पुरुष उचितताको गिनता है ॥

११–अपनी स्त्रीके वनसे आनेपर दूसरी मयूरीको पूंछसे आच्छादित करतेहुए मोरको आगे देखकर स्त्रियोंने प्रियोंमें कुटिलताका विश्वास किया ॥

१२--आलापैस्तुलितरवाणि माधवीनां
माधुर्य्यादमलपतत्त्रिणां कुलानि।
अन्तर्द्धामुपययुरुत्पलावलीषु
प्रादुःष्यात्क इव जितः पुरः परेण॥

१३--मुग्धायाः स्मरललितेषु चक्रवाक्या
निःशंकं दयिततमेन चुम्बितायाः।
प्राणेशानभि विदधुर्विधूतहस्ताः
शीत्कारं समुचितमुत्तरं तरुण्यः॥

१४--उत्क्षिप्तस्फुटितसरोरुहार्घ्यमुच्चैः
सस्नेहं विहगरुतैरिवालपन्ती।
नारीणामथ सरसी सफेनहासा
प्रीत्येव व्यतनुत पाद्यमूर्मिहस्तैः॥

१५--नित्याया निजवसतेर्निरासिरे य-
द्रागेण श्रियमरविन्दतः कराग्रैः।
व्यक्तत्वं नियतमनेन निन्युरस्याः
सापत्न्यं क्षितिसुतविद्विषो महिष्यः॥

१६--आस्कन्दन् कथमपि योषितो न याव-
द्भीमत्यः प्रियकरधार्य्यमाणहस्ताः।
औत्सुक्यात्त्वरितममूस्तदम्बु ताव-
त्संक्रान्तप्रतिमतया दधाविवान्तः॥

१७--ताः पूर्वं सचकितमागमय्य गाधं
कृत्वाथो मृदुपदमन्तराविशन्त्यः।
कामिन्यो मन इव कामिनां सरागै-
रंगैस्तज्जलमनुरञ्जयाम्बभूवुः॥

१२—श्रीकृष्णजीकी स्त्रियोंके शब्दोंसे तिरस्कार कियेगये शब्द वाले हंसोंके समूह कमलोंकी पंक्तियोंमें छिपगये क्योंकि शत्रुसे जीताहुआ कौन सन्मुख प्रकट होगा ॥

१३—अत्यन्त प्रियसे शंकारहित चुम्बनकीगई कामकी चेष्टाओं में मूढ़ चकवीके योग्य शीत्कार (शीशीकरना) रूपी उत्तर स्त्रियोंने अपने आप प्रियोंके प्रति हाथोंको कंपायकरदिया॥

१४—प्रफुल्लित कमलरूपी अर्घ्यको फेंककर स्नेहपूर्व्वक पक्षियोंके शब्दोंसे मानों बोलतीहुई फेनरूपी हास्य से युक्त तलाईने स्त्रियोंको तरंगरूपी हाथों से मानों प्रीतिपूर्व्वक पाद्य दिया ॥

१५—श्रीकृष्णजीकी स्त्रियोंने हाथोंके अग्रभागोंसे राग (रक्तवर्ण और इच्छा) पूर्व्वक श्री (शोभा और लक्ष्मी) को नित्य अपने स्थानरूपी कमलसे निकालदिया इसकारणसे इस लक्ष्मीका सपत्नीपन प्रकटताको प्राप्तकिया ॥

१६—भययुक्त स्त्रियां प्रियके हाथोंकी आलम्बनकरनेवाली होकर जबतक किसी प्रकार नहीं प्रविष्टहुई तबतक पड़ेहुए प्रतिविम्बसे उस जलने उत्कण्ठतासे शीघ्रतापूर्व्वक इन स्त्रियोंको मानों अन्तःकरणमें धारणाकिया ॥

१७—स्त्रियोंने प्रियोंके मनके तुल्य जलको पहले भययुक्तहोकर थाहवाला जानकर धीरे धीरे पदरखके रागयुक्त अंगों से रागयुक्त किया ॥

१८—संक्षोभं पयसि मुहुर्महेभकुम्भ-
श्रीभाजा कुचयुगलेन नीयमाने ।
विश्लेषं युगमगमद्रथांगनाम्नो
रुद्वृत्तः क इव सुखावहः परेषाम् ॥

१९—आसीना तटभुवि सस्मितेन भर्त्रा
रम्भोरूरवतरितुं सरस्यनिच्छुः ।
धुन्वाना करयुग्मीक्षितुं विलासान्
शीतालुः सलिलगतेन सिच्यते स्म ॥

२०--नेच्छन्ती सममुना सरोऽवगाढुं
रोधस्तः प्रतिजलमीरिता सखीभिः ।
आश्लिक्षद्भयचकितेक्षणं नवोढा
वोढारं विपदि न दूषिताऽतिभूमिः ॥

२१--तिष्ठन्तम्पयसि पुमांसमंसमात्रे
तद्दघ्नन्तदवयती किलात्मनोऽपि ।
अभ्येतुं सुतनुरभीरियेष मौग्ध्या-
दाश्लेषि द्रुतममुना निमज्जतीति ॥

२२—आनाभेः सरसि नतभ्रुवावगाढे
चापल्यादथ पयसस्तरंगहस्तैः ।
उच्छ्रायि स्तनयुगमध्यरोहि लब्ध-
स्पर्शानां भवति कुतोऽथवा व्यवस्था ॥

२३--कान्तानां कुवलयमप्यपास्तमक्ष्णोः
शोभाभिर्न मुखरुचाऽहमेकमेव ।
संहर्षादलिविरुतैरितीव गाय-
ल्लोलोर्मौ पयसि महोत्पलं ननर्त ॥

१८--बड़े हाथियोंके मस्तकके तुल्य शोभावाले स्तनोंके युग से जलमें वारंवार क्षोभ (चंचलता) प्राप्त होनेपर चक्रवाकों का युग वियोगको प्राप्तहुआ क्योंकि उद्वृत्त (उन्नति वृत्ति वाला औरकुमार्गवर्त्ती)कौनअन्योंकासुखदेनेवालाहोताहै॥

१९--शीतसे डरीहुई तड़ागमें उतरनेको नहीं इच्छा करनेवाली किनारेपर बैठीहुई केलेके समान जंघावाली स्त्री जल में प्रविष्ट हास्य युक्त पतिसे विलासोंके देखनेके लिये हाथों को कंपातीहुई सींचीगई ॥

२०--इस पतिके साथ तड़ागके मझानेको नहीं इच्छा करतीभई सखियोंसे जलके प्रति किनारेसे प्रेरणाकीगई नवीन बधूने भयसे भ्रान्ति युक्त नेत्रवाली होकर पतिका आलिंगनकिया क्योंकि विपत्तिमें मर्य्यादाका उल्लंघन दूषित नहीं है ॥

२१--अच्छे शरीरवाली स्त्रीने कन्धेतक जलमें स्थितहुए पुरुषको देखकर अपने भी कन्धेतक जानतीहुई मूढ़तासे निर्भय होकर समीप जानेकी इच्छाकी इस पुरुषने डूबतीहै इस कारणसे शीघ्रही आलिंगन किया ॥

२२--नम्र भृकुटी वाली स्त्रीसे तड़ागके नाभि पर्य्यन्त मझाने पर इसके उपरान्त जलकी चपलतासे तरंगरूपी हाथ उन्नत युक्त स्तनोंके युगमें चढ़े क्योंकि स्पर्शको प्राप्तहुए पुरुषोंको कहाँ मर्य्यादा होती है ॥

२३--चंचल तरंगवाले जलमें कमल स्त्रियोंके मुखकी शोभासे एक हमही तिरस्कारको नहीं प्राप्तहुएहैं किन्तु उनके नेत्रों की शोभासे कोकाबेली भी तिरस्कारकीगई है इस हर्ष से भ्रमरोंके शब्दोंके द्वारा गान करता हुआ मानों नाचा ॥

२४–त्रस्यन्ती चलशफरीविघट्टितोरू-
र्वामोरूरतिशयमाप विभ्रमस्य।
क्षुभ्यन्ति प्रसभमहो विनापि हेतो-
र्लीलाभिः किमु सति कारणे रमण्यः॥

२५–आकृष्टप्रतनुवपुर्लतैस्तरङ्गि-
स्तस्याम्भस्तदथ सरोमहार्णवस्य।
अक्षोभि प्रसृतविलोलबाहुपक्षै-
र्योषाणामुरुभिरुरोजगण्डशैलैः॥

२६–गाम्भीर्य्यन्दधदपि रन्तुमंगनाभिः
संक्षोभं जघनविघट्टनेन नीतः।
अम्भोधिर्विकसितवारिजाननोऽसौ
मर्य्यादां सपदि विलंघयाम्बभूव॥

२७–आदातुन्दयितमिवावगाढमारा-
दूर्मीणां ततिभिरभिप्रसार्य्यमाणः।
कस्याश्चिद्विततचलच्छिखांगुलीको
लक्ष्मीवान् सरसि रराज केशहस्तः॥

२८–उन्निद्रप्रियकमनोरमं रमण्याः
संरेजे सरसि वपुः प्रकाशमेव।
युक्तानां विमलतया तिरस्क्रियायै
नाक्रामन्नपि हि भवत्यलंजलौघः॥

२४–चलायमान मछलीसे बिंधीहुई जंघावाली डरीहुई सुन्दर जंघावाली स्त्री विलासकी विशेषताको प्राप्तहुई क्योंकि स्त्रियां कारणके विनाभी विलासोंसे अत्यन्त क्षोभको प्राप्त होती हैं और कारण होनेपर तो क्याही कहना ॥

२५–इसके उपरान्त दुर्बल शरीररूपी लताओंके आकर्षण करने वाले तैरतेहुये फैलीहुई चंचल भुजारूपी पक्षवाले बड़े स्त्रियोंके स्तनरूपी पर्व्वतसे गिरेहुये पाषाणोंसे तड़ागरूपी समुद्रका जल क्षोभको प्राप्तहुआ ॥

२६–गम्भीरता (अथाहपन और विकाररहितचित्तता) को धारण करतेहुए भी रमण करनेके लिये जंघाके रगड़नेसे क्षोभ (चंचलता और चित्तविकार) को प्राप्त फूलेहुए कमल के तुल्यमुख और मुखके तुल्यफूलेहुए कमलवाले तड़ागने शीघ्र मर्य्यादाका उल्लंघन किया ॥

२७–तड़ागमें फैलीहुई चंचल शिखावाला शोभायुक्त किसी स्त्रीके केशोंका समूह समीपमें गोतामारनेवाले पतिको मानों ग्रहण करनेके लिये तरंगोंके समूहों से चारों ओर फैलाया गया शोभित हुआ ॥

२८–प्रफुल्लित विजयसारके पुष्पके समान मनोरम स्त्री का शरीर तड़ागमें प्रकाशयुक्तही शोभित हुआ क्योंकि जलौघ (जलका समूह और मूर्खोंका समूह) आक्रमण (आच्छादन और आक्षेप) करता हुआ भी शुद्धतासे युक्तोंके तिरस्कार (छुपाना और अनादर) के लिये नहीं समर्थहोता ॥

२९—किन्तावत्सरसि सरोजमेतदारा-
दाहोस्विन्मुखमवभासते युवत्याः ।
संशय्य क्षणमिति निश्चिकाय कश्चि-
द्विव्वोकैर्बकसहवासिनां परोक्षैः ॥

३०—शृंगाणि द्रुतकनकोज्ज्वलानि गन्धाः
कौसुम्भं पृथुकुचकुम्भसंगि वासः ।
मार्द्वीकं प्रियतमसन्निधानमासन्
नारीणामिति जलकेलिसाधनानि ॥

३१—उत्तुंगादनिलचलांशुकास्तटान्ता-
च्चेतोभिः सह भयदर्शिनां प्रियाणाम् ।
श्रोणीभिर्गुरुभिरतूर्णमुत्पतन्त्य-
स्तोयेषु द्रुततरमंगना निपेतुः ॥

३२—मुग्धत्वादविदितकैतवप्रयोगा
गच्छन्त्यः सपदि पराजयं तरुण्यः ।
ताः कान्तैः सह करपुष्करेरिताम्बु-
व्यात्युक्षीमभिसरणग्लहामदीव्यन् ॥

३३—योग्यस्य त्रिनयनलोचनानलार्चि-
र्निर्दग्धस्मरपृतनाधिराजलक्ष्मयाः ।
कान्तायाः करकलशोद्यतैः पयोभि-
र्वक्त्रेन्दोरकृत महाभिषेकमेकः ॥

३४—सिञ्चन्त्याः कथमपि बाहुमुन्नमय्य
प्रेयांसं मनसिजदुःखदुर्बलायाः ।
सौवर्णं वलयमवागलत्कराग्रा-
ल्लावण्यश्रिय इव शेषमंगनायाः ॥

२९--तडागमें दूरसे यह कमलहै अथवा स्त्रीका मुख शोभित है इसप्रकार क्षणभर संशययुक्त होकर किसीने कमलोंके अनुभवसे रहित विलासोंके द्वारा निश्चय किया ॥

३०--द्रवीभूत सुवर्ण से लिप्त क्रीडासंबंधी जलकेयंत्र सुगन्धित द्रव्य विशाल कुंभरूपी कुचोंके संगवाला कुसुमसे रंगाहुआ वस्त्र मुनक्काकी मद्य और अत्यन्त प्रियोंकी निकटता यह स्त्रियोंकी जलक्रीड़ाके साधन थे ॥

३१--पवनसे चंचल वस्त्रवाली स्त्रियां ऊंचे किनारेसेभयके विचार करनेवाले प्रियोंके चित्तों के साथ गुरुतायुक्त नितम्बों के द्वारा धीरेसे उछलती हुई शीघ्र जलमें गिरीं ॥

३२--अज्ञानसे कपटके प्रयोगोंको नहीं जाननेवाली शीघ्रपराजय को प्राप्त स्त्रियोंने प्रियोंके साथ अपनेआप गमनरूपी दाव वाले हाथरूपी कमलोंसे प्रेरणा कियेगये जलको परस्पर फेंकनेसे क्रीड़ाकी ॥

३३--शिव जी के नेत्रके अग्नि की ज्वालासे भस्म हुए कामकी सेनाके राज्यरूपी लक्ष्मीके योग्य स्त्रीके मुखरूपी चन्द्रमा का हाथकी अंजली रूपी कलश से निकले हुए जलों से महाअभिषेक किसी ने किया ॥

३४--कामके दुःखसे दुर्बल किसी प्रकार बाहुको उठाकर प्रियको सींचतीहुई स्त्रीके हाथके अग्रभागसे सुवर्णमय कंकण कान्तिकी सम्पत्तिके शेषके समान गिरा ॥

३५--स्निह्यन्ती दृशमपरा निधाय पूर्ण-
म्मूर्त्तेन प्रणयरसेन वारिणेव।
कन्दर्पप्रवणमनाः सखीसिसिक्षा-
लक्ष्येण प्रतियुवमञ्जलिञ्चकार॥

३६--आनन्दं दधति मुखे करोदकेन
श्यामाया दयिततमेन सिञ्यमाने।
ईर्ष्यन्त्या वदनमसिक्तमप्यनल्प-
स्वेदाम्बुस्नपितमजायतेतरस्याः॥

३७--उद्वीक्ष्य प्रियकरकुड्मलापविद्धै-
र्वक्षोजद्वयमभिषिक्तमन्यनार्य्याः।
अम्भोभिर्मुहुरसिचद् वधूरमर्षा-
दात्मीयं पृथुतरनेत्रयुग्ममुक्तैः॥

३८--कुर्वद्भिर्मुखरुचिमुज्ज्वलामजस्रं
यैस्तोयैरसिचत वल्लभां विलासी।
तैरेव प्रतियुवतेरकारि दूरात्
कालुष्यं शशधरदीधितिच्छटाच्छैः॥

३९--रागान्धीकृतनयनेन नामधेय-
व्यत्यासादभिमुखमीरितः प्रियेण।
मानिन्या वपुषि पतन्निसर्गमन्दो
भिन्दानो हृदयमसाहि नोदवज्रः॥

४०--प्रेम्णोरः प्रणयिनि सिञ्चति प्रियायाः
सन्तापं नवजलविप्रुषो गृहीत्वा।
उद्भूताः कठिनकुचस्थलाभिघाता-
दासन्नां भृशमपरांगनामधाक्षुः॥

३५—कामदेवके वशीभूत चित्तवाली दृष्टिलगाकर स्नेह युक्तहोती हुई अन्य स्त्रीने सखीके सींचनेकी इच्छाके बहानेसे युवा पुरुषके प्रति मूर्त्तिमानमानों प्रणय रसके समान जलसे अंजली भरी ॥

३६--आनन्दको प्राप्त मध्य युवावस्था वाली स्त्रीके मुखके अत्यन्त प्रियसे हाथके जलके द्वारा सींचनेपर ईर्षा युक्त अन्य स्त्रीका मुख बहुत स्वेदके जलसे सिंचगया ॥

३७--प्रियके कररूपी पुटोंसे फेंकेगये जलोंसे सिंचेहुए अन्य स्त्रीके कुचोंके युगको देखकर नायकाने असहनसे अपने दोनों स्तनोंको बड़े नेत्रोंसे निकलेहुएजलोंसे वारंवार सींचा ॥

३८--मुखकी कान्तिको उज्ज्वलकरनेवाले जिन जलोंसे विलासकरने वालेने प्रियाको निरन्तर सींचाथा चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेत उन्हीं जलोंसे दूरसे सपत्नी की मलिनता की ॥

३९--रागसे नेत्रोंके अन्ध करनेवाले प्रियसे नामके विपर्य्यय पूर्व्वक सन्मुख फेंकेगये शरीर में गिरते भये स्वभावसे जड़ हृदयको विदीर्ण करतेहुएवज्र तुल्य जलको मानयुक्त नायकाने नहीं सहा ॥

४०--प्रियके प्रेमपूर्व्वक प्रियाके हृदयको खेंचने पर कठोर कुचरूपी स्थलोंके आघातसे उछलेहुए नवीन जलके कणों ने उस स्त्री के सन्तापको लेकर समीप में स्थित अन्यस्त्री सपत्नीको अत्यन्त संतापयुक्त किया ॥

४१--संक्रान्तं प्रियतमवक्षसोऽङ्गरागं
साध्वस्याः सरसिहरिष्यतेऽधुनाऽम्भः ।
तुष्टैवं सपदि हृतेऽपि तत्र तेपे
कस्याश्चित् स्फुटनखलक्ष्मणः सपत्न्या ॥

४२--हूतायाः प्रतिसखि कामिनान्यनाम्ना
ह्रीमत्याः सरसि गलन्मुखेन्दुकान्तेः ।
अन्तर्द्धिद्रुतमिव कर्त्तुमश्रुवर्षै-
र्भूमानं गमयितुमीषिरे पयांसि ॥
४३--सिक्तायाः क्षणमभिषिच्य पूर्वमन्या-
मन्यस्याः प्रणयवता वताबलायाः ।
कालिम्ना समधित मन्युरेव वक्त्रं
प्रापाक्ष्णोर्गलदपशब्दमञ्जनाम्भः ॥
४४--उद्बोढुं कनकविभूषणान्यशक्तः
सध्रीचा वलयितपद्मनालसूत्रः ।
आरूढप्रतिवनिताकटाक्षभारः
साधीयो गुरुरभवद् भुजस्तरुण्याः ॥
४५--आबद्धप्रचुरपरार्ध्यकिंकिणीको
रामाणामनवरतोदगाहभाजाम् ।
नारावं व्यतनुत मेखलाकलापः
कस्मिन् वा सजलगुणेगिरांपटुत्वम् ॥

४१--अत्यन्त प्रियके हृदयसे लगाहुआ इसस्त्रीका अंगराग इसी समय तड़ाग में जल अच्छे प्रकारसे नष्टकरदेगा इसप्रकार से संतुष्ट होकर शीघ्र अंगरागके नष्टहोनेपर भी प्रकट नख के चिह्नवाली किसी नायकाके नखक्षतमें सपत्नी संताप को प्राप्त हुई ॥

४२--सखीके समीप प्रियसे सपत्नीके नामसे बुलाई गई नष्ट हुई मुखरूपी चन्द्रमाकी कांतिवाली लज्जायुक्त किसी नायकाके तड़ागमें शीघ्र अन्तर्द्धान करनेको अश्रुकीवृष्टियों ने जलोंको बढ़ानेके लिये मानों इच्छाकी ॥

४३--प्रियसे क्षणमात्र पहलेसपत्नीको सींचकर पीछे सींची गई अन्य स्त्रीके मुखको कोपने मलिनतासे युक्तकिया टपकता हुआ नेत्रसंबंधी अंजनका जल अपवाद (कलंक) को प्राप्तहुआ ॥

४४--सुवर्ण के विभूषणोंके धारण करनेको असमर्थ प्रियसे कमलके सूत्रोंके द्वारा कंकणयुक्त कीगई चढ़ेहुए सपत्नीके कटाक्षरूपी भारवाली तरुण स्त्रीकी भुजा अत्यन्तगुरुतायुक्तहुई ॥

४५--निरन्तर जलकी मभानेवाली स्त्रियोंके पुहीहुई बहुत और श्रेष्ठकिंकिणीवाले मेखलाओंके समूहने ध्वनि नहीं की क्योंकि जलयुक्त सूत्रवाले और जड़ किसपुरुष और मेखलाओं के समूहमें वचनोंकी और ध्वनियोंकी सामर्थ्य होती है ॥

४६—पर्य्यच्छे सरसि हृतेंऽशुके पयोभि-
र्लोलाक्षे सुरतगुरावपत्रपिष्णोः ।
सुश्रोण्या दलवसनेन वीचिहस्त-
न्यस्तेन द्रुतमकृताब्जिनी सखीत्वम् ॥

४७—नारीभिर्गुरुजघनस्थलाहतानां-
मास्यश्रीविजितविकाशिवारिजानाम् ।
लोलत्वादपहरतां तदङ्गरागं-
संजज्ञे न कलुष आशयो जलानाम् ॥

४८—सौगन्ध्यं दधदपि काममंगनानां
दूरत्वादृगतमहमाननोपमानम् ।
नेदीयो जितमिति लज्जयेव तासा-
मालोले पयसि महोत्पलं ममज्ज ॥

४९—प्रभ्रष्टैः सरभसमम्भसोऽवगाह-
क्रीडाभिर्विदलितयूथिकापिशंगैः ।
आकल्पैः सरसि हिरण्मयैर्वधूना-
मौर्वाग्निद्युतिशकलैरिव व्यराजि ॥

५०—आस्माकी युवतिदृशामसौ तनोति
छायैव श्रियमनपायिनीं किमेभिः ।
मत्वैवं स्वगुणपिधानसाभ्यसूयैः
पानीयैरिति विदधाविरेऽञ्जनानि ॥

४६—चारों ओरसे निर्मल तड़ागमें जलों से वस्त्रके हरलेने पर और प्रियके तृष्णायुक्त नेत्रवाले होनेपर लज्जारहित सुन्दर नितम्बवाली स्त्रीके कमलिनीने शीघ्र तरंगरूपी हाथ में रक्खेहुए पल्लवरूपी वस्त्रसे सखीपनेको किया ॥

४७—स्त्रियोंसे गुरुतायुक्त जंघाओंसे ताड़ित मुखकी शोभाओंसे जीतेगये प्रफुल्लित कमलवाले लोलत्व (चंचलता और तृष्णायुक्तपन) से उन स्त्रियोंके अंगरागको हरतेहुए और धोतेहुए जलों (पानी और जड़ों) का आशय (हृदय और तड़ाग) कलुष (अप्रसन्न और क्षोभयुक्त) हुआ ॥

४८—अत्यन्त सुगन्धिको धारण करने वालाभी मैं दूरस्थितहोने से स्त्रियोंके मुखकी तुल्यताको प्राप्तहुआथा उनके निकट स्थित होकर जीतागया मानों इस लज्जासे चंचल कमल जलमें डूब गया ॥

४९—शीघ्रतापूर्वक जलके मझाने रूपी क्रीड़ासे गिरेहुए प्रफुल्लित पीलीजुहीके समान पीतवर्णवाले सुवर्णमय स्त्रियों के आभूषण बड़वानलकी ज्वालाके खण्डोंके समान शोभितहुए ॥

५०—हमारी यह विमलताही स्त्रियोंकी विघ्नरहित शोभा को विस्तार करती है इन अंजनोंसे क्या यह मानकर अपने गुणके छिपानेसे ईर्षायुक्त जलोंनेइसप्रकार अंजनधोडाले॥

५१—निर्धौते सति हरिचन्दने जलौघै-
रापाण्डोर्गतपरभागयांगनायाः ।
अह्नाय स्तनकलशद्वयादुपेये
विच्छेदः सहृदययेव हारयष्ट्या ॥

५२—अन्यूनं गुणममृतस्य धारयन्ती
संफुल्लस्फुरितसरोरुहावतंसा ।
प्रेयोभिः सह सरसी निषेव्यमाणा
रक्तत्वं व्यधित वधूदृशां सुरेव ॥

५३—स्नान्तीनां बृहदमलोदबिन्दुचित्रौ
रेजाते रुचिरदृशामुरोजकुम्भौ ।
हाराणां मणिभिरुपाश्रितौ समन्ता-
दुत्सूत्रैर्गुणवदुपघ्नकाम्ययेव ॥

५४—आरूढः पतित इति स्वसम्भवोऽपि
स्वच्छानां परिहरणीयतामुपैति ।
कर्णेभ्यश्च्युतमसितोत्पलं वधूनां
वीचीभिस्तटमनु यन्निरासुरापः ॥

५५—दन्तानामधरमयावकं पदानि
प्रत्यग्रास्तनुमविलेपनां नखाङ्काः ।
आनिन्युः श्रियमधितोयमंगनानां
शोभायै विपदि सदाश्रिता भवन्ति ॥

५१—रक्तचन्दनके जलोंसे धोनेपर पांडुवर्ण वाले स्त्रीके कलश-रूपी दोनों स्तनों से नष्टहुए वर्णकी ऐश्वर्य्यवाली हाररूपी यष्टिका मानों हृदययुक्त शीघ्र टूटगई ॥

५२—संपूर्ण अमृतके गुण और जलके गुणोंसे युक्त प्रफुल्लित कमलरूपी आभूषणों वाली प्रियोंके साथ सेवन कीगई तलाई ने मदिराके तुल्य स्त्रियोंका रक्तपन उत्पन्न किया॥

५३—स्नान करतीभई सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियोंके स्तनरूपी कुंभ सूत्रयुक्त हारोंकी मणियों से गुणयुक्त आश्रयकी इच्छा से अच्छेप्रकार मानों आश्रय लिये गये शोभित हुए ॥

५४--अपने से उत्पन्न भी उच्चस्थानमें प्राप्त और पतित हुआ निर्मलोंक. त्याज्यहोताहै जिसकारणसे स्त्रियोंके कानोंसे गिरे हुए कमलको जलोंने ल[illegible]से किनारेपर फेंकदिया ॥

५५--जलोंमें स्त्रियों के महावररहित ओष्ठको दन्तक्षतोंने और धोतेहुए शरीरको नवीन नखक्षतोंने शोभाको प्राप्तकिया क्योंकि स[illegible]और सुन्दरोंका आश्रयलेने वाले विपत्ति मेंभी शोभाके लिये होते हैं ॥

५६--कस्याश्चिन्मुखमनु धौतपत्रलेखं
व्यातेने सलिलभराऽवलम्बिनीभिः ।
किञ्जल्कव्यतिकरपिञ्जरान्तराभि-
श्चित्रश्रीरलमलकाग्रवल्लरीभिः ॥

५७--वक्षोभ्यो घनमनुलेपनं यदूना-
मुत्तंसानहरत वारि मूर्द्धजेभ्यः ।
नेत्राणाम्मदरुचिरक्षतैव तस्थौ
चक्षुष्यः खलु महताम्परैरलंघ्यः ॥
५८--यो बाह्यो न खलु जलैर्निरासि रागो
यश्चित्ते स तु तदवस्थ एव तेषाम् ।
धीराणां व्रजति हि सर्व एव नान्तः
पातित्वादभिभवनीयताम्परस्य ॥
५९--फेनानामुरसिरुहेषु हारलीला
चेलश्रीर्जघनतलेषु शैवलानाम् ।
गण्डेषु स्फुटरचनाब्जपत्रवल्ली
पर्य्याप्तं पयसि विभूषणं वधूनाम् ॥
६०--भ्रश्यद्भिर्जलमभि भूषणैर्वधूना-
मंगेभ्यो गुरुभिरमज्जि लज्जयेव ।
निर्माल्यैरथ ननृतेऽवधीरिताना-
मभ्युच्चैर्भवति लघीयसां हि धाष्टर्यम् ॥

५६--धुईहुई पत्रलेखा (कपोलादि में केसरादिक से चित्र बनाना) वाले मुखमें जलके भारसे लम्बायमान केसरके मिलनेसे भरेहुए मध्यभाग वाली अलक (जुल्फ) रूपी मंजरियोंसे पत्रलेखा (कपोल पर केसरादिका चिह्न लिखना) की शोभा अत्यन्त विस्तार की गई ॥

५७--जलने यदुवंशियोंके हृदय से घना अंगराग भरलिया केशों से शिरके आभूषणोंको हरलिया नेत्रों के मदका राग नहीं नष्टहुआहीस्थितरहा क्योंकि महात्माओंका चक्षुष्य (प्रिय और नेत्रसे उत्पन्नहुआ)उल्लंघन करनेके योग्य नहींहोता॥

५८--यदुवंशियोंका बाहरका राग जलोंसे नाश कियागया परन्तु चित्तमें जो राग (था) वह उसीप्रकार स्थित रहा क्योंकि संपूर्ण भी महात्माओंके अन्तःकरणमें प्राप्तहोनेहीसे अन्य के अनादरको नहीं प्राप्त होताहै ॥

५९--स्त्रियोंके जलमें विभूषण संपूर्ण होगये फेनोंकी स्तनों में हारकी शोभाहुई और शिवारकी जंघाओंमें वस्त्रकी शोभा हुई कपोलों में शिवाररूपी कमलपत्रों की लताकी शोभाहुई ॥

६०--स्त्रियों के शरीरोंसे गिरेहुए भारी आभूषण मानों लज्जासे जलमें डूबगये इसके उपरान्तही मालायें जलमें नृत्यकरनेलगीं क्योंकि तिरस्कार किये गये भी तुच्छों की धृष्टता अधिक होती है ॥

६१—आमृष्टास्तिलकरुचः स्त्रजो निरस्ता
नीरक्तं वसनमपाकृतोऽङ्गरागः।
कामः स्त्रीरनुशयवानिव स्वपक्ष
व्याघातादिति सुतराञ्चकार चारूः॥

६२--शीतार्त्तिस्खलवदुपेयुषेवनीरै-
रासेकाच्छिशिरसमीरकम्पितेन।
रामाणामभिनवयौवनोष्मभाजो-
राश्लेषि स्तनतटयोर्नवांशुकेन॥

६३--श्च्योतद्भिः समधिकमात्तमंगसंगा-
ल्लावण्यन्तनुमदिवाम्बु वाससोऽन्तैः।
उत्तेरे तरलतरंगरंगलीला
निष्णातैरथ सरसः प्रियासमूहैः॥

६४--दिव्यानामपि कृतविस्मयां पुरस्ता-
दम्भस्तः स्फुरदरविन्दचारुहस्ताम्।
उद्वीक्ष्य श्रियमिव काञ्चिदुत्तरन्ती-
मस्मार्षीञ्जलनिधिमन्थनस्य शौरिः।

६५--श्लक्ष्णं यत्परिहितमेतयोः किलान्त-
र्द्धीनार्थन्तदुदकसेकसक्तमूर्वोः।
नारीणां विमलतरौ समुल्लसन्त्या
भासान्तर्दधतुरुरू दुकूलमेव॥

६१–तिलककी शोभा धोडालीगई मालायें उतारडालीगईं वस्त्र रक्ततारहित होगया इसप्रकार अपनेपक्षके नाशसे संताप-युक्तकामदेवने स्त्रियोंको अत्यन्त सुन्दर करदिया ॥

६२–जलोंके द्वारा सींचनेसे शीतकी व्यथाको मानों अत्यन्त प्राप्त शीतल वायुसे कँपायेहुए नवीन वस्त्रने नवीन यौवन की ऊष्मा वाले स्त्रियोंके स्तनोंका आलिंगन किया ॥

६३–इसके उपरान्त शरीर के संगसे प्राप्त अधिक मूर्त्तिको धारण कियेहुए मानों अनुरागको टपकातेहुए चंचल तरंग-रूपी नृत्यके स्थानोंपर लीलापूर्वक नृत्य करने में प्रवीण वस्त्रके अंचलों से उपलक्षित (प्रकटहुए) स्त्रियोंके समूह तड़ागों से निकले ॥

६४–श्रीकृष्णजीने स्वर्गके लोगोंको भी आश्चर्य्य उत्पन्न कराने वाली दीप्तिमान् कमलोंसे सुन्दर हाथवाली सन्मुख जल से निकलतीहुई किसी स्त्रीको मथेहुए समुद्रसे शीघ्रप्रकट हुई लक्ष्मीकेसमान देखकर समुद्रकेमथनेका स्मरणकिया

६५–इन जंघाओंके आच्छादनके लिये चिकना जो दुकूलवस्त्र आच्छादन कियेगये जलके सींचनेसे चिपकेहुए उस दुकूल वस्त्रको अत्यन्त निर्मल स्त्रियोंकी स्थूल जंघाओंने दीप्तिमान् कान्ति से आच्छादन किया ॥

६६--वासांसि न्यवसत यानि योषितस्ताः
शुभ्राभ्रद्युतिभिरहासि तैर्मुदेव ।
अत्याक्षुः स्नपनगलज्जलानि यानि
स्थूलाश्रुस्रुतिभिररोदि तैः शुचेव ॥
६७--आर्द्रत्वादतिशयिनीमुपेयिवद्भिः
संसक्तिं भृशमपि भूरिशोऽवधूतैः ।
अंगेभ्यः कथमपि वामलोचनानां
विश्लेषो बत नवरक्तकैः प्रपेदे ॥
६८--प्रत्यंसं विलुलितमूर्द्धजा चिराय
स्नानार्द्रं वपुरुदवापयत् किलैका ।
नाजानादभिमतमन्तिकेऽभिवीक्ष्य
स्वेदाम्बुद्रवमभवत्तरां पुनस्तत् ॥
६९--सीमन्तं निजमनुबध्नती कराभ्या-
मालक्ष्यस्तनतटबाहुमूलभागा ।
भर्त्रान्या मुहुरभिलष्यता निदध्ये
नैवाहो विरमति कौतुकं प्रियेभ्यः ॥
७०--स्वच्छाम्भःस्नपनविधौतमंगमोष्ठ-
स्ताम्बूलद्युतिविशदो विलासिनीनाम् ।
वासश्च प्रतनु विविक्तमस्त्वितीया-
नाकल्पो यदि कुसुमेषुणा न शून्यः ॥

६६—उन स्त्रियोंने जिन वस्त्रोंको धारण किया श्वेत मेघों के तुल्य कान्तिवाले वह वस्त्र मानों आनन्दसे हँसे स्नान से टपकतेहुए जलवाले जिन वस्त्रोंका त्यागकिया वह शोच से बड़े अश्रुओं के प्रवाहसे मानों रोये ॥

६७—आर्द्रपनेसे अत्यन्त चिपकेहुए और परिचयको प्राप्त वारंवार निकालेगये और छुटायेगये भी नवीन रंगेहुए वस्त्र और नवीन अनुरागवाले पुरुष खेदका विषयहै कि स्त्रियों के अंगोंसे किसीप्रकार वियोगको प्राप्तहुए ॥

६८--एकस्त्रीने कन्धों में बिखरेहुए केशवाली होकर स्नान से आर्द्र शरीरको बहुतकालतक सुखाया फिर वह शरीर समीपमें प्रियको देखकर स्वेदसम्बन्धी जलके बहनेसे आर्द्र होगया यह नहीं जाना ॥

६९--अपनी चोटीको हाथोंसे बाँधतीहुई अच्छेप्रकारसे दिखाई देनेके योग्य स्तन और भुजाओंके मूलवाली अभिलाषयुक्त पतिसे वारंवार ध्यानकीगई आश्चर्य्य का विषयहै कि अभिलाष विषयोंसे नहीं निवृत्त होता है ॥

७०-- स्वच्छ जलकेद्वारा स्नानसे धोयाहुआ शरीर तांबूलके राग से निर्मल ओष्ठ सूक्ष्म वस्त्र और एकान्तस्थान इतनाही स्त्रियोंका आकल्प (पोशाक) हो यदि काम से शून्य न होय (तो) ॥

७१–इति धौतपुरन्ध्रिमत्सरान् सरसि मज्जनेन
श्रियमाप्तवतोऽतिशायिनीमपमलांगभासः ।
अवलोक्य तदैव यादवानपरवारिराशेः
शिशिरेतररोचिषाप्यपान्ततिषु मङ्क्तुमीषे ॥

इतिश्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये जलविहारवर्णनं
नामाष्टमः सर्गः ८ ॥

७१--इसप्रकार तड़ागमें स्नान करनेसे मानयुक्त स्त्रियोंके मान के नाश करनेवाले अत्यन्त शोभाको प्राप्त निर्मल शरीरकी कान्तिवाले यदुवंशियोंको देखकर उसी समय सूर्य्यने भी पश्चिम के समुद्र सम्बन्धी प्रवाहों में प्रवेश करने की इच्छा की ॥

इतिश्रीमाघकृतमहाकाव्यशिशुपालबधस्य भाषानुवादे जलविहारवर्णनं नामाष्टमः सर्गः ८ ॥

नवमः सर्गः ॥

सायंकालवर्णनम् ॥

१—अभितापसम्पदमथोष्णरुचि-
निजतेजसामसहमान इव ।
पयसि प्रपित्सुरपराम्बुनिधे-
रधिरोढुमस्तगिरिमभ्यपतत् ॥

२—गतया पुरः प्रतिगवाक्षमुखं
दधती रतेन भृशमुत्सुकताम् ।
मुहुरन्तरालभुवमस्तगिरेः
सवितुश्च योषिदमिमीत दृशा ॥

३—विरलातपच्छविरनुष्णवपुः
परितोविपाण्डु दधदभ्रशिरः ।
अभवद्गतः परिणतिं शिथिलः
परिमन्दसूर्य्यनयनो दिवसः ॥

४—अपराह्णशीतलतरेण शनै-
रनिलेन लोलितलतांगुलये ।
निलयाय शाखिन इवाह्वयते
ददुराकुलाः खगकुलानि गिरः ॥

नवां सर्ग ॥

सायंकाल का वर्णन ॥

१–इसके उपरान्त सूर्य्य अपने तेजकी सम्पत्तियोंको मानों न सहकर पश्चिमके समुद्रके जलमें गिरनेकी इच्छा करते भये अस्ताचल पर चढ़नेको चले ॥

२–रतिके लिये अत्यन्त उत्सुकताको धारण करतीहुई स्त्रीने सन्मुख झरोखेके द्वारमें प्राप्त दृष्टिसे अस्ताचल और सूर्य्य के मध्यके आकाशको वारंवार मापा ॥

३–परिणति (लौटना और वृद्धावस्था) को प्राप्त विरलातपच्छवि (स्वल्प धूपकी छविवाला और क्षीण प्रभावाला) अनुष्णवपु (नहीं उष्ण शरीरवाला) और श्लेष्मादिकों के होनेसे कुछ उष्ण देहवाला) सब ओर से पाण्डु वर्ण (पीतश्वेतमिश्रित) वाले मेघरूपी शिरको धारण करता हुआ मन्द सूर्य्य रूपी नेत्रवाला दिन शिथिल होगया ॥

४–दिनके अन्तमें अत्यन्त शीतल पनसे चंचलता रूपी अंगुलीवाले गृहकेलिये मानों बुलायरहे वृक्षको पक्षियोंके समूहोंने आकुल वाणी (प्रत्युत्तर) कहीं ॥

५—उपसन्ध्यमास्त तनु सानुमतः
शिखरेषु तत्क्षणमशीतरुचः ।
करजालमस्तसमयेऽपि सता-
मुचितं खलूच्चतरमेव पदम् ॥

६—प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ
विफलत्वमेति बहुसाधनता ।
अवलम्बनाय दिनभर्त्तुरभू-
न्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ॥

७--नवकुंकुमारुणपयोधरया
स्वकरावसक्तरुचिराम्बरया ।
अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दिशा
भृशमन्वरज्यदतुषारकरः ॥

८--गतवत्यराजत जपाकुसुम-
स्तवकद्युतौ दिनकरेऽवनतिम् ।
बहलानुरागकुरुविन्ददल-
प्रतिबद्धमध्यमिव दिग्वलयम् ॥

९--द्रुतशातकुम्भनिभमंशुमतो
वपुरर्द्धमग्नवपुषः पयसि ।
रुरुचे विरिञ्चिनखभिन्नबृह-
ज्जगदण्डकैकतरखण्डमिव ॥

५—सन्ध्याके समीप सूर्य्यकी किरणोंका समूह उस समय प
र्व्वतके शिखरोंपर स्थितहुआ क्योंकि सज्जनोंको अस्तके
समयमें भी अत्यन्त उच्च स्थान उचित है ॥

६—दैव के प्रतिकूल होनेपर अनेकप्रकारके साधनभी विफल
ताको प्राप्त होते हैं क्योंकि गिरतेहुए सूर्य्य के सहस्र भी
कर (किरण और हाथ) सहारेके लिये न हुए ॥

७—सूर्य्य नवीन कुंकुमके तुल्य अरुण मेघवाली और नवीन
कुंकुमसे अरुण स्तनवाली अपनी किरणोंसे सुन्दरआका
श आच्छादन करनेवाली अपने हाथमें लगेहुए सुन्दरवस्
वाली पश्चिम दिशाके साथ अति शक्ति (अत्यन्त निकट
ता और अत्यन्त आशक्तता)को प्राप्तहोकर अत्यन्त अरुण
वर्ण और अनुरागयुक्त हुए ॥

८—गुड़हरके पुष्पके गुच्छेके समान कान्तिवाले सूर्य्यके अस्त
होनेपर दिशाओंका बलय (मण्डल और कंकण)घनेराग
वाले पन्नेकेखण्डोंसे जड़ेहुएमध्यवाला मानोंशोभितहुआ

९—तपायेहुए सुवर्णके तुल्य समुद्रमें आधे डूबे हुए शरीर वाले
सूर्य्यका मण्डल ब्रह्माजीके नखसे कटेहुए बड़े ब्रह्माण्डके
एकखण्डके तुल्य शोभित हुआ ॥

१०--अनुरागवन्तमपि लोचनयो-
र्दधतं वपुः सुखमतापकरम् ।
निरकाशयद्रविमपेतवसुं
वियदालयादपरदिग्गणिका ॥

११--अभितिग्मरश्मि चिरमाविरसा-
दवधानखिन्नमनिमेषतया ।
विगलन्मधुव्रतकुलाश्रुजलं
न्यमिमीलदब्जनयनं नलिनी ॥

१२--अभिभाव्यतारकमदृष्टहिम-
द्युतिबिम्बमस्तमितभानु नभः ।
अवसन्नतापमतमिस्रमभा-
दपदोपतैव विगुणस्य गुणः ॥

१३--रुचिधाम्नि भर्त्तरि भृशं विमलाः
परलोकमभ्युपगते विविशुः ।
ज्वलनं त्विषः कथमिवेतरथा
सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः ॥

१४--विहिताञ्जलिर्जनतया दधती
विकसत्कुसुम्भकुसुमारुणताम् ।
चिरमुज्झतापि तनुरौज्झदसौ
न पितृप्रसूः प्रकृतिमात्मभुवः ॥

१५--अथ सान्द्रसान्ध्यकिरणारुणितं
हरिहेतिहूति मिथुनं पततोः ।
पृथगुत्पपात विरहार्त्तिदल-
द्धृदयसुतासृगनुलिप्तमिव ॥

१०--पश्चिमदिशारूपी वेश्या ने अनुराग (रक्तवर्ण और अभि-लाष) वालेभी नेत्रोंको सुखकेदेनेवाले शरीरको धारण करतेहुए भी नहीं सन्तापके करनेवाले नष्टहुईवसु (किरण और द्रव्य)वाले सूर्य्यको आकाशरूपीगृहसे निकालदिया॥

११--कमलिनी ने सूर्य के सन्मुख बहुत काल तक अस्तपर्यन्त पलक के न लगाने से सावधानी से आलस्ययुक्त निकलते हुए भ्रमरों के समूहरूपी अश्रुओं के जलवाले कमलरूपी नेत्र को मूंद लिया ॥

१२--नहीं लक्षित नक्षत्रवाला नहीं दिखाई पड़ते चन्द्रमा के बिम्बवाला अस्त हुए सूर्यवाला सन्तापरहित अन्धकाररहित आकाश शोभित हुआ क्योंकि निर्गुण को दोष का न होनाही गुण है ॥

१३--तेज के निधि सूर्यरूपी पतिके परलोकमें जानेपर निर्मल कान्तियां अग्नि में प्रविष्ट हुईं नहीं तो अन्य जन्म में वही पति कैसे सुलभ है ॥

१४--जन्म से प्रणाम कीगई प्रफुल्लित कुसुम के पुष्पों के तुल्य अरुणता को धारण करती भई पितरों की उत्पन्न करनेवाली बहुतकाल तक त्यागभी कीगई इस ब्रह्मा की मूर्त्ति सन्ध्या ने स्वभाव को नहीं छोड़ा ॥

१५--इसके उपरान्त सन्ध्यासम्बन्धी किरणों से रक्तवर्ण किये गये विरह की वेदना से विदीर्ण हृदयसे टपके हुए रुधिर से मानों लिपेहुए चक्रवाक नाम पक्षियों के जोड़े अलग अलग होके उड़े ॥

१६--निलयः श्रियः सततमेतदिति
प्रथितं यदेव जलजन्म तया।
दिवसात्त्ययात्तदपि मुक्तमहो
चपलाजनं प्रति न चोद्यमदः॥

१७--दिवसोऽनुमित्रमगमद्विलयं
किमिहास्यते वत मयाऽवलया।
रुचिभर्त्तुरस्य विरहाधिगमा-
दिति सन्ध्ययापि सपदि व्यगमि॥

१८--पतिते पतंगमृगराजि निज-
प्रतिविम्वरोषित इवाम्वुनिधौ।
अथ नागयूथमलिनानि जग-
त्परितस्तमांसि परितस्तरिरे॥

१९--व्यसरन्नु भूधरगुहान्तरतः
पटलं वहिर्विहलपंकरुचि।
दिवसावसानपटुनस्तमसो
वहिरेत्य चाधिकमभक्त गुहाः॥

२०--किमलम्वताम्वरविलग्नमधः
किमवर्द्धतोर्ध्वमवनीतलतः।
विससार तिर्य्यगथ दिग्भ्य इति
प्रचुरीभवन्न निरधारि तमः॥
युग्मम्।

कमल यही सदैव लक्ष्मी का स्थान है यह प्रसिद्ध था
को भी लक्ष्मी ने सायंकाल के समय छोड़दिया आ-
ों का विषय है अथवा चपला (चंचल स्त्री और लक्ष्मी)
ं के प्रति यह आक्षेप करने के योग्य नहीं है ॥

मित्र (सुहृद और सूर्य) के पीछे नाशको प्राप्त हुआ
में तेज के निधि और प्रेम के स्थानपति इन सूर्य के
द को प्राप्त होकर इसलोक में किसलिये स्थितहोतीहूं
प्रकार मानों विचार कर सन्ध्या भी शीघ्र नष्ट होगई ॥

रूपी सिंह के अपने प्रतिविम्ब से मानों क्रुद्धसमुद्र में
ने पर इसके उपरान्त हाथियों के समूह के समान म-
ा अन्धकारों ने संसार को सब ओर से आच्छादन
लेया ॥

पंक के समान छविवाला दिनके अन्त में समर्थ अन्ध-
का समूह पर्व्वत की गुहाओं के मध्य से आकर बाहर
गया और बाहर से आकर गुहाओं की अधिक सेवा
लगा ॥

ाहुआ अन्धकार क्या आकाश में स्थित होकर नीचेको
ायमान हुआ है अथवा पृथ्वी से ऊपर की ओर बढ़ा
थवा दिशाओं से तिरछा फैला है यह नहीं निश्चय
ागया ॥

२१—स्थगिताम्बरक्षितितले परित-
स्तिमिरे जनस्य दृशमन्धयति ।
दधिरे रसाञ्जनमपूर्वमतः
प्रियवेश्मवर्त्म सुदृशो ददृशुः ॥

२२—अवधार्य्य कार्य्यगुरुतामभव-
न्न भयाय सान्द्रतमसन्तमसम् ।
सुतनोः स्तनौ च दयितोपगमे
तनुरोमराजिपथवेपथवे ॥

२३—ददृशेऽपि भास्कररुचाऽह्नि न यः
न तमीन्तमोभिरभिगम्य तताम् ।
द्युतिमग्रहीद् ग्रहगणो लघवः
प्रकटीभवन्ति मलिनाश्रयतः ॥

२४—अनुलेपनानि कुसुमान्यबलाः
कृतमन्यवः पतिषु दीपशिखाः ।
समयेन तेन चिरसुप्तमनो
भवबोधनं सममबोधिषत ॥

२५—वसुधान्तनिःसृतमिवाहिपतेः
पटलं फणामणिसहस्ररुचाम् ।
स्फुरदंशुजालमथ शीतरुचः
ककुभं समस्कुरुत माघवनीम् ॥

२६—विशदप्रभापरिगतं विबभा-
वुदयाचलव्यवहितेन्दुवपुः ।
मुखमप्रकाशदशनं शनकैः
सविलासहासमिव शक्रदिशः ॥

२१--आकाश और पृथ्वी के छिपानेवाले अन्धकार के सब ओर से दृष्टि को अन्धकरने पर स्त्रियोंने अपूर्व रसाञ्जन (राग-रूपी अंजन और सिद्धाञ्जन) धारण किया इसी कारण से प्रिय के घर का मार्ग देखा ॥

२२—अत्यन्तघना व्यापक अन्धकार उत्तम शरीरवाली स्त्री के पतिके समीप जानेमें कार्य्यकी गुरुताको विचारकर भयके लिये नहीं हुआ और स्तन दुर्बल रोमों के पंक्तिके मार्ग (कटि) के कंपाने के लिये नहीं हुए ॥

२३--जो ग्रहोंका समूह दिनमें सूर्य्यकी कान्तिसे नहीं देखा गया था उसने (ग्रहोंके समूहने) रात्रिको प्राप्तहोकर कान्ति का ग्रहण किया क्योंकि तुच्छलोग निकृष्टका आश्रय लेने से प्रकट होते हैं ॥

२४--उस समयने अनुलेपन (कुंकुम चन्दनादिक) पुष्प पतियों पर कोपकरनेवाली स्त्रियां और दीपोंकी शिखा यह सम्पूर्ण पदार्थ बहुतकालसे सोये हुए कामके उद्दीपनपूर्व्वक एक संग बोधित किये ॥

२५--इसके उपरान्त पृथ्वीके अन्तसे निकलेहुए मानों शेषजी के फणोंकी सहस्त्रों मणियोंकी कान्तियोंके झुंड चन्द्रमा की देदीप्यमान किरणों के समूहने इन्द्रकी दिशा (पूर्वदिशा) को आभूषित किया ॥

२६--निर्मल कान्ति से व्याप्त उदयाचलसे छिपेहुए चन्द्रमंडल वाला पूर्वदिशाका मुख नहीं प्रकटहुए दाँतवाला विलास-पूर्व्वक हास्ययुक्त मानों धीरे धीरे शोभित हुआ ॥

२७–कलया तुषारकिरणस्य पुरः
परिमन्दभिन्नतिमिरौघजटम् ।
क्षणमभ्यपद्यत जनैर्न मृषा
गगनं गणाधिपतिमूर्त्तिरिति ॥

२८–नवचन्द्रिकाकुसुमकीर्णतमः
कवरीभृतो मलयजार्द्रमिव ।
ददृशे ललाटतटहारि हरे-
र्हरितो मुखे तुहिनरश्मिदलम् ॥

२९–प्रथमं कलाऽभवदथार्द्धमथो
हिमदीधितिर्महदभूदुदितः ।
दधति ध्रुवं क्रमश एव न तु
द्युतिशालिनोऽपि सहसोपचयम् ॥

३०–उदमज्जि कैटभजितः शयना-
दपनिद्रपाण्डुरसरोजरुचा ।
प्रथमप्रबुद्धनदराजसुता-
वदनेन्दुनेव तुहिनद्युतिना ॥

३१–अथ लक्ष्मणाऽनुगतकान्तवपु-
र्जलधिं विलंघ्य शशिदाशरथिः ।
परिवारितः परित ऋक्षगणै-
स्तिमिरौघराक्षसकुलं बिभिदे ॥

२७- पूर्व दिशामें और अग्रभागमें चन्द्रमाकी किरणों से उपलक्षित (जानागया) कुछ भिन्नहुई अन्धकाररूपी जटावाले आकाशको सत्य शिवजीकी मूर्त्ति है यह जनोंने क्षणभर माना ॥

२८--नवीन चन्द्रिकारूपी पुष्पों से बिखराये गये अन्धकाररूपी केशोंके समूहके धारणकरनेवाले पूर्वदिशाके मुखमें ललाट के तुल्य मनोहर चन्द्रमाका खण्ड चन्दनसे आर्द्रके समान शोभित हुआ ॥

२९--चन्द्रमा पहले कलामात्रहुआ उसके उपरान्त आधाहुआ उदय होकर बड़ाहोगया क्योंकि तेजवाले भी क्रमसेही वृद्धिको प्राप्त होते हैं एकाएकी तो नहीं प्राप्तहोते ॥

३०--प्रफुल्लित कमलके तुल्य शोभावाला चन्द्रमा पहले निकलीहुई लक्ष्मी के मानों मुखरूपी चन्द्रमा के समान श्रीकृष्णजीके शयन (समुद्र) से निकला ॥

३१--इसकेउपरान्त चिह्न और लक्ष्मणसे पश्चात् गमन किये गये सुन्दर शरीरवाले सब ओरसे ऋक्षगणों (नक्षत्रों के समूह और जाम्बवान् आदिक भालुओंके समूहों) से घिरे हुए चन्द्रमारूपी रामचन्द्रने समुद्रको उल्लंघन करके अन्धकारोंके समूहरूपी राक्षसोंके समूहों को नाश किया ॥

३२--उपजीवति स्म सततं दधतः
परिमुग्धतां वणिगिवोडुपतेः ।
घनवीथिवीथिमवतीर्णवतो
निधिरम्भसामुपचयाय कलाः ॥
३३--रजनीमवाप्य रुचमाप शशी
सपदि व्यभूषयदसावपि ताम् ।
अविलम्बितक्रममहो महता-
मितरेतरोपकृतिमच्चरितम् ॥
३४--दिवसं भृशोष्णरुचिपादहतां
रुदतीमिवानवरतालिरुतैः ।
मुहुरामृशन् मृगधरोऽग्रकरै-
रुदशिश्वसत् कुमुदिनीवनिताम् ॥
३५--प्रतिकामिनीति ददृशुश्चकिताः
स्मरजन्मघर्मपयसोपचिताम् ।
सुदृशोऽभिभर्तृ शशिरश्मिगल-
ज्जलविन्दुमिन्दुमणिदारुवधूम् ॥
३६--अमृतद्रवैर्विदधदब्जदृशा-
मपमार्गमोषधिपतिः स्म करैः ।
परितोविसर्पि परितापि भृशं
वपुषोऽवतारयति मानविषम् ॥

३२--वैश्यरूपी समुद्रने सदैव सौन्दर्य्य और मूढ़ता के धारण करनेवाले आकाशरूपी बजार में प्रविष्ट चन्द्रमा की कला (सोलहवाँभाग और मूलधनकी वृद्धि) ओं का उपचय (अपने जलकी वृद्धि और ऐश्वर्य्य) केलिये सेवन किया ॥

३३--चन्द्रमा रात्रिको प्राप्तहोकर शोभितहुआ इस चन्द्रमाने भी शीघ्र रात्रिको आभूषित किया आश्चर्य्यका विषय है कि महात्माओं का चरित्र क्रमका अवलम्बन (क्रमपूर्वक) करके परस्पर उपकार करनेवाला होताहै ॥

३४--चन्द्रमाने दिनमें सूर्य्यके पादों (किरण और चरणों) से ताड़ना कीगई निरन्तर भ्रमरके शब्दोंसे मानों रोदनकरती हुई कुमुदिनीरूपी स्त्रीको अग्रकरों (किरणोंके अग्रभाग और हस्ताग्रों) से आश्वासित (समझादिया) किया ॥

३५--स्त्रियोंने पतिके सन्मुख चन्द्रमाकी किरणों से टपकतेहुए जलके कणवाली चन्द्रमणिमय पुतलीको कामदेव से उत्पन्न स्वेदके जलसे व्याप्त सपत्नीकी भ्रान्तिसे चकित होकर देखा ॥

३६--ओषधिपति (चन्द्रमा और वैद्य) ने अमृत (अमृत और औषधविशेष) से आर्द्रकरों (किरण और हाथों) से कमलके तुल्य नेत्रवाली स्त्रियोंको शुद्धकरतेहुए सब ओर से फैलनेवाले अत्यन्त सन्ताप करनेवाले मानरूपी विषको शरीरसे उतार दिया ॥

३७--अमलात्मसु प्रतिफलन्नमित-
स्तरुणीकपोलफलकेषु मुहुः ।
विससार सान्द्रतरमिन्दुरुचा
मधिकाऽवभासितदिशां निकरः ॥

३८--उपगूढवेलमलघूर्मिभुजैः
सरितामचुक्षुभदधीशमपि ।
रजनीकरः किमिव चित्रमहो
यदुरागिणांगणमनंगलघुम् ॥

३९--भवनोदरेषु परिमन्दतया
शयितोऽलसः स्फटिकयष्टिरुचः ।
अवलम्ब्य जालकमुखोपगता-
नुदतिष्ठदिन्दुकिरणान् मदनः ॥

४०--अविभावितेषुविषयः प्रथमं
मदनोऽपि नूनमभवत्तमसा ।
उदिते दिशः प्रकटयत्यमुना
यदधर्मधाम्नि धनुराचकृषे ॥

४१--युगपद्विकाशमुदयाद्गमिते
शशिनः शिलीमुखगणोऽलभत ।
द्रुतमेत्य पुष्पधनुषो धनुषः
कुमुदेऽङ्गनामनसि चावसरम् ॥

४२--ककुभां मुखानि सहसोज्ज्वलयन्
दधदाकुलत्वमधिकं रतये ।
अदिदीपदिन्दुरपरो दहनः
कुसुमेषुमात्रिनयनप्रभवः ॥

३७--दिशाओंको अधिक प्रकाश करनेवाला चन्द्रमाकी किरणों का समूह निर्मल मूर्त्तिवाले स्त्रियों के कपोलरूपी ढालों में सब ओरसे वारंवार प्रतिविम्बित होकर अत्यन्त घना फैला ॥

३८--चन्द्रमाने बड़ी तरंगरूपी भुजाओं से आच्छादित किनारे वाले समुद्रको भी शोभित किया तो कामदेव से लघु यदु-वंशरूपी कामियोंके समूहको क्षोभित किया यहक्या आ-श्चर्य्य है ॥

३९--मन्दतासे गृहोंके मध्यमें सोयाहुआ आलस्ययुक्त कामदेव गवाक्षके द्वारों से प्राविष्ट स्फटिक मणिकी यष्टिकाओं के समान शोभावाली चन्द्रमा की किरणोंको पकड़करउठा॥

४०--कामदेव भी पहले अन्धकारसे नहीं दिखाई पड़तेहुए बाणों के लक्ष्यवाला मानों था जिस कारणसे चन्द्रमा के उदय होनेपर इस कामदेव ने धनुष खेंचा ॥

४१--कामदेवके धनुष और पुष्प से निकलेहुए बाण और भ्रमरों के समूहने चन्द्रमा के उदयसे एकसंग विकाशको प्राप्त स्त्रियोंके हृदय और कुमुदिनी में अवकाश पाया ॥

४२--दिशाओंके मुखोंको सहसा उज्ज्वलकरताहुआ रतिकेलिये अधिक उत्सुकताको उत्पन्न करताहुआ अत्रिके नेत्रसेउत्प-न्नहुआ और नहीं शिवजी के नेत्र से उत्पन्न अन्य अग्नि (चन्द्रमा) कामको दीप्त करताभया ॥

४३–इति निश्चितप्रियतमागतयः
सितदीधितावुदयवत्यवलाः ।
प्रतिकर्म कर्तुमुपचक्रमिरे
समये हि सर्वमुपकारि कृतम् ॥

४४–सममेकमेव दधतुः सुतनो-
रुरु हारभूषणमुरोजतटौ ।
घटते हि संहततया जनिता-
मिदमेव निर्विवरतां दधतोः ॥

४५–कदलीप्रकाण्डरुचिरोरुतरो
जघनस्थलीपरिसरे महति ।
रशनाकलापकगुणेन वधू-
र्मकरध्वजद्विरदमाकलयत् ॥

४६--अधरेष्वलक्तकरसः सुदृशां
विशदकपोलभुवि लोध्ररजः ।
नवमञ्जनं नयनपंकजयो-
र्विभिदे न शंखनिहितात्पयसः ॥

४७--स्फुरदुज्ज्वलाधरदलैर्विलस-
द्दशनांशुकेशरभरैः परितः ।
धृतमुग्धगण्डफलकैर्विबभु-
र्विकसद्भिरास्यकमलैः प्रमदाः ॥

४८--भजते विदेशमधिकेन जित-
स्तदनुप्रवेशमथवा कुशलः ।
मुखमिन्दुरुज्ज्वलकपोलमतः
प्रतिमाच्छलेन सुदृशामविशत् ॥

४३–इसप्रकार चन्द्रमाके उदय होनेपर स्त्रियोंने अत्यन्त प्रियों के आगमन के निश्चयवाली होकर अलंकार करने का प्रारंभ किया क्योंकि समयपर कियागया संपूर्ण कर्म उपकारक होता है ॥

४४–स्त्री के कुच उत्तम मालारूपी आभूषण को इकट्ठी धारण करतेहैं क्योंकि संहतता (परस्परमिलनाऔरएकमतहोने) से उत्पन्न निर्विवरता (छिद्रकानहोना और कुछ अन्तर न होना) के धारण करनेवालों को यही युक्तहै ॥

४५–स्त्रीने केलेके वृक्षके समान सुन्दर जंघारूपी वृक्षवाले बड़े जघन स्थलरूपी स्थानमें क्षुद्रघंटिकारूपी रस्सीसे कामरूपी हाथी को बांधा ॥

४६–स्त्रियोंके ओष्ठोंमें लाखकारस और कपोलोंमें श्वेतलोधकी रज और नेत्ररूपी कमलों में नवीन अंजन शंखमें रक्खे हुए दुग्ध से भिन्ननहीं हुए (तुल्यहुए) ॥

४७–स्त्रियां चंचल और निर्मल ओष्ठरूपी पत्रवाले सब ओर फैलतेहुए दाँतों की कांतिरूपी केशरके समूहवाले भोले कपोलरूपी कमल के बीजवाले प्रफुल्लित मुखरूपी कमलों से सुशोभित हुईं ॥

४८–बलवान् से जीतागया देशान्तर को चलाजाता है अथवा कुशल उसीकी शरणको प्राप्तहोताहै इसीकारणसे चन्द्रमा उज्ज्वल कपोलवाले स्त्रियों के मुखमें प्रतिविम्बके वहाने से प्रविष्ट होगया ॥

४९--ध्रुवमागताः प्रतिहतिं कठिने
मदनेषवः कुचतटे महति।
इतरांगवन्न यदिदं गरिम-
ग्लपितावलग्नमगमत्तनुताम्॥

५०--न मनोरमास्वपि विशेषविदां
निरचेष्ट योग्यमिदमेतदिति।
गृहमेष्यति प्रियतमे सुदृशां
वसनांगरागसुमनःसु मनः॥

५१--वपुरन्वलिप्त परिरम्भसुख-
व्यवधानभीरुकतया न वधूः।
क्षममस्य वाढमिदमेव हि यत्
प्रियसंगमेष्वनवलेपमदः॥

५२--निजपाणिपल्लवतलस्खलना-
दभिनासिकाविवरमुत्पतितैः।
अपरा परीक्ष्य शनकैर्मुमुदे
मुखवासमास्यकमलश्वसनैः॥

५३--विधृते दिवा स वयसा च पुरः
परिपूर्णमण्डलविकाशभृति।
हिमधाम्नि दर्पणतले च मुहुः
स्वमुखश्रियं मृगदृशो ददृशुः॥

५४--अधिजानु बाहुमुपधाय नम-
त्करपल्लवाऽर्पितकपोलतलम्।
उदकण्ठि कण्ठपरिवर्त्तिकल-
स्वरशून्यगानपरयापरया॥

४९–कामके बाण निश्चय कठिन स्तनतटमें प्रतिघातको प्राप्त हुएहैं जिस कारणसे भारसे कटिका कृशकरनेवाला स्तन-तट अन्य अंगों के समान कृशताको नहीं प्राप्तहुआ ॥

५०–प्रियके घरमें आनेवाले होनेपर विशेष जाननेवाली उत्तम नेत्रवालीं स्त्रियोंके मनने मनकेरमानेवालेभी वस्त्र अंगराग और पुष्पोंमेंयहवस्तुयहहै इसबातका निश्चय नहींकिया॥

५१–स्त्रीने आलिंगन के सुख के नाशहोने के भयसे शरीर को अंगरागयुक्त नहीं किया क्योंकि यह शरीर प्रियकेसंगमोंमें अंगराग रहित है यही इसको उचितहै ॥

५२–अन्य स्त्री अपने पाणिरूपी पल्लवके लगने से नासिकाके छिद्रके प्रति उड़ेहुए मुखरूपी कमल के पवनोंसे मुखकी गन्धि को धीरे २ परीक्षा करके प्रसन्न हुई ॥

५३–आकाश और सखी से सन्मुख रक्खेगये परिपूर्ण मंडलकी शोभावाले चन्द्रमामें और दर्पण में स्त्रियां अपने मुखकी शोभाको देखती थीं ॥

५४–नम्र और हाथरूपी पल्लवमें रक्खेहुए कपोलवाली भुजा को घुटनेपर रखके कण्ठमें वर्त्तमान मधुरस्वर से रहित गानमें तत्पर अन्यस्त्री उत्कण्ठितहुई ॥

५५--प्रणयप्रकाशनविदो मधुराः
सुतरामभीष्टजनचित्तहृतः ।
प्रणिधाय कान्तमनु मुग्धतर-
स्तरुणीजनो दृश इवाथ सखीः ॥

५६--न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां
करुणां यथा च कुरुते स मयि ।
निपुणन्तथैनमुपगम्य वदे-
रभिदूति काचिदिति सन्दिदिशे ॥

५७--दयिताय मानपरयापरया
त्वरितं ययावगदितापि सखी ।
किमु चोदिताः प्रियहितार्थकृतः
कृतिनोभवान्ति सुहृदः सुहृदाम् ॥

५८--प्रतिभिद्य कान्तमपराधकृतं
यदि तावदस्य पुनरेव मया ।
क्रियतेऽनुवृत्तिरुचितैव ततः
कलयेदमानमनसं सखि! माम् ॥

५९--अवधीर्य्य धैर्य्यकलिता दयितं
विदधे विरोधमथ तेन सह ।
तव गोप्यते किमिव कर्त्तुमिदं
न सहास्मि साहसमसाहसिकी ॥

६०--तदुपेत्य मास्म तमुपालभथाः
किल दोषमस्य न हि विद्म वयम् ।
इति सम्प्रधार्य्य रमणाय बधू-
र्विहितागसेऽपि विससर्ज सखीम् ॥

५५–इसके उपरान्त अत्यन्त मोहित स्त्रियों ने अनुराग के प्रकाश करनेको जाननेवाली मधुर (मधुर बोलनेवाली और सुन्दर चेष्टावाली) अत्यन्त प्रियोंके चित्तों की हरनेवाली सखियों के तुल्य दृष्टियां प्रियों के प्रति भेजीं ॥

५६–वह जिसप्रकार मेरे ऊपर करुणाकरे और जिसप्रकारतुच्छता न माने उसकेपास जायकर उसप्रकार निपुणतापूर्व्वक कहो इसप्रकार किसी नायिकाने दूतीसे संदेशा कहा ॥

५७--अभिमानयुक्त अन्यनायिकासे नहींकहीगई भी सखी प्रिय के लिवानेको गई क्योंकि प्रेरित होकर क्या मित्रलोगों के प्रिय अर्थ के करने वाले मित्रलोग कृतकृत्य होते हैं किन्तु नहीं ॥

५८--अपराध करनेवाले प्रियको निरादर करके फिर मैं यदि उसका अनुसरण (आधीनता) करूं तो उचितही है किन्तु हेसखीइसकारणसेमुझे अभिमानरहितचित्तवालीजानेगा॥

५९--धैर्य्ययुक्त होकर प्रियको अनादर करके उसके साथ यदि विरोधकरती हूं तो हेसखी तुझ से क्याछिपाना निर्बल मैं इससाहस के करने को समर्थ नहीं हूं ॥

६०–इस कारण से उसको प्राप्तहोकर उलहनामतदो मैं उसके दोषोंको नहींजानती हूं ऐसा विचारकर नायिका ने अपराध करनेवाले भी प्रियके लिये सखी को भेजा ॥

६१--ननु सन्दिशेति सुदृशोदितया
त्रपया न किञ्चन किलाभिदधे ।
निजमैक्षि मन्दमनिशं निशितैः
कृशितं शरीरमशरीरिशरैः ॥

६२--ब्रुवते स्म दूत्य उपसृत्य नरान्
नरवत्प्रगल्भमतिगर्भगिरः ।
सुहृदर्थमीहितमजिह्मधियां
प्रकृतेर्विराजति विरुद्धमपि ॥

६३--मम रूपकीर्तिमहरद्भुवि य-
स्तदनुप्रसक्तहृदयेयमिति ।
त्वयि मत्सरादिव निरस्तदयः
सुतरां क्षिणोति खलु तां मदनः ॥

६४--तव सा कथासु परिघट्टयति
श्रवणं यदंगुलिमुखेन मुहुः ।
घनतां ध्रुवं नयति तेन भव-
द्गुणपूगपूरितमतृप्ततया ॥

६५--उपताप्यमानमलघूष्णिमभिः
श्वसितैः सितेतरसरोजदृशः ।
द्रवतां न नेतुमधरं क्षमते
नवनागवल्लिदलरागरसः ॥

६६--दधति स्फुटं रतिपतेरिषवः
शिततां यदुत्पलपलाशदृशः ।
हृदयं निरन्तरबृहत्कठिन-
स्तनमण्डलावरणमप्यभिदन् ॥

६१--संदेशा कहो इसप्रकार कहीगई सुन्दरनेत्रवाली नायिकाने लज्जा से कुछनहीं कहा किन्तु तीक्ष्ण कामदेव के बाणों से निरन्तर दुर्बल किये गये अपने शरीरको धीरेसेदेखा ॥

६२--ढीठ बुद्धिसे भरीहुई बाणीवाली दूतियोंने पुरुषोंके समीप जाकर पुरुषों के तुल्यकहा क्योंकि नहीं कुटिलबुद्धिवालों का मित्रके लिये चेष्टाकरना स्वभाव के विरुद्ध भी शोभित होताहै ॥

६३--जिसने पृथ्वी में पहले मेरा सौन्दर्य्य हरलियाथा यहउसी में चित्तकी आसक्त करनेवाली है इसकारण से मानोंतुझ में ईर्षासे कामदेव निर्दय होकर उस तेरी प्रियाको अत्यन्त क्षीण करता है ॥

६४--वह तेरी कथाओं में वारंवार अंगुलिके अग्रभाग से श्रवण के छिद्रको जो बढ़ाती है इसी कारण से आपके गुणों के समूह से पूर्ण श्रवण को असंतुष्टतासे घनेपनेको प्राप्त करती है ॥

६५--बड़ीउष्णतावाले श्वासों से संतप्त नीलकमल के तुल्य नेत्रवाली नायिका का ओष्ठ नवीन ताम्बूलों के राग के रस को आर्द्र करनेको नहीं समर्थ होताहै ॥

६६--कामदेवके बाण मानों तीक्ष्णता को धारण करते हैं जिस कारण से अन्तररहित बड़े और कठिन स्तनमंडलरूपी कवचवाले भी कमल के दलों के तुल्य नेत्रवाली नायिका के हृदय को विदीर्ण करते भये ॥

६७–कुसुमादपि स्मितदृशः सुतरां
सुकुमारमङ्गमिति नापरथा ।
अनिशं निजैरकरुणः करुणं
कुसुमेषुरुत्तपति यद्विशिखैः ॥

६८–विषतां निषेवितमपक्रियया
समुपैति सर्वमिति सत्यमदः ।
अमृतस्रुतोऽपि विरहाद्भवतो
यदमूं दहन्ति हिमरश्मिरुचः ॥

६९–उदितं प्रियां प्रति सहार्दमिति
श्रदधीयत प्रियतमेन वचः ।
विदितेङ्गिते हि पुर एव जने
समुदीरिताः खलु लगन्ति गिरः ॥
कुलकम् ।

७०–दयिताहृतस्य युवभिर्मनसः
परिमूढतामिव गतैः प्रथमम् ।
उदिते ततः सपदि लब्धपदैः
क्षणदाकरेऽनुपदिभिः प्रयये ॥

७१–निपपात सम्भ्रमभृतः श्रवणा-
दसितभ्रुवः प्रणदितालिकुलम् ।
दयितावलोकविकसन्नयन-
प्रसरप्रणुन्नमिव वारिरुहम् ॥

६७--बड़े नेत्रवाली नायिका का शरीर पुष्प से भी अत्यन्त सुकुमारहै यह मिथ्या नहीं है जिस कारण से कामदेव निर्दय होकर अपने बाणों से दीन जैसे होताहै उस प्रकारसे निरन्तर संतप्त करता है ॥

६८--विपरीत प्रयोग करने से सेवन कीगई सम्पूर्ण वस्तु विषपने को प्राप्त होतीहैं यह सत्यहै जिस कारण से अमृत की टपकानेवाली भी चन्द्रमा की किरणें तुम्हारे विरहसे इस तुम्हारी प्रिया को भस्म करती हैं ॥

६९--प्रियाके प्रति स्नेहयुक्त वचन पर प्रियतमने विश्वास किया क्योंकि पूर्व सेही अभिप्रायके जाननेवाले पुरुष में कहीगई वाणी शीघ्र लगती हैं ॥

७०--पहले मूढ़ताको प्राप्त पीछे चन्द्रमाके उदय होने पर शीघ्र पदके प्राप्तहोनेवाले स्त्रियों से हरेहुए मनके ढूढ़ने वाले युवा पुरुष चले ॥

७१--घबराईहुई स्त्रियों के कानसे शब्दायमान भ्रमरों से युक्त कमल प्रियके देखनेसे विस्तारको प्राप्त नेत्रोंके विस्तारसे मानों प्रेरणा कियागया गिरा ॥

७२—उपनेतुमुन्नतिमतेव दिवं
कुचयोर्युगेन तरसा कलिताम् ।
रभसोत्थितामुपगतः सहसा
परिरभ्य कश्चन बधूमरुधत् ॥

७३—अनुदेहमागतवतः प्रतिमां
परिणायकस्य गुरुमुद्वहता ।
मुकुरेण वेपथुभृतोऽतिभरात्
कथमप्यपाति न वधूकरतः ॥

७४—अवनम्य वक्षसि निमग्नकुच-
द्वितयेन गाढमुपगूढवता ।
दयितेन तत्क्षणचलद्रशना-
कलकिंकिणीरवमुदासि बधूः ॥

७५—कररुद्धनीवि दयितोपगतौ
गलितं त्वराविरहिता सनया ।
क्षणदृष्टहाटकशिलासदृश-
स्फुरदूरुभित्ति वसनं ववसे ॥

७६—पिदधानमन्वगुपगम्य दृशौ
ब्रुवते जनाय वद कोऽयमिति ।
अभिधातुमध्यवससौ न गिरा
पुलकैः प्रियं नववधूर्न्यगदत् ॥

७७—उदितोरुसादमतिवेपथुमत्
सुदृशोऽभिभर्तृ विधुरं त्रपया ।
वपुरादरातिशयशंसि पुनः
प्रतिपत्तिमूढमपि वाढमभूत् ॥

७२–सहसाप्राप्त किसी पुरुषने घबराहट से उठीहुई उन्नतियुक्त दोनोंकुचों से मानों आकाशमें प्राप्तकरने को बलात्कारसे फेंकीगई प्रियाको आलिंगन करके रोका ॥

७३–देहकेपीछे आयेहुए पतिकेगुरु (पूज्य और भारयुक्त) प्रतिबिम्बको धारण करताहुआ दर्पण कंपमान अत्यन्त भारयुक्त स्त्रीके हाथसे बड़ेक्लेशसे नहीं गिरा ॥

७४–झुककर अत्यन्त आलिंगन करनेवाले हृदयमेंलगेहुए दोनों कुचवाले प्रियने उस समय चंचल क्षुद्रघंटिकाकी मधुर किंकिणियों के शब्दपूर्वक नायिकाको उठालिया ॥

७५–प्रियके आगमन होनेपर शीघ्रतासे आसनकी त्याग करनेवाली किसी नायिकाने गिरतेहुए हाथसे पकड़ेहुए बन्धनवाले वस्त्रको क्षणभर सुवर्णकी शिलाओंके तुल्य दीप्तिमान जंघाओंके दिखाई देनेपर आच्छादन किया ॥

७६–नवीन बधूने पीछे आयकर नेत्रोंको मूंदतेहुए प्रियको यह कौनहै कहो यह पूछतेहुए पुरुषसे वाणीसे कहनेको नहीं उत्साहकिया किन्तु रोमांचोंसे कहा ॥

७७–पतिके सन्मुख उत्पन्नहुई जंघाओंकी निश्चेष्टितावाला अत्यन्त कंपमान लज्जासे आश्चर्य्ययुक्त यह करना उचित है इसमें मूढ भी सुन्दर नेत्रवाली स्त्रीका शरीर अत्यन्त आदरका प्रकट करनेवाला हुआ ॥

७८—परिमन्थराभिरलघूरुभरा-
दधिवेश्म पत्युरुपचारविधौ ।
स्खलिताभिरप्यनुपदं प्रमदाः
प्रणयातिभूमिमगमन् गतिभिः ॥

७९—मधुरोन्नतभ्रु ललितञ्च दृशोः
सकरप्रयोगचतुरञ्च वचः ।
प्रकृतिस्थमेव निपुणागमितं
स्फुटनृत्यलीलमभवत् सुतनोः ॥

८०—तदयुक्तमंग ! तव विश्वसृजा
न कृतं यदीक्षणसहस्रतयम् ।
प्रकटीकृता जगति येन खलु
स्फुटमिन्द्रताद्य मयि गोत्रभिदा ॥

८१—न विभावयत्यनिशमक्षिगता-
मपि मां भवानतिसमीपतया ।
हृदयस्थितामपि पुनः परितः
कथमीक्षते वहिरभीष्टतमाम् ॥

८२—इति गन्तुमिच्छुमभिधाय पुरः
क्षणदृष्टिपातविकसद्वदनाम् ।
स्वकरावलम्बनविमुक्तगल-
त्कलकाञ्चि काञ्चिदरुणत्तरुणः ॥

८३—अपयाति सरोषया निरस्ते
कृतके कामिनि चुक्षुवे मृगाक्ष्या ।
कलयन्नपि सव्यथोऽवतस्थे-
ऽशकुनेन स्खलितः किलेतरोऽपि ॥

७८--स्त्रियां गृहों में पतियों के आदर सत्कार करने में बड़े जंघाओं के भार से आलस्ययुक्त पद पद में विछलते हुए गमनों से प्रेम की अत्यन्तता को प्राप्तहुईं ॥

७९--मनोहरतापूर्वक चंचल भृकुटीवाला नेत्रोंका सौन्दर्य्य और हाथोंके प्रयोग (चलाने) से युक्त चतुरवचन स्त्रीका स्वाभाविकहोकर भी निपुणसे अभ्यास करायीगयी प्रसिद्ध नृत्यलीलाके तुल्य लीलावाला हुआ ॥

८०--ब्रह्मा ने तुम्हारे हजार नेत्र जो नहीं बनाये यह अनुचित किया जिस कारण से गोत्रभिद (इन्द्र और नाम के भेद करनेवाले)तुमने इस समय इन्द्रता संसार में प्रकट की ॥

८१--निरन्तर अक्षिगत (नेत्रों के समीप प्राप्त और शत्रु) मुझे अत्यन्त समीपता के कारण आप नहीं देखते हो अत्यन्त प्रिया फिर हृदय में स्थित (हृदय में प्राप्त और गुप्त) को बाहर सन्मुख किस प्रकार देखते हो ॥

८२--इस प्रकार से कहकर क्षणमात्र दृष्टियों के पड़ने से प्रफुल्लित मुखवाली किसी नायिका को युवा पुरुष ने अपने हाथ के द्वारा बन्धनरहित क्षुद्रघंटिका के गिरनेपर रोका ॥

८३--क्रोधयुक्त मृगों के नेत्रों के तुल्य नेत्रोंवाली नायिका से निकालेगये पतिके जाने पर कृत्रिम (बनाया हुआ) विघ्न किया अन्य (नायक) जानता हुआ भी अशकुन से रोका गया मानों दुःखसहित स्थित हुआ ॥

८४–आलोक्य प्रियतममंशुके विनीवौ
यत्तस्थे नमितमुखेन्दु मानवत्या ।
तन्नूनं पदमवलोकयाम्बभूवे
मानस्य द्रुतमपयानमास्थितस्य ॥

८५–सुदृशः सरसव्यलीकतप्त-
स्तरसा श्लिष्टवतः सयौवनोष्मा ।
कथमप्यभवत् स्मरानलोष्णः
स्तनभारो न नखम्पचः प्रियस्य ॥

८६–दधत्युरोजद्वयमुर्वशीतलं
भुवो गतेव स्वयमुर्वशी तलम् ।
बभौ मुखेनाप्रतिमेन काचन
श्रियाधिका ताम्प्रति मेनका च न ॥

८७–इत्थन्नारीर्घटयितुमलं कामिभिः काममासन्
प्रालेयांशोःसपदि रुचयः शान्तमानान्तरायाः ।
आचार्य्यत्वं रतिषु विलसन्मन्मथश्रीविलासा
ह्रीप्रत्यूहप्रशमकुशलाः शीधवश्चक्रुरासाम् ॥

इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये प्रदोषवर्णनन्नाम
नवमः सर्गः ९ ॥

क्त स्त्री ने प्रिय को देखकर बन्धनरहित वस्त्र के होने
खरूपी चन्द्रमा को नम्र करके जो स्थिति की इसी
से मानों शीघ्र गयेहुए कोप के चिह्न को देखा ॥

अपराध से संतप्त युवावस्था की ऊष्मा से युक्त और
वसम्बन्धी अग्नि से उष्ण स्त्री के स्तनों का भार
आलिंगन करनेवाले प्रिय के किस कारण से नख
तप्त करनेवाला न हुआ ॥
ौर शीतलता से रहित दोनों कुचों को धारण करती
थ्वीतल में प्राप्त साक्षात् मानों उर्वशी कोई स्त्री तु-
रहित मुख से शोभित हुई उसके प्रति मेनका भी
ता में अधिक न थी ॥
कार शीघ्रमानरूपी विघ्न की नाश करनेवाली च-
की किरणें स्त्रियों को पतियों से मिलाने को अत्यन्त
हुई शोभायमान कामदेव के लक्ष्मी के विलासवाली
ारूपी विघ्न के नाश करने में प्रवीण मदिराएं इन
ं के रति में आचार्यपने को प्राप्त हुईं ॥

घकृतमहाकाव्यशिशुपालबधस्य भाषानुवादे प्रदोष
वर्णनन्नामनवमःसर्गः९ ॥

दशमः सर्गः ॥

भगवतः श्रीकृष्णस्य सुरतवर्णनम् ॥

१—सज्जितानि सुरभीण्यथ यूना-
मुल्लसन्नयनवारिरुहाणि ।
आययुः सुघटितानि सुरायाः
पात्रतां प्रियतमावदनानि ॥

२—सोपचारमुपशान्तविचारं
सानुतर्षमनुतर्षपदेन ।
ते मुहूर्तमथ मूर्त्तमपीप्यन्
प्रेम मानमवधूय वधूः स्वाः ॥

३—क्रान्तकान्तवदनप्रतिबिम्बे
मग्नबालसहकारसुगन्धौ ।
स्वादुनि प्रणदितालिनि शीते
निर्ववार मधुनीन्द्रियवर्गः ॥

४--कापिशायनसुगन्धि विघूर्ण-
न्नुन्मदोऽधिशयितुं समशेत ।
फुल्लदृष्टि वदनं प्रमदाना-
मब्जचारु चषकश्च षडंघ्रिः ॥

५--बिम्बितं भृतपरिश्रुति जानन्
भाजने जलजमित्यबलायाः ।
घ्रातुमक्षि पतति भ्रमरः स्म
भ्रान्तिभाजि भवति क्व विवेकः ॥

दशवां सर्ग ॥

श्रीकृष्णजीका अच्छेप्रकारसे सुरतवर्णन॥

१–शुद्ध सुगन्धित शोभायमान नेत्ररूपी कमल अथवा कमल-रूपी नेत्रवाले अच्छे प्रकार से रचेगये अत्यन्त प्रियाओं के मुख कामियों की मदिरा के पात्रपने को प्राप्तहुए ॥

२--इसके उपरान्त उन युवापुरुषों ने प्रार्थनापूर्व्वक शंका को छोड़कर और तृष्णापूर्व्वक मद्य के बहाने से मूर्त्तिमान् प्रेम अपनी स्त्रियों को क्षणभर कोप को दूर करा करके पान कराया ॥

३--पड़ेहुए प्रिया के प्रतिविम्बवाला छोड़ेहुए आम्र के पत्तों से सुगन्धित स्वादुयुक्त शब्दायमान भ्रमरवाले मद्य में इन्द्रियों का समूह सुखी हुआ ॥

४–उन्मत्त भ्रमण करता हुआ भ्रमर मद्य से सुगन्धित प्रफुल्लित नेत्रवाले स्त्रियों के मुख में और कमल से सुन्दर मद्य पीने के पात्र में स्थित होने को संशययुक्त हुआ ॥

५–भरी हुई मदिरावाले पात्र में प्रतिविम्बित स्त्री के नेत्र को कमल जानता हुआ भ्रमर सूंघने के लिये गिरा क्योंकि भ्रान्ति (भ्रमण और विपरीतज्ञान) वाले को विचार कहां होता है ॥

६--दत्तमिष्टतमया मधु पत्यु-
र्वाढमाप पिबतो रसवत्ताम् ।
यत्सुवर्णमुकुटांशुभिरासी-
च्चेतनाविरहितैरपि पीतम् ॥

७--स्वादनेन सुतनोरविचारा-
दोष्ठतः समचरिष्ट रसोऽत्र ।
अन्यमन्यदिवयन्मधु यूनः
स्वादमिष्टमतनिष्ट तदेव ॥

८--बिभ्रतौ मधुरतामतिमात्रं
रागिभिर्युगपदेव पपाते ।
आननैर्मधुरसो विकसद्भि-
र्नासिकाभिरसितोत्पलगन्धः ॥

९--पीतवत्यभिमते मधुतुल्य-
स्वादमोष्ठरुचकं विदधत्यौ ।
लभ्यते स्म परिरक्ततयात्मा
यावकेन वियताऽपि युवत्याः ॥

१०--कस्यचित्समदनम्मदनीय-
प्रेयसीवदनपानपरस्य ।
स्वादितः सकृदिवासव एव
प्रत्युत क्षणविदंशपदेऽभूत् ॥

११--पीतशीधुमधुरैर्मिथुनाना-
माननैः परिहृतं चषकान्तः ।
व्रीडया रुददिवालिविरावै-
र्नीलनीरजमगच्छदधस्तात् ॥

६—अत्यन्त प्रिया से दियाहुआ मद्य पीतेहुए पति की अत्यन्त स्वादुता को मानों प्राप्तहुआ जिस कारण से चेतनारहित सुवर्ण के मुकुट की किरणों से भी पीत हुआ (पियागया और पीतवर्ण हुआ) ॥

७—उत्तम शरीरवाली स्त्री के स्वादुलेने के द्वारा ओष्ठ से स्वादु इस मद्य में निस्सन्देह प्राप्त है जिस कारण से उसी मद्य ने अपूर्व प्रिय स्वादु युवा पुरुषों को विस्तार किया ॥

८—कामियों ने अत्यन्त मधुरताको धारण करतेहुए प्रफुल्लित मुखों से मद्य के रस को और नासिकाओं से नीलकमल की गन्धि को एक साथ पान किया ॥

९—काटने की इच्छा करतेहुए प्रिय के मद्यके तुल्य स्वादुवाले आभूषण के समान ओष्ठ के पान करने पर जातेहुए भी स्त्री की लाक्षा के राग ने रक्तता के कारण अपना स्वरूप पाया ॥

१०—कामदेव सहित होकर मद के उत्पन्न करनेवाले प्रियाके मुख के पान में तत्पर किसी कामी का एकही वार स्वादु कियाहुआ मद्य विपरीततासे क्षणमात्र उपदंश (ओष्ठ का पान करना) के स्थान में हुआ ॥

११—मद्य के पान करनेवाले मधुर स्त्री और पुरुषों के मुखों से मद्य पीनेके पात्र में छोड़ागया नीलकमल लज्जा से भ्रमरों के शब्दों के द्वारा मानों रोदन करता हुआ नीचे चला गया ॥

१२--प्रातिभं त्रिसरकेण गतानां
वक्रवाक्यरचनारमणीयः ।
गूढसूचितरहस्यसहासः
सुभ्रुवां प्रववृते परिहासः ॥
१३--हावहारि हसितं वचनाना-
ङ्कौशलं दृशि विकारविशेषाः ।
चक्रिरे भृशमृजोरपि बध्वाः
कामिनेव तरुणेन मदेन ॥
१४--अप्रसन्नमपराद्धरि पत्यौ
कोपदीप्तमुररीकृतधैर्य्यम् ।
क्षालितन्नु शमितन्नु बधूना-
न्द्रावितन्नु हृदयम्मधुवारैः ॥
१५--सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वा-
दप्रकाशितमदिद्युतदंगे ।
विभ्रमम्मधुमदः प्रमदाना-
न्धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम् ॥

१६--सावशेषपदमुक्तमुपेक्षा
स्रस्तमाल्यवसनाभरणेषु ।
गन्तुमुत्थितमकारणतः स्म
द्योतयन्ति मदविभ्रममासाम् ॥

१२--तीनवार मद्य के पीने से ज्ञान विशेष को प्राप्त स्त्रियों की वक्र वाणियों की रचना से रमणीय गुप्त और प्रकाशित एकान्त की बातों से युक्त हास्य प्रवृत्त हुए ॥

१३--तरुण (उत्कट और युवा) कामीरूपीमदने मुग्धा (नवीन यौवनवाली) नायिकाके विलाससे मनोहर हास्य वचनों की प्रगल्भता (और) नेत्रमें विशेष विलास किये ॥

१४--अपराध करनेवाले पतिमें अप्रसन्न कोपसे दीप्त धैर्य्य का अंगीकार करनेवाला स्त्रियोंका हृदय मद्यविशेषों से क्या धोयागया क्याशान्तकियागया औरक्याद्रवीभूतकियागया॥

१५--मद्यके मदने स्त्रियोंके अङ्ग (शरीर और व्याकरणमें जिस की अंग संज्ञा होती है) में सर्वदा रहनेवाले प्रस्तुत (उपस्थित) न होनेसे अप्रकट विलासको धातुमें छिपेहुए अर्थको उपसर्ग (व्याकरणसम्बन्धी एक संज्ञा) के समान प्रकाशितकिया ॥

१६--अवशेषपूर्व्वक पदवाला कथन, गिरतेहुए हार वस्त्र और आभूषणों में अनादर, कारण के विना चलनेकेलिये उठना (यहबातें)इनस्त्रियोंके मदके विकारको द्योतन करतीथीं ॥

१७–मद्यमन्दविगलत्त्रपमीष-
ञ्चक्षुरुन्मिषितपक्ष्म दधत्या।
वीक्ष्यते स्म शनकैर्नववध्वा
कामिनो मुखमधोमुखयैव॥

१८–या कथञ्चन सखीवचनेन
प्रागभिप्रियतमम्प्रजगल्भे।
व्रीडजाड्यमभजन्मधुपा सा
स्वाम्मदात् प्रकृतिमेति हि सर्वः॥

१९–छादितः कथमपि त्रपयान्त-
र्यः प्रियम्प्रति चिराय रमण्याः।
वारुणीमदविशंकमथावि-
श्चक्षुषोऽभवदसाविव रागः॥

२०–आगताननगणितप्रतियातान्
वल्लभानभिसिसारयिषूणाम्।
प्रापि चेतसि स विप्रतिसारे
सुभ्रुवामवसरः स्मरकेण॥

२१–मा पुनस्तमभिसीसरमाग-
स्कारिणम्मदविमोहितचित्ता।
योषिदित्यभिललाष न हाला-
न्दुस्त्यजः खलु सुखादपि मानः॥

२२–ह्रीविमोहमहरद्दयिताना-
मन्तिकं रतिसुखाय निनाय।
सप्रसादमिव सेवितमासीत्
सद्य एव फलदम्मधु तासाम्॥

१७--मद्यसे कुछ नष्टहुई लज्जावाले खुलेहुए पलकवाले नेत्रों को धारण करतीहुई नवीन बधूने प्रियकामुख अधोमुख होकर धीरे धीरे देखा ॥

१८--जोस्त्री किसीप्रकार सखियोंके वचनसे पहले प्रियकेसन्मुख प्रगल्भ होतीथी वह स्त्री लज्जाकी जड़ताको प्राप्तहुई क्यों- कि सबकोई मदसे अपनी प्रकृतिको प्राप्त होताहै ॥

१९--स्त्रीका जो प्रियके प्रति विषयका अभिलाष बहुतकालतक लज्जासे आच्छादितथा वही राग (विषय अभिलाष) इस समय मद्यके मदसे निस्सन्देह क्या नेत्रों से प्रकट हुआ है ॥

२०--आयेहुए तिसपर भी नहीं आदर दियेगये और लौटगये प्रियोंके प्रतिजानेकी इच्छा करतीहुई स्त्रियोंका सन्ताप युक्त चित्त होनेपर मद्यपान करनेसे अवसर प्राप्तहुआ ॥

२१--मदसे मोहयुक्त चित्तवाली होकर मैं फिर उस अपराध क- रनेवाले के समीप नहीं जाऊंगी ऐसा विचारकर किसी स्त्रीने मद्यकी अभिलाषा नहीं की क्योंकि मान सुख से भी दुस्त्यज है ॥

२२--प्रसन्नतापूर्व्वक सेवन कियागया मद्य उन स्त्रियोंको शी- घ्रही फलका देनेवालाहुआ लज्जाकी जड़ता हरली (और) रतिके सुखके लिये प्रियोंके समीप लेगया ॥

२३—दत्तमात्तमदनन्दयितेन
व्याप्तमातिशयिकेन रसेन।
सस्वदे मुखसुरम्प्रमदाभ्यो
नाम रूढमपि च व्युदपादि॥

२४—लब्धसौरभगुणो मदिराणा-
मंगनास्यचषकस्य च गन्धः।
मोदितालिरितरेतरयोगा-
दन्यतामभजतातिशयन्नु॥

२५—मानभंगपटुना सुरतेच्छां
तन्वता प्रथयता दृशि रागम्।
लेभिरे सपदि भावयतान्त-
र्योषितः प्रणयिनेव मदेन॥

२६—पानधौतनवयावकरागं
सुभ्रुवो निभृतचुम्बनदक्षाः।
प्रेयसामधररागरसेन
स्वाङ्क्लाधरमुपालि रञ्जुः॥

२७—अर्पितं रसितवत्यपि नाम-
ग्राहमन्ययुवतेर्दयितेन।
उज्झति स्म मदमप्यपिवन्ती
वीक्ष्य मद्यमितरा तु ममाद॥

२८—अन्ययान्यवनितागतचित्तं
चित्तनाथमभिशंकितवत्या।
पीतभूरिसुरयापि न मेदे
निर्वृतिर्हि मनसो मदहेतुः॥

२३–कामदेव से युक्तहोकर प्रियसे दीगई अत्यन्त घने स्वादु से भरीहुई मुखकी मदिरा प्रमदा (स्त्री) ओंको स्वादुयुक्त हुई रूढ़ि प्रमदा यह नाम व्युत्पत्तिसे भी सिद्ध हुआ ॥

२४–प्राप्त सुगन्धिरूपी गुणवाली भ्रमरोंको आनन्दित करनेवाली मद्योंके स्त्रियों के मुखरूपी पात्रकी सुगन्धि परस्पर मिलनेसे अपूर्वता अथवा अत्यन्तताको प्राप्त हुई ॥

२५--कोपके शान्ति करनेमें समर्थ रतिकी इच्छाका बढ़ानेवाला नेत्रमें रागको प्रकाशित करनेवाला अन्तःकरणको रागयुक्त करताहुआ मद प्रियके तुल्य स्त्रियोंको प्राप्तहुआ ॥

२६--सखीके समीप गुप्तचुम्बनमें चतुर स्त्रियोंने मद्यपान करनेसे धोयेहुये लाक्षाके रागवाले ओष्ठको पतियोंके ओष्ठ सम्बन्धी रागके रससे रँगा ॥

२७--प्रियसे सपत्नीका नाम लेकर दियेगये मद्यका स्वादु लेती हुई किसी नायिकाने मदका त्याग किया सपत्नी तो मद्यको नहीं भी पीतीभई देखही के मत्त होगई ॥

२८--पतिको अन्य स्त्रीमें प्राप्त चित्तवाला शंका करतीहुई अन्य स्त्री बहुतसी मद्यपान करनेवाली भी होकर मदको नहीं प्राप्तहुई क्योंकि मनका निवृत्त होनाही मदका कारणहै ॥

२९--कोपवत्यनुनयानगृहीत्वा
प्रागथो मधुमदाहितमोहा ।
कोपितं विरहखेदितचित्ता
कान्तमेव कलयन्त्यनुनिन्ये ॥

३०--कुर्वता मुकुलिताक्षियुगाना-
मंगसादमवसादितवाचाम् ।
ईर्ष्ययेव हरता ह्रियमासां
तद्गुणः स्वयमकारि मदेन ॥

३१--गण्डभित्तिषु पुरा सदृशीषु
व्याञ्जि नाञ्चितदृशाम्प्रतिमेन्दुः ।
पानपाटलितकान्तिषु पश्चा-
ल्लोध्रचूर्णतिलकाकृतिरासीत् ॥

३२--उद्धतैरिव परस्परसंगा-
दीरितान्युभयतः कुचकुम्भैः ।
योषितामतिमदेन जुघूर्णु-
र्विभ्रमातिशयपूंषि वपूंषि ॥

३३--चारुता वपुरभूषयदासा-
न्तामनूननवयौवनयोगः ।
तम्पुनर्मकरकेतनलक्ष्मी-
स्तां मदो दयितसंगमभूषः ॥

२९--पहले क्रोधयुक्त होकर प्रार्थनाओं को न ग्रहणकरके इस समय विरहसे खेदयुक्त चित्तवाली कोई स्त्री मद्यके मदसे मोहयुक्त होकर प्रियकोही क्रोधयुक्त जानतीहुई प्रार्थना करने लगी ॥

३०--बन्द नेत्रवाली कुण्ठितवाणी वाली स्त्रियोंके अंगको चेष्टा-रहित करतेहुए लज्जाको हरतेहुए मद ने मानों ईर्षा से इस लज्जाका गुण आपही किया ॥

३१--प्रतिविम्बका चन्द्रमा समान वर्णवाले सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियों के कपोलों में पहले भेदयुक्त नहीं होताथा पीछे म-द्यपीनेके मदसे पाटल (श्वेत और रक्तमिलाहुआ) वर्ण युक्त कान्तिवाले कपोलों में लोध्रकी रजके तिलककी आ-कृति के समान आकृतिवाला हुआ ॥

३२--उद्धत कुचरूपी कुम्भों के द्वारा परस्पर संग से दोनों ओर खिंचेहुए अधिक विलासके पुष्ट करनेवाले स्त्रियों के शरीर भ्रमणको प्राप्तहुए ॥

३३--इन स्त्रियों के शरीरको सुन्दरता ने भूषित किया इस सु-न्दरताको संपूर्ण यौवनके योगने भूषित किया उस यौवन के योगको कामदेवकी लक्ष्मीने भूषित किया और कामदेव की लक्ष्मीको प्रियके संगमरूपी आभूषण वाले मदने वि-भूषित किया ॥

३४--क्षीवतामुपगतास्वनुवेलं
तासु रोषपरितोषवतीषु।
अग्रहीन्नु सशरन्धनुरुज्झा-
मास नूज्झितनिषंगमनंगः॥
३५--शंकयाऽन्ययुवतौ वनिताभिः
प्रत्यभेदि दयितः स्फुटमेव।
न क्षमम्भवति तत्त्वविचारे
मत्सरेण हतसंवृति चेतः॥
३६--आननैर्विचकसे हृषिताभि-
र्वल्लभानभि तनूभिरभावि।
आर्द्रतां हृदयमाप च रोषो
लोलति स्म वचनेषु वधूनाम्॥
३७--रूपमप्रतिविधानमनोज्ञं
प्रेम कार्य्यमनपेक्ष्यविकाशि।
चाटु चाकृतकसम्भ्रममासां
कार्मणत्वमगमन्रमणेषु॥
३८--लीलयैव सुतनोस्तुलयित्वा
गौरवाढ्यमपि लावणिकेन।
मानवञ्चनविदा वदनेन
क्रीतमेव हृदयन्दयितस्य॥

३४--उन्मत्तताको प्राप्त क्षणक्षणमें रुष्ट और सन्तुष्ट उन स्त्रियोंमें कामदेव ने क्या बाण सहित धनुष लिया अथवा तरकस को फेंक कर क्या त्याग करदिया ॥

३५–स्त्रियों ने सपत्नियों में शंका से प्रिय को निश्चयपूर्व्वक अलग करदिया क्योंकि शत्रुता से नष्ट संवृति (गुप्तकरने के योग्य वस्तु का गुप्त करना) वाला चित्त तत्त्वके विचार में समर्थ नहीं होता ॥

३६–प्रियों के सन्मुख बधुओंके मुख प्रफुल्लित हुए शरीर पुलकित हुआ हृदय आर्द्र हुआ वचनों में क्रोध चलायमान हुआ ॥

३७–विनाही यत्न के सुन्दर रूप प्रयोजन के विना बढ़ताहुआ प्रेम, नहीं कृत्रिम वेगवाला प्रियवचन, स्त्रियों का प्रियों के विषय में वशीकरण, (यह सब) प्राप्त हुए ॥

३८–लावणिक (कान्तियुक्त लवण बेचनेवाला) मानवञ्चन (अहंकार का नाश करना और कम तोलना) में चतुर स्त्री के मुख ने गौरव (गंभीरता और भारीपन) से युक्त भी प्रिय के हृदय को लीला (विलास और विनापरिश्रम) पूर्व्वकही तोलकर क्रीतकिया (वश करलिया और मोल ले लिया) ॥

३९--स्पर्शभाजि विशदच्छविचारौ
कल्पिते मृगदृशां सुरताय ।
सन्नतिन्दधति पेतुरजस्रं
दृष्टयः प्रियतमे शयने च ॥

४०--यूनि रागतरलैरपि तिर्यक्-
पातिभिः श्रुतिगुणेन युतस्य ।
दीर्घदर्शिभिरकारि वधूनां
लंघनन्न नयनैः श्रवणस्य ॥

४१--संकथेच्छुरभिधातुमनीशा
सम्मुखी न च बभूव दिदृक्षुः ।
स्पर्शनेन दयितस्य नतभ्रू-
रंगसंगचपलापि चकम्पे ॥

४२--उत्तरीयविनयात्त्रपमाणा
रुन्धती किल तदीक्षणमार्गम् ।
आवरिष्ट विकटेन विवोढु-
र्वक्षसैव कुचमण्डलमन्या ॥

४३--अंशुकं हृतवता तनुबाहु-
स्वस्तिकापिहितमुग्धकुचाग्रा ।
भिन्नशंखवलयम्परिणेत्रा
पर्य्यरम्भि रभसादचिरोढा ॥

३९—सुखद स्पर्शवाले विशद (निर्मल और श्वेत) कान्ति से सुन्दर रति के लिये कल्पित (उत्पन्न किया गया और तैयार कियागया) सन्नति (अनुकूलता और सब ओरसे समता) के धारण करनेवाले प्रियतम और शयनमें स्त्रियों की दृष्टियां एकसाथही गिरीं ॥

४०—राग से चंचल प्रिय में तिरछे गिरनेवाले और राग द्वेष से चपल कुटिल वृत्तिवाले भी दूरदर्शी स्त्रियोंके नेत्रों ने श्रुति गुण (सुनने में समर्थता और अभ्यासरूपी गुण) से युक्त श्रवण (कान और शास्त्र) का उल्लंघन नहीं किया ॥

४१—नम्र भृकुटीवाली स्त्री संभाषण में इच्छावाली भी संभाषण करने में समर्थ नहीं हुई देखने की इच्छावाली भी सन्मुख न हुई शरीर के स्पर्श में चपल भी प्रिय के स्पर्श से कम्पमान हुई ॥

४२—अन्य स्त्री ने कुचों के वस्त्र के खेंचने से लज्जित उसकी दृष्टि के मार्ग को मानों रोकतीहुई विशाल पति के हृदय सेही स्तनमण्डल का आच्छादन किया ॥

४३—उत्तरीय (डुपट्टा) के हरनेवाले पति ने दुर्बल भुजाओं के स्वस्तिक (बन्ध विशेष) से आच्छादित सुन्दर स्तनों के अग्रभागवाली नवोढ़ा (नवीन विवाहिता स्त्री) का शंख के कंकणों के टूटने पर वेग से आलिंगन किया ॥

४४--सञ्जहार सहसा परिरब्ध-
प्रेयसीषु विरहय्य विरोधम्।
संहितं रतिपतिः स्मितभिन्न-
क्रोधमाशु तरुणेषु महेषुम्॥

४५--स्रंसमानमुपयन्तरि वध्वाः
श्लिष्टवत्युपसपत्ति रसेन।
आत्मनैव रुरुधे कृतिनेव
स्वेदसंगि वसनञ्जघनेन॥

४६--पीडिते पुर उरःप्रतिपेषं
भर्त्तरि स्तनयुगेन युवत्याः।
स्पष्टमेव दलतः प्रतिनार्य्या-
स्तन्मयत्वमभवद्धृदयस्य॥

४७--दीपितस्मरमुरस्युपपीडं
वल्लभे घनमभिष्वजमाने।
वक्रतान्न ययतुः कुचकुम्भौ
सुभ्रुवः कठिनतातिशयेन॥

४८--सम्प्रवेष्टुमिव योषित ईषुः
श्लिष्यतां हृदयमिष्टतमानाम्।
आत्मनः सततमेव तदन्त-
र्वर्त्तिनो न खलु नूनमजानन्॥

४९--स्नेहनिर्भरमधत्त वधूना-
मार्द्रतां वपुरसंशयमन्तः।
यूनि गाढपरिरम्भिणि वस्त्र-
क्नोपमम्बु वव्रृषे यदनेन॥

४४--युवा पुरुषों के विरोध को छोड़कर एकाएकी प्रियाओं के आलिंगन करनेवाले होने पर कामदेव ने चढ़ाये हुए बड़े बाणको हास्य से क्रोध के छूटने पर शीघ्र रोकलिया ॥

४५--पति के रस से सपत्नी के समीप आलिंगन करने पर गिरतेहुए और स्वेद से लगेहुए बधूके वस्त्रको प्रवीण जंघा ने आपही रोकलिया ॥

४६--स्त्री के स्तनों के युग से पति के सपत्नी के सन्मुख हृदय को पीड़ित करके पीड़ित होने पर ईर्षा से विदीर्ण सपत्नी का हृदय तद्रूपता को मानों प्राप्त हुआ ॥

४७--प्रिय के कामदेव के दीप्त होनेपर हृदय में पीड़ित करके अत्यन्त आलिंगन करने पर सुन्दर भृकुटी वाली स्त्री के कुचरूपी कुम्भ अत्यन्त कठिनता से वक्रता को नहीं प्राप्तहुए ॥

४८--स्त्रियां आलिंगन करते हुए प्रियतमों के हृदय में मानों प्रवेश करने की इच्छा करती थीं निश्चय सदैव उन प्रियों के हृदय में स्थित अपने को नहीं जानती थीं ॥

४९--स्नेह से पूर्ण स्त्रियों का शरीर अन्तःकरण में आर्द्रता को निस्सन्देह धारण करता था क्योंकि युवा पुरुष के अत्यन्त आलिंगन करनेवाले होने पर इसने वस्त्र को सींचकर जल की वृष्टि की ॥

५०--न स्म माति वपुषः प्रमदाना-
मन्तरिष्टतमसंगमजन्मा।
यद् वहुर्वहिरवाप्य विकाशं
व्यानशे तनुरुहाण्यपि हर्षः॥

५१--यत् प्रियव्यतिकराद्वनिताना-
मंगजेन पुलकेन वभूवे।
प्रापितेन भृशमुच्छ्वसिताभि-
र्नीविभिः सपदि बन्धनमोक्षः॥

५२--ह्रीभरादवनतम्परिरम्भे
रागवानवटुजेष्ववकृष्य।
अर्पितोष्ठदलमाननपद्मं
योषितो मुकुलिताक्षमधासीत्॥

५३--पल्लवोपमितिसाम्यसपक्षं
दष्टवत्यधरविम्बमभीष्टे।
पर्यकूजि सरुजेव तरुण्या-
स्तारलोलवलयेन करेण॥

५४--केनचिन्मधुरमुल्वणरागं
वाष्पतप्तमधिकं विरहेषु।
ओष्ठपल्लवमपास्य मुहूर्त्तं
सुभ्रुवः सरसमक्षि चुचुम्वे॥

५५--रेचितम्परिजनेन महीयः
केवलाभिरतदम्पति धाम।
साम्यमाप कमलासखविष्वक्-
सेनसेवितयुगान्तपयोधेः॥

५०–स्त्रियों का प्रीतम के संगम से उत्पन्न बड़ा हर्ष शरीर के भीतर नहीं समाया क्योंकि बाहर वृद्धि को प्राप्त होकर रोमों में भी व्याप्त हुआ ॥

५१–स्त्रियों का प्रिय के संगम से अंगज (शरीर में व्याप्त होने वाला और पुत्र) जो रोमांच उत्पन्न हुआ उस्से अत्यन्त उच्छ्वसित (प्रसन्न और छिन्न) कटिके वस्त्रशीघ्र बन्धनमोक्ष (ग्रन्थि का टूटना और बन्धन से छूटना) को प्राप्तहुए ॥

५२–आलिंगन में लज्जारूपी भार से नम्र रक्खे हुए ओष्ठरूपी पत्रवाले स्त्री के मुखरूपी कमल को रागयुक्त ने शिर के पीछेके बालों को उठाकर नेत्रों के बन्दहोने पर पानकिया॥

५३–पल्लवकी सदृशता से उत्पन्न हुई समता के द्वारा मित्रता युक्त ओष्ठरूपी बिम्बाफल को प्रीतम के काटने पर मानों पीड़ायुक्त उच्चस्वर से शब्दायमान चंचल कंकण वाला स्त्री का हास्य शब्दायमानहुआ ॥

५४–किसी पुरुषने मधुर अत्यन्त रक्ताविरहमें अधिक उष्ण श्वास से संतप्त स्त्री के ओष्ठरूपी पल्लव को त्याग करके रसयुक्त नेत्र का चुम्बन किया ॥

५५–परिजनों से खाली केवल रतियुक्त स्त्री और पुरुष वाला बड़ागृह लक्ष्मीके पतिविष्णुसे सेवन कियेगये युगके अन्त के समुद्रकी तुल्यताको प्राप्तहुआ ॥

५६--आवृतान्यपि निरन्तरमुच्चै-
र्योपितामुरसिजद्वितयेन।
रागिणामित इतो विमृशद्भिः
पाणिभिर्जगृहिरे हृदयानि॥

५७--कामिनामसकलानि विभुग्नैः
स्वेदवारिमृदुभिः करजाग्रैः।
अक्रियन्त कठिनेषु कथञ्चित्
कामिनीकुचतटेषु पदानि॥

५८--सोष्मणस्तनशिलाशिखराग्रा-
दात्तघर्मसलिलैस्तरुणानाम्।
उच्छ्वसत्कमलचारुषु हस्तै-
र्निम्ननाभिसरसीषु निपेते॥

५९--आमृशद्भिरभितो वलिवीची-
र्लोलमानविततांगुलिहस्तैः।
सुभ्रुवामनुभवात् प्रतिपेदे
मुष्टिमेयमिति मध्यमभीष्टैः॥

६०--प्राप्य नाभिनदमज्जनमाशु
प्रस्थितं निवसनग्रहणाय।
औपनीविकमरुन्ध किल स्त्री
वल्लभस्य करमात्मकराभ्याम्॥

६१--कामिनः कृतरतोत्सवकाल-
क्षेपमाकुलवधूकरसंगि।
मेखलागुणविलग्नमसूया-
न्दीर्घसूत्रमकरोत्परिधानम्॥

५६--उन्नत दोनों स्तनोंसे छिद्रके विना आच्छादन कि
स्त्रियों के हृदय इधर उधर ढूंढतेहुए अनुरागयुक्तों
ने ग्रहण किये ॥

५७--स्वेदके जलसे कोमल नम्र कामियों के नखाग्रों
स्त्रियोंके स्तन तटोंमें किसी प्रकार थोड़े घाव कि

५८--उष्णतायुक्त स्तनरूपी शिलाके शिखरों के अग्रभा
स्वेद वाले युवापुरुषों के हाथ प्रफुल्लित कमल
सुन्दर गंभीर नाभिरूपी तड़ागमें गिरे ॥

५९--तरंगोंके समान त्रिवलियों को चारों ओर से पा
चल और फैलाई हुई उंगलियों से युक्त हाथोंसे
ने स्त्रियोंकी कटिको मुट्ठीसे मापनेके योग्यहै यह
से जाना ॥

६०--नाभिरूपी तड़ागमें मज्जन करके शीघ्र वस्त्रों के अ
नेको नीवी (स्त्रीकीकमरमें वस्त्रकी गांठ) के स
प्रियके हाथको स्त्रीने अपने हाथों से रोका ॥

६१--व्याकुल बधूके करमें लगे हुए क्षुद्रघंटिकारूपी सु
हुए दीर्घसूत्रवाले रतिरूपी उत्सवके समयको विल
वाले अधोवस्त्रने कामीकी ईर्षा करी ॥

६२--अम्बरं विनयतः प्रियपाणे-
योषितश्च करयोः कलहस्य।
वारणामिव विधातुमभीक्ष्णं
कक्ष्यया च वलयैश्च शिशिञ्जे॥

६३--ग्रन्थिमुद्ग्रथयितुं हृदयेशे
वाससः स्पृशति मानधनायाः।
भ्रूयुगेण सपदि प्रतिपेदे
रोमभिश्च सममेव विभेदः॥

६४--आशु लंघितवतीष्टकराग्रे
नीविमर्द्धमुकुलीकृतदृष्ट्या।
रक्तवैणिकहताधरतन्त्री-
मण्डलक्कणितचारु चुकूजे॥

६५--आयतांगुलिरभूदतिरिक्तः
सुभ्रुवां कृशिमशालिनि मध्ये।
श्रोणिषु प्रियकरः पृथुलासु
स्पर्शमाप सकलेन तलेन॥

६६--चक्रुरेव ललनोरुषु राजीः
स्पर्शलोभवशलोलकराणाम्।
कामिनामनिभृतान्यपि रम्भा-
स्तम्भकोमलतलेषु नखानि॥

६७--ऊरुमूलचपलेक्षणमघ्नन्
यैर्वतंसकुसुमैः प्रियमेताः।
चक्रिरे सपदि तानि यथार्थं
मन्मथस्य कुसुमायुधनाम॥

६२–वस्त्रको हटाते हुए प्रियके हाथके और स्त्रीके हाथोंके कलह को मानों निवृत्त करने के लिये क्षुद्रघंटिका और कंकण शब्दायमान हुए ॥

६३–प्रियके वस्त्रकी ग्रन्थिके खोलने के लिये स्पर्शकरने पर मा- नयुक्त स्त्रीके भृकुटियों का युग और रोम शीघ्रएक साथही भंग और हर्षको प्राप्तहुए ॥

६४–प्रियके कराग्रके वस्त्र की ग्रन्थिको शीघ्रउल्लंघन करनेपर आधेबन्द नेत्रवाली स्त्रीने गानमें प्रवीण वीणाबजाने वाले से बजाये गये सूक्ष्म वीणाओं के समूहके शब्दके तुल्य सुन्दर शब्दकिया ॥

६५–बड़ी अंगुली वाले प्रियका हाथ कृशतासे शोभित स्त्रियों की कटिमें अधिकहुआ विस्तार युक्त नितम्बों में संपूर्ण कर- तल स्पर्शको प्राप्तहुआ ॥

६६–स्पर्शके लोभवशसे चंचल हाथ वाले कामियोंके नखोंने के- लेके स्तम्भकेतुल्य कोमलतलवाली जंघाओंमेंरेखाकरीं ॥

६७–यह स्त्रियां जंघाओं के मूलमें चंचल नेत्रवाले प्रियको जि- नवसन्तके पुष्पोंसे ताड़नाकरती थीं उनवसन्तके पुष्पोंने कामदेवका कुसुमायुधनाम यथार्थकिया ॥

६८--धैर्य्यमुल्वणमनोभवभावा
वामताञ्च वपुरर्पितवत्यः ।
व्रीडितं ललितसौरतधार्ष्ट्या-
स्तेनिरेऽभिरुचितेषु तरुण्यः ॥
६९--पाणिरोधमविरोधितवाञ्छ-
म्भर्त्सनाश्च मधुरस्मितगर्भाः ।
कामिनः स्म कुरुते करभोरू-
र्हारि शुष्करुदितञ्च सुखेऽपि ॥

७०--वारणार्थपदगद्गदवाचा-
मीर्ष्यया मुहुरपत्रपया च ।
कुर्वते स्म सुदृशामनुकूल-
म्प्रातिकूलिकतयैव युवानः ॥
७१--अन्यकालपरिहार्यमजस्र-
न्तद् द्वयेन विदधे द्वयमेव ।
धृष्टता रहसि भर्तृषु ताभि-
र्निर्दयत्वमितरैरबलासु ॥
७२--बाहुपीडनकचग्रहणाभ्या-
माहतेन नखदन्तनिपातैः ।
बोधितस्तनुशयस्तरुणीना-
मुन्मिमील विशदं विषमेषुः ॥

६८–स्त्रियोंने उत्पन्न रतिके रागवाली भी (होकर) प्रियों में उदासीनताकरी, शरीरके अर्पणकरने वाली भी होकर वक्रताकी, सुन्दर रतिकी प्रगल्भता वालीभी होकर लज्जाकी ॥

६९–करभ (कलाई से ऊपर कनिष्ठा उंगली तक जो हथेली का बाहरका भाग) के तुल्यजंघा वाली स्त्रीने प्रियके मनोरथको न रोककर प्रियके हाथको रोका भीतर मनोहर मन्द हास्य वाली तर्जना (धमकाने कीसी बातें) करीं और सुखहोने परभी मनोहर शुष्करोदन (मिथ्यारोदन) किया ॥

७०–ईर्षा और निर्लज्जता से वारंवार निषेधवाचक शब्दों के प्रयोग करने में गद्गद वचन वाली स्त्रियोंकी प्रतिकूलता के आचरण करने हांसे युवा पुरुषों ने अनुकूल किया ॥

७१–अन्य समयमें त्याग करने के योग्य दो बातें दोनों ने कीं, एकान्त में उन स्त्रियोंने पतियों में धृष्टता करी, और अन्यों (पतियों) ने स्त्रियोंमें निर्दयता की, ॥

७२–स्त्रियोंके शरीरमें रहने वाला कामदेव निर्दय आलिङ्गनसे केशोंके खींचने से ताडन करने से और नखदन्तों के घावोंसे जगाये जाने पर जडतारहित होकर जगा ॥

७३--कान्तया सपदि कोऽप्युपगूढः
प्रौढपाणिरपनेतुमियेष ।
संहतस्तनतिरस्कृतदृष्टि-
र्भ्रष्टमेव न दुकूलमपश्यत् ॥

७४--आहतं कुचतटेन तरुण्याः
साधु सोढममुनेति पपात ।
त्रुट्यतः प्रियतमोरसि हारात्
पुष्पवृष्टिरिव मौक्तिकवृष्टिः ॥

७५--सीत्कृतानि मणितं करुणोक्तिः
स्निग्धमुक्तमलमर्थवचांसि ।
हासभूषणरवाश्च रमण्याः
कामसूत्रपदतामुपजग्मुः ॥

७६--उद्धतैर्निभृतमेकमनेकै-
श्छेदवन्मृगदृशामविरामः ।
श्रूयते स्म मणितं कलकाञ्ची-
नूपुरध्वनिभिरक्षतमेव ॥

७७--ईदृशस्य भवतः कथमेत-
ल्लाघवम्मुहुरतीव रतेषु ।
क्षिप्तमायतमदर्शयदुर्व्यां
काञ्चिदाम जघनस्य महत्त्वम् ॥

७८--प्राप्यते स्म गतचित्रकचित्रै-
श्चित्रमार्द्रनखलक्ष्म कपोलैः ।
दध्रिरेऽथ रभसच्युतपुष्पाः
स्वेदबिन्दुकुसुमान्यलकान्ताः ॥

७३–कान्ता से शीघ्र आलिंगन किये गये किसी पुरुष ने व्यग्र (व्याकुल) हाथ वाला होकर डुपट्टा खेंचने चाहा, मिले हुए स्तनोंसे तिरस्कारकी हुई दृष्टिवाला होकर गिरे हुए डुपट्टेही को नहीं देखा ॥

७४–स्त्रीके स्तनतटसे ताड़नको इसने अच्छे प्रकारसे सहलिया इसी कारण टूटे हुए हारसे पुष्पवृष्टि के समान मोतियों की वृष्टि प्रियतमके हृदय पर हुई ॥

७५–स्त्रीके शीत्कार, (शीशी करना) रतिके शब्द, करुणा के वचन, प्रेमसे आर्द्र वचन निषेधार्थक वचन, और हास्य और आभूषणोंके शब्द कामके सूत्रकी अर्थता को प्राप्त हुए ॥

७६–सूक्ष्म अकेला स्त्रियोंका रतिका शब्द स्थूल वहुत लगातार मधुर क्षुद्रघंटिका और नूपुरके शब्दोंसे नहीं तिरस्कार किया गयाही सुना गया ॥

७७–रतिमें पृथ्वी पर फेंकागया दीर्घ क्षुद्रघंटिका का सूत्र इस प्रकारके (बहुतबड़े) भी तुम्हारी रतिमें वारंवार किस प्रकार ऐसी लघुता है इस रीतिसे जघनके महत्त्वको दिखाता भया ॥

७८–छूटेहुए तमालकी पत्ररचनावाले कपोलों ने आर्द्रनखक्षतरूपी चित्ररचनाको प्राप्त किया घबराहटसे गिरेहुए पुष्पवाले अलकों के अग्रभागोंमें स्वेदके विन्दुरूपी पुष्पोंको धारण किया ॥

७९--यद्यदेव रुरुचे रुचिरेभ्यः
सुभ्रुवो रहसि तत्तदकुर्वन्।
आनुकूलिकतया हि नराणा-
माक्षिपन्ति हृदयानि तरुण्यः॥

८०--प्राप्य मन्मथरसादतिभूमि-
न्दुर्वहस्तनभराः सुरतस्य।
शश्रमुः श्रमजलार्द्रललाट-
श्लिष्टकेशमसितायतकेश्यः॥

८१--संगताभिरुचितैश्चलितापि
प्रागमुच्यत चिरेण सखीव।
भूय एव समगंस्त रतान्ते
ह्री वधूभिरसहा विरहस्य॥

८२--प्रेक्षणीयकमिव क्षणमासन्
ह्रीविभंगुरविलोचनपाताः।
संभ्रमद्रुतगृहीतदुकूल-
च्छाद्यमानवपुषः सुरतान्ताः॥

८३--अप्रभूतमतनीयसि तन्वी
काञ्चिधाम्नि पिहितैकतरोरु।
क्षौममाकुलकरा विचकर्ष
क्रान्तपल्लवमभीष्टतमेन॥

८४--मृष्टचन्दनविशेषकभक्ति-
र्भ्रष्टभूषणकदर्थितमाल्यः।
सापराध इव मण्डनमासी-
दात्मनैव सुदृशामुपभोगः॥

७९–प्रियोंको जो जो चेष्टा करना रुचताथा स्त्रियां एकान्तमें वही वह करतीथीं क्योंकि स्त्रियां अनुकूल होनेहीसे पुरुषों के हृदयोंको हरलेतीहैं ॥

८०–दुःखसेलेचलने के योग्य स्तनवालीं श्याम और दीर्घ केशवाली (स्त्रियां) कामदेवके रागसे रतिकीपरा काष्ठा को प्राप्त होकर स्वेदके जलसे आर्द्र ललाटमें केशोंके चिपकनेपर थकगईं ॥

८१–उचित प्रियतमों से संगमको प्राप्त स्त्रियोंने चलीहुई भी लज्जाको सखी के तुल्य देरमें छोड़ाथा (परन्तु) रति के अन्त में विरहको न सहती हुई फिरभी सखीके तुल्य बधुओं से मिली ॥

८२–लज्जासे भंगहुए दृष्टियों के पातवाले घबराहट से शीघ्र ग्रहणकिये गये डुपट्टेसे आच्छादित शरीर वाले रतिके अन्त, क्षणभर तमाशे के समान हुए ॥

८३–दुर्बल शरीरवाली स्त्रीने प्रीतमसे ग्रहणकिये गये अंचल वाले बड़े जंघन (कटिके अग्रभाग) में आच्छादनकरने को नहीं समर्थ एकजंघा के आच्छादन करने वाले डुपट्टे को व्याकुल हाथ वाली होकरखेंचा ॥

८४–छुटेहुए चन्दन और पत्ररचनावाले गिरे हुए आभूषणवाले हारों के दूषित करने वाले संभोगने मानों अपराधकिया (कि) स्त्रियों का शृंगार आपही आप हुआ ॥

८५--योषितः पतितकाञ्चनकाञ्चौ
मोहनातिरभसेन नितम्बे।
मेखलेव परितः स्म विचित्रा
राजते नवनखक्षतलक्ष्मीः॥

८६—भातु नाम सुदृशान्दशनांकः
पाटलो धवलगण्डतलेषु।
दन्तवाससि समानगुणश्रीः
सम्मुखोऽपि परभागमवाप॥

८७—सुभ्रुवामधिपयोधरपीठं
पीडनैस्त्रुटितवत्यपि पत्युः।
मुक्तमौक्तिकलघुर्गुणशेषा
हारयष्टिरभवद् गुरुरेव॥

८८—विश्रमार्थमुपगूढमजस्रं
यत्प्रियैः प्रथमरत्यवसाने।
योषितामुदितमन्मथमादौ
तद् द्वितीयसुरतस्य बभूव॥

८९—आस्तृतेऽभिनवपल्लवपुष्पै-
रप्यनारतरताभिरताभ्यः।
दीयते स्म शयितुं शयनीये
न क्षणः क्षणदयापि वधूभ्यः॥

९०—योषितामतितरान्नखलूनं
गात्रमुज्ज्वलतया न खलूनम्।
क्षोभमाशु हृदयन्नयदूनां
रागवृद्धिमकरोन्न यदूनाम्॥

८५—रतिकी घबराहट से गिरीहुई सुवर्णमय क्षुद्रघंटिका वाले नितम्बमें सब ओर से विविध रचना वाली नखक्षतों की लक्ष्मी क्षुद्रघंटिका के समान शोभित हुई ॥

८६—स्त्रियों का रक्तदन्तक्षत श्वेतकपोलोंमें शोभितहोवे (पर) ओष्ठमें तो समानगुणकी शोभा वाला और सन्मुखभी पर भाग (अत्यन्त उत्कृष्टता और पीछेका भाग)को प्राप्तहुआ॥

८७—स्त्रियोंके स्तन तटमें पतिके दबाने से टूटीहुई भी गिरे हुए मोती वाली लघु केवल बचेहुए सूत्रवाली भी माला गुरु (प्रशंसाकेयोग्य) हुई ॥

८८—स्त्रियों का पहली रतिके अन्तमें श्रम के दूरकरने के लिये प्रियोंके द्वाराजोआलिंगन (हुआ) वहकामका उत्पन्नकरने वाला आलिंगन दूसरी रतिके आदिमें हुआ ॥

८९—निरन्तर रतिमें आसक्त बधुओंको क्षणदा (रात्रि) नेभी नवीन पल्लव और पुष्पोंसे आच्छादित भी शय्यामें सोने के लिये क्षणभी नहीं दिया ॥

९०—नखोंसे क्षत,उज्ज्वलतासे नहींन्यूनशीघ्रहृदयकोक्षोभ प्राप्त करातेहुए स्त्रियोंके शरीर ने यदुवंशियो की रागकी वृद्धि कमनहीं की ॥

९१–इति मदमदनाभ्यां रागिणः स्पष्टरागा-
ननवरतरतश्रीसंगिनस्तानवेक्ष्य ।
अभजत परिवृत्तिं साथ पर्य्यस्तहस्ता
रजनिरवनतेन्दुर्लज्जयाधोमुखीव ॥

इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये सुरतवर्णनो नाम
दशमः सर्गः समाप्तः १० ॥

९१—इस प्रकार मद और कामदेवसे प्रकट रागवाले निरन्तर रतिकी शोभासेयुक्त रागयुक्त स्त्री और पुरुषों को देखकरदेखने के उपरान्त फेंके हुए हस्त (हस्तनक्षत्रऔर हाथ) वाली नम्र चन्द्रमावाली वह रात्रि लज्जासे मानों अधोमुख वाली होकर निवृत्त होनेलगी ॥

इति श्रीमाघकृतमहाकाव्यांशिशुपालबधस्य भाषानुवादे सुरत वर्णनोनामदशमः सर्गः समाप्तः १० ॥

एकादशः सर्गः ॥

वन्दिजनैः प्रत्यूपवर्णनपूर्व्वकं भगवते श्रीकृष्णाय रात्र्यवसान-निवेदनम् ॥

१—श्रुतिसमधिकमुच्चैः मञ्चमम्पीडयन्तः
सततमृपभहीनम्भिन्नकीकृत्य षड्जम् ।
प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकण्ठाः
परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय ॥

२—रतिरभसविलासाभ्यासतान्तन्न याव-
न्नयनयुगममीलत्तावदेवाहतोऽसौ ।
रजनिविरतिशंसी कामिनीनाम्भविष्य-
द्विरहविहितनिद्राभंगमुच्चैर्मृदंगः ॥

३—स्फुटतरमुपरिष्टादल्पमूर्तेर्ध्रुवस्य
स्फुरति सुरमुनीनाम्मण्डलं व्यस्तमेतत् ।
शकटमिव महीयः शैशवे शार्ङ्गपाणे-
श्चपलचरणकाब्जप्रेरणोत्तुंगिताग्रम् ॥

४—प्रहरकमपनीय स्वन्निदिद्रासतोच्चैः
प्रतिपदमुपहूतः केनचिज्जागृहीति ।
मुहुरविशदवर्णा निद्रया शून्यशून्यां
ददद‌पि गिरमन्तर्बुध्यते नो मनुष्यः ॥

ग्यारहवां सर्ग ॥

प्रातःकालके वर्णनपूर्वक वन्दीजनों से श्रीकृष्णजी से रात्रिके अन्तहोजाने का निवेदन करना ॥

१–ध्वनिके विकारसे रहित दूरतक जाने वाले मधुरस्वरवाले वन्दीजनों ने श्रुति (स्वरोंकेप्रारम्भके अंग) योंसे अधिक षड्जनाम स्वरको अलग करके पंचमस्वरको छोड़ते हुए वीणा आदिक वाद्योंसे युक्त ऋषभनाम स्वरसे रहितकरके रात्रिका लौटना इसप्रकार श्रीकृष्णजीसे कहा (गान के द्वाराकहा) ॥

२–रतिके वेगसे विलासोंके अभ्यासरो म्लान दोनों नेत्र जब तक नहीं बन्दहुए तबतक रात्रिके अन्तका कहने वाला उच्चस्वरसे मृदंग, स्त्रियोंके होनेवाले विरह के द्वारा निद्रा को भंगकरके बजाया गया ॥

३–सूक्ष्म विम्बवाले ध्रुवजीके ऊपर अत्यन्त उज्ज्वल पृथक् पृथक् सप्तर्षियोंका मंडल श्रीकृष्णजी के बालावस्था में चंचलकमलरूपी चरणकी प्रेरणासे उठे हुए अग्रभागवाले बड़े शकट (शकटासुरका शरीर) के समानशोभितहुआ॥

४–अपने प्रहरको व्यतीत करके सोने की इच्छा करते हुए किसी पुरुष से उठो इस प्रकार पद पद पर उच्चस्वर से बुलायागया भी पुरुष वारंवार निद्रासे नहीं स्पष्टअक्षरवाले शून्यप्रकार वाले उत्तर को देताहुआभी नहीं जगता ॥

५-विपुलतरनितम्बाभोगरुद्धे रमण्याः
शयितुमनधिगच्छन् जीवितेशोऽवकाशम्
रतिपरिचयनश्यन्नैद्रतन्द्रः कथञ्चि-
द्गमयति शयनीये शर्वरीं किं करोतु ॥

६-क्षणशयितविबुद्धाः कल्पयन्तः प्रयोगा-
नुदधिमहति राज्ये काव्यवद्दुर्विगाहे ।
गहनमपररात्रप्राप्तबुद्धिप्रसादाः
कवयइवमहीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम् ॥

७-क्षितितटशयनान्तादुत्थितन्दानपंक
प्लुतबहुलशरीरं शाययत्येप भूयः ।
मृदुचलदपरान्तोदीरितान्दूनिनाद-
ङ्गजपतिमधिरोहः पक्षकव्यत्ययेन ॥

८-द्रुततरकरदक्षाः क्षिप्तवैशाखशैले
दधाति दधनि धीरानारवान्वारिणीव ।
शशिनमिव सुरौघाः सारमुद्धर्त्तुमेते
कलशिमुदधिगुर्वीं वल्लवा लोडयन्ति ॥

९-अनुनयमगृहीत्वा व्याजसुप्ता पराची
रुतमथ कृकवाकोस्तारमाकर्ण्य कल्ये ।
कथमपि परिवृत्ता निद्रयाऽन्धा किलस्त्री
मुकुलितनयनैवाश्लिष्यति प्राणनाथम् ॥

५--स्त्रीके बहुत बड़े नितम्बोंके विस्तारसे रुकीहुई शय्यामें सोने के लिये अवकाशको नहीं प्राप्तहोने वाला प्रियतम वारंवार रतिकेपरिचय (आवृत्ति) से नष्ट हुई निद्राके आलस्यवाला रात्रिको किसी प्रकार व्यतीत करताहै और क्या करे ॥

६—क्षणभर शयनकरके उठे हुए राजालोग कवियों के समान पिछली रात्रिमें बुद्धिके प्रकाशको प्राप्तहोते हुए समुद्रके तुल्यगंभीर दुःखसे प्रवेश करने के योग्य काव्यके समान राज्यमें प्रयोगों (सामदानादि उपायों और अर्थगुणउत्तम शब्दादिकों) की कल्पनाकरते हुए गहन अर्थ जात (पुरुषोंके धर्म्म कामादिक और वाच्य लक्ष्य आदिक अर्थों के समूह) को विचारकरते हैं ॥

७—पृथ्वी तलरूपी शयनके स्थानसे उठे हुए मदकी कीच से भरे हुए बडे शरीर वाले गजपति को, यह हाथीवान् धीरे से चलायमान दूसरे चरण से जंजीर के शब्दको उत्पन्न कराके दूसरी करवटसे शयन कराता है ॥

८—शीघ्र हाथ चलाने वाले और चतुर गोपाल पर्व्वतके तुल्य पड़ी हुई मथानी वाले गंभीर शब्दयुक्त जलके समान दधिमें, चन्द्रमाको देवता लोगों के समान मक्खन निकालने के लिये समुद्रके तुल्य बड़े चरुको मथते हैं ॥

९—प्रार्थनाको न ग्रहण करके पीछेको मुख करने वाली कपटसे सोनेवाली स्त्री इसके उपरान्त प्रातःकाल उच्चस्वरसे कुक्कुटके शब्दको सुनके किसीप्रकार लौटीहुई निद्रासे अन्धनेत्रोंको बन्दकियेहुएही पतिको आलिंगन करती है ॥

१०—गतमनुगतवीणैरेकतां वेणुनादैः
कलमविकलतालं गायकैर्बोधहेतोः ।
असकृदनवगीतंगीतमाकर्णयन्तः
सुखमुकुलितनेत्रा यान्ति निद्रान्नरेन्द्राः ॥

११—परिशिथिलितकर्ण ग्रीवमामीलिताक्षः
क्षणमयमनुभूय स्वप्नमूर्ध्वज्ञुरेव ।
रिरसयिषति भूयः शष्पमग्रे विकीर्णं
पटुतरचपलौष्ठः प्रस्फुरत्प्रोथमश्वः ॥

१२—उदयमुदितदीप्तिर्याति यः संगतौ मे
पतति न वरमिन्दुः सोऽपरामेष गत्वा ।
स्मितरुचिरिव सद्यः साभ्यसूयम्प्रभेति
स्फुरति विशदमेषा पूर्वकाष्ठांगनायाः ॥

१३—चिररतिपरिखेदप्राप्तनिद्रासुखानां
चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः ।
अपरिचलितगात्राः कुर्वते न प्रियाणा-
मशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदन्तरुण्यः ॥

१४—कृतयवलिमभेदैः कुंकुमेनेव किञ्च-
न्मलयरुहरजोभिर्भूषयन् पश्चिमाशाम् ।
हिमरुचिररुणिम्ना राजते रज्यमानै-
र्जरठकमलकन्दच्छेदगौरैर्मयूखैः ॥

१०—वीणाओंके तुल्य वांसोंके शब्दों से एकताको प्राप्त मधुर नहीं तुल्यकालवाले जगानेकेलिये गानेवालोंसे नहीं निन्दाकरने के योग्य गीतको सुनतेहुए राजालोग सुखपूर्वक नेत्रोंको बन्द करके शयन करतेभये ॥

११—यह घोड़ा कान और ग्रीवाको शिथिलकरके नेत्रोंका मूंदने वाला उठेहुए घुटनेवाला क्षणमात्र निद्राका अनुभवकरके फिर समर्थ और चंचल ओष्ठवाला होकर नाकको फड़काके आगे पड़ीहुई घासको स्वादुलेनेकी इच्छा करताहै ॥

१२—जो चन्द्रमा मेरी संगतिमें बड़ी दीप्तिवाला होकर हृदयको प्राप्तहोताहै वह यह चन्द्रमा अपर (पश्चिम दिशा और अन्य स्त्री) को प्राप्तहोकर पतित होताहै यह अच्छा नहीं है इसप्रकार शीघ्र ईर्षा सहित होकर पूर्व दिशारूपी नायिकाके मन्दहास्यकी द्युतिके समान यह प्रभा निर्मल प्रकाशित होतीहै ॥

१३—पीछेभी शयनकरके पहलेउठीहुई स्त्रियां नहीं चंचलशरीर वाली होकर, बहुतकाल रतिके परिश्रमसे निद्राके सुखको प्राप्तप्रियोंके नहीं शिथिल भुजाओंके चक्रसे आलिंगनका भेदनहीं करती हैं ॥

१४—चन्द्रमा रक्तासे रंगीहुई प्राचीन कमलकी डंडीके खंडों के समान श्वेत किरणों से केशरके द्वारा कुछन्यून श्वेतता वाली चन्दनकी रजोंके समान पश्चिम दिशाको, आभूषित करताहुआ शोभित होताहै ॥

१५—दधदसकलमेकंखण्डितामानमद्भिः
श्रियमपरमपूर्णामुच्छ्वसद्भिःपलाशैः।
कलरवमुपगीते षट्पदौघेन धत्तः
कुमुदकमलषण्डे तुल्यरूपामवस्थाम्॥

१६—मदरुचिमरुणेनोद्गच्छता लम्भितस्य
त्यजत इव चिराय स्थायिनीमाशु लज्जाम्।
वसनमिव मुखस्य स्रंसते सम्प्रतीदं
सितकरकरजालं वासवाशायुवत्याः॥
१७—अविरततरलीलायासजातश्रमाणा
मुपशममुपयान्तं निःसहेऽङ्गेऽङ्गनानाम्।
पुनरुपसि विविक्तैर्मातरिश्वावचूर्ण्य
ज्वलयतिमदनाग्निंमालतीनांरजोभिः॥
१८—अनिमिपमविरामा रागिणां सर्वरात्रं
नवनिधुवनलीलाः कौतुकेनातिवीक्ष्य।
इदमुदवसितानामस्फुटालोकसम्प-
न्नयनमिव सनिद्रंघूर्णते दैपमर्चिः॥
१९—विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृंगमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वातः।
प्रमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा-
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः॥

ोकावेलियों का समूह, बन्दहोते हुए पत्रोंसे आधी
ुई शोभाको धारण करताहुआ दूसरा कमलों का
फूलतेहुए पत्रोंसे नहीं पूर्ण शोभाको धारण करता
भ्रमरों के समूहसे मधुर स्वरसे गानकियेगये कोका-
ग़ौर कमलों के समूह समानरूप की अवस्था को
करते हैं ॥

नय चन्द्रमाकी किरणों का समूह उदयहुए अरुणसे
दीप्तिकोप्राप्तकियेगये बहुत कालसे स्थित लज्जाको
ागकरतेहुए पूर्वदिशाकेमुखकेवस्त्रकेसमानगिरताहै॥

ार रतिकी क्रीड़ाके परिश्रमसे उत्पन्नहुए श्रमवाली
के असमर्थ शरीरमें शान्तहुई कामदेवरूपी अग्निको
ातःकाल निर्मल मालतीकी रजोंसे युक्तकरके दीप्त
है ॥

हीं स्फुटप्रकाशकी सम्पत्तिवाली दीपककी ज्वाला,
ार निरन्तर कामियों के रतिके विलासोंको विना
लगाये देखकरनिद्रायुक्त मानों गृहोंकानेत्र (दीपक
ाला) भ्रमित होतीहै ॥

ैर कामदेव से मदयुक्त युवावस्थासेप्रमत्त, स्त्रियोंके
विलासके द्वारा श्रमसे जो स्वेद उसके नाश करने
ाण पवन, प्रफुल्लितकमलोंकी सुगन्धियोंसे भ्रमरों
मूहोंको मोहित करता हुआ, पुष्प रसको सुगन्धित
मन्द २ चलता है ॥

२०—लुलितनयनताराः क्षामवक्त्रेन्दुविम्बा
रजनय इव निद्राक्लान्तनीलोत्पलाक्ष्यः ।
तिमिरमिव दधानाः स्रंसिनः केशपाशा-
नवनिपतिगृहेभ्यो यान्त्यमूर्वारवध्वः ॥

२१—शिशिरकिरण कान्तं वासरान्तेऽभिसार्य
श्वसनसुरभिगन्धिः साम्प्रतं सत्वरेव ।
व्रजति रजनिरेषा तन्मयूखांगरागैः
परिमिलितमनिन्द्यैरम्बरान्तं वहन्ती ॥
२२—नवकुमुदवनश्रीहासकेलिप्रसङ्गा-
दधिकरुचिरशेषामप्युपाज्जागरित्वा ।
अयमपरदिशोऽङ्के मुञ्चति स्रस्तहस्तः
शशिपुरिवपाण्डुम्लानमात्मानमिंदुः ॥

२३—सरभसपरिरम्भारम्भसंरम्भभाजा
यदधिनिशमपास्तं वल्लभेनांगनायाः ।
वसनमपि निशान्ते नेष्यते तत्प्रदातुं
रथचरणविशालश्रोणिलोलेक्षणेन ॥

२०—लुलित नयन तार(निद्रासे व्याकुल नेत्रकी पुतली और नहीं अच्छे प्रकारसे प्रकाशित नक्षत्र) वाली म्लानचन्द्रमारूपी मुखवाली और मुखरूपी चन्द्रमावाली निद्रा से और बन्द होने से म्लाननील कमलरूपी नेत्रवाली और नेत्ररूपी नीलकमलवाली गिरे हुए केशोंके समूहरूपी अन्धकारवाली और अन्धकाररूपी केशों के समूहवाली रात्रियों के समान वेश्याएं राजा लोगों के घरसे जाती हैं॥

२१—यह रात्रि दिन के अन्तमें चन्द्रमारूपी प्रिय के समीप जाकर इस समय श्वासोंसे सुगन्धित मनोहर किरणरूपी अंगरागों से मिलेहुए अम्बरान्त (आकाश और वस्त्रान्त) को धारण करती हुई मानों शघ्रिता युक्त होकर जाती है ॥

२२—अधिक दीप्तिवाला यह चन्द्रमा नवीन कोकाबेली के वनकी लक्ष्मी के हास (प्रफुल्लित होना और हँसना) रूपी केलि के प्रसंगसे संपूर्ण रात्रिभर जागकर सोने की इच्छा करने वाले के समान गिरेहुए हस्त (हाथ और नक्षत्र विशेष) वालाहोकर पश्चिम दिशाके अंक (समीप और गोदी)में पांडु वर्ण वाले म्लान अपने शरीरको छोड़ता है ॥

२३—रात्रिमें वेगयुक्त आलिंगनके व्यापारमें व्याकुलताको प्राप्त प्रियने नायिका का जो वस्त्रले लियाथा वह वस्त्र प्रातःकालमें भी चक्रके समान विशाल नितम्बों में चंचल दृष्टि वाले प्रियने देनेकी इच्छा नहीं की ॥

२४–सपदि कुमुदिनीभिर्मीलितं हा क्षपापि
क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः ।
इति दयितकलत्रश्चिन्तयन्नंगमिन्दु
र्वहति कृशमशेषं भ्रष्टशोभं शुचेव ॥

२५–व्रजति विषयमक्ष्णामंशुमाली न यावत्
तिमिरमखिलमस्तन्तावदेवारुणेन ।
परपरिभवि तेजस्तन्वतामाशु कर्त्तुं
प्रभवति हि विपक्षोच्छेदमग्रे सरोऽपि ॥

२६–विगततिमिरपंकम्पश्यति व्योम यावत्
धुवति विरहखिन्नः पक्षती यावदेव ।
रथचरणसमाह्वस्तावदौत्सुक्यनुन्ना
सरिदपरतटान्तादागता चक्रवाकी ॥

२७–मुदितयुवमनस्कास्तुल्यमेव प्रदोषे
रुचमदधुरुभय्यः कल्पिता भूषिताश्च ।
परिमलरुचिराभिर्न्यक्कृतास्तु प्रभाते
युवतिभिरुपभोगान्नीरुचः पुष्पमालाः ॥

२८–विलुलितकमलौघः कीर्णवल्लीवितानः
प्रतिवनमवधूताशेषशाखिप्रसूनः ।
क्वचिदयमनवस्थःस्थास्नुतामेति वायु-
र्वधुकुसुमविमर्दोद्गन्धिवेश्मान्तरेषु ॥

२४–शीघ्र कुमुदिनी बन्दहोगई, हाय रात्रिभी क्षयको प्राप्तहुई, वह संपूर्ण नक्षत्र चलेगये, इसशोकसे मानों विचार करता हुआ प्रिय स्त्रीवाला चन्द्रमा, दुर्बल संपूर्ण शोभारहित शरीरको धारण करता है ॥

२५–सूर्य्य जबतक नहीं दिखाई पड़े तभीतक अरुण ने संपूर्ण अन्धकार नाशकरदिया क्योंकि अन्योंके तिरस्कार करने वाले तेजके विस्तार करने वालोंका आगे चलनेवालाभी शत्रुके नाशकरने में शीघ्र समर्थ होताहै ॥

२६–विरहसे खिन्न चक्रवाक, कीचके समान अन्धकारसे रहित आकाशको जब तक देखे, पक्षके मूलोंको जब तक कँपावे तभीतक चक्रबाककी स्त्री उत्कण्ठासे प्रेरणाकी गई नदी के दूसरे किनारे से आई ॥

२७–रात्रि के समय युवापुरुषों के चित्तोंकी प्रसन्न करने वाली भोग करने के लिये तैयार कीगई आभूषित दो प्रकार की स्त्री और मालाओं ने तुल्य शोभा धारणकी, प्रातःकालतो भोग करने से प्रभारहित पुष्पों की माला सुगन्धिसे सुन्दर स्त्रियों से तिरस्कार की गई ॥

२८–वनवनमें कमलोंका चंचलकरनेवाला लताओंके विस्तार का बिखरानेवाला संपूर्ण वृक्षोंके पुष्पोंका कँपानेवाला कहीं भी स्थिति को नहींप्राप्त यह पवन, वधू और पुष्पोंके रगड़ने से प्राप्त सुगन्धिवाले गृहोंके मध्यों में स्थिति को प्राप्त होता है ॥

२९–नखपदवलिनाभीसन्धिभागेषु लक्ष्यः
क्षतिषु च दशनानामंगनायाः सशेषः ।
अपि रहसिकृतानां वाग्विहीनोऽपिजातः
सुरतविलसितानां वर्णको वर्णकोऽसौ ॥

३०–प्रकटमलिनलक्ष्मा मृष्टपत्रावलीकै-
रधिगतरतिशोभैः प्रत्युषःप्रोषितश्रीः ।
उपहसित इवासौ चन्द्रमाः कामिनीना-
म्परिणतशरकाण्डापाण्डुभिर्गण्डभागैः॥

३१–सकलमपि निकामंकामलोलान्यनारी-
रतिरभसविमर्दैर्भिन्नवर्त्यंगरागे ।
इदमतिमहदेवाश्चर्य्यमाश्चर्य्यधाम्न-
स्तव खलु मुखरागो यन्नभेदम्प्रयातः ॥

३२–प्रकटतरमिमम्मा द्राक्षुरन्या रमण्यः
स्फुटमिति सविशंकं कान्तया तुल्यवर्णः।
चरणतलसरोजाक्रान्तसंक्रान्तयासौ
वपुषि नखविलेखो लाक्षया रक्षितस्ते ॥

३३–तदवितथमवादीर्यन्ममत्वम्प्रियेति
प्रियजनपरिभुक्तं यद्दुकूलन्दधानः ।
मदधिवसतिमागाःकामिनाम्मण्डनश्री-
र्व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन ॥

२९–नखक्षतों में और सन्धियोंमें दन्तक्षतों में बचाहुआ लक्षित होनेवाला स्त्रीका यहअंगराग, वाणसे रहितभी होकर एकान्तमें कियेहुए रतिकेविलासोंकावर्णन करनेवालाहै॥

३०–प्रातःकाल नष्टहुई शोभावाला प्रकट कलंकवाला यह चन्द्रमा छुटीहुई पत्ररचनावाले रतिकी शोभासे युक्त पके बाण (तृणविशेष) केसमान पाण्डुवर्णवाले स्त्रीके कपोलों से मानों हँसा गया ॥

३१–कामदेवसे चंचल सपत्नीके रतिके वेगोंमें पीडनसे सम्पूर्ण अंगरागके छूटजानेपर, आश्चर्य्यकेनिधान तुम्हारे मुखका राग जो भेदको नहीं प्राप्त हुआ यही बड़ा आश्चर्य्य है ॥

३२–अत्यन्त प्रकट इसनखक्षतको अन्य स्त्रियां न देखें इसलिये प्रियामें शंका पूर्वक तुल्य वर्णवाला यह तुम्हारे शरीर में नखक्षत चरणरूपी कमलके आघातसे लगी हुई लाक्षा से छिपाया ॥

३३–मेरी तुहीप्रियाहै यह जो कहाथा वह सत्यहै जिसकारण से प्रियाओंसे भोगकियेगये डुपट्टे को धारण करतेहुए वह तुममेरे गृहमें आयेहो क्योंकि कामियोंके शृंगारकी शोभा प्रियाओं के देखने से सफलता को प्राप्तहोती है ॥

३४–नवनखपदमंगंगोपयस्यंशुकेन
स्थगयसि पुनरोष्ठम्पाणिना दन्तदष्टम्।
प्रतिदिशमपरस्त्रीसंगशंसी विसर्प-
न्नवपरिमलगन्धः केन शक्यो वरीतुम्॥

३५–इति कृतवचनायाः कश्चिदभ्येत्य बिभ्य-
द्गलितनयनवारेर्याति पादावनामम्।
करुणमपि समर्थम्मानिनाम्मानभेदे
रुदितमुदितमस्त्रं योषितां विग्रहेषु॥
कुलकम्।

३६–मदमदनविकाशस्पष्टधार्ष्ट्योदयानां
रतिकलहविकीर्णैर्भूषणैरर्चितेषु।
विदधति न गृहेषूत्फुल्लपुष्पोपहारं
विफलविनययत्नाःकामिनीनां वयस्याः॥

३७–करजदशनचिह्नन्नैशमंगेऽन्यनारी-
जनितमितिसरोषामीर्ष्ययाशंकमानाम्।
स्मरसि न खलु दत्तं मत्तयैतत् त्वयैव
स्त्रियमनुनयतीत्थं व्रीडमानां विलासी॥

३८–कृतगुरुतरहारच्छेदमालिंग्य पत्यौ
परिशिथिलितगात्रे गन्तुमापृच्छमाने।
विगलितनवमुक्तास्थूलबाष्पाम्बुबिन्दु
स्तनयुगमबलायास्तत्क्षणं रोदितीव॥

३४--नवीन नखक्षतवाले शरीरको वस्त्रसे छिपातेहो दन्तक्षत वाले ओष्ठको हाथसे छिपातेहो दिशा दिशामें फैलनेवाले अन्यस्त्रीके संगमके कहनेवाले परिमल (रगड़ने से उत्पन्न होनेवाली सुगन्धि) नामगन्धिको किसउपायसे आच्छा-दनकरनेको समर्थहो ॥

३५--इसप्रकार उलहना देनेवाली नेत्रोंसे गिरेहुए जलवाली प्रियाके, कोई नायक डरताहुआ आकर चरणों में प्रणाम करताहै क्योंकि कलहमें स्त्रियोंका दीनभी रोदन मानियों के मानदूरकरने में समर्थ अस्त्र कहाहै ॥

३६--मद और कामके प्रकाश होनेसे स्पष्ट धृष्टताके उदय वाले कामिनियोंके रतिरूपी कलहमें फेंकेहुए आभूषणोंसेपूजित गृहोंमेंसखियां अधिकारमें व्यर्थ यत्नवाली होकर प्रफुल्लित पुष्पोंसे नहीं पूजन करतीं ॥

३७--विलासयुक्त पुरुष, शरीरमें, रात्रिमें हुए नखक्षत और दन्तक्षतोंको, सपत्नीसे कियेगये यह शंकाकरती हुई ईर्षासे क्रोधयुक्त स्त्रीको उन्मत्ततेनेही यह किये हैं क्या नहीं जान-तीहै इसप्रकारसे लज्जायुक्त (स्त्री) को अंगीकारकराताहै ॥

३८--बड़े हारके टूटनेवाले आलिंगनको करके, शरीरके शिथिल करनेवाले पतिके जानेके लिये पूछनेपर स्त्रीके स्तनों का युग, नवीन मोतीरूपी अश्रुओं को गिराकरके मानोंरो-दन करता है ॥

३९—बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहं-
ञ्चकर च किल चाटु प्रौढयोषिद्वदस्य ।
विदितमिति सखीभ्योरात्रिवृत्तं विचिन्त्य
व्यपगतमदयाह्नि व्रीडितम्मुग्धवध्वा ॥

४०—अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा
बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी ।
अनुपतति विरावैःपत्रिणां व्याहरन्ती
रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव ॥

४१—प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां
विधिविहितविरिब्धैः सामधेनरिधीत्य ।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्य्यै-
र्हुतमयमुपलीढे साधु सान्नाय्यमग्निः ॥

४२—प्रकृतजपविधीनामास्यमुद्राश्मिदन्तं
मुहुरपिहितमोष्ठैरक्षरैर्लक्ष्यमन्यैः ।
अनुकृतिमनुवेलंघट्टितोद्घट्टितस्य
व्रजतिनियमभाजाम्मुग्धमुक्तापुटस्य ॥

४३—नवकनकपिशंगं वासराणां विधातुः
ककुभि कुलिशपाणेर्भाति भासां वितानम् ।
जनितभुवनदाहा रम्भमम्भांसिदग्ध्वा
ज्वलितमिव महाब्धेरूर्ध्वमौर्वानलार्चिः ॥

३९—जिनमें मद रहित मुग्धा (नवीनयौवना) स्त्री सखियोंसे ज्ञात हुए रात्रिके वृत्तान्त को मुभ उन्मत्तने उस प्रियके आगे बहुत कुछ कहा और प्रौढ़ा स्त्रीके समान उस प्रियसे प्यारे वचन कहे ऐसा शोचकर लज्जितहुई ॥

४०—रक्त कमलों की पंक्तिके तुल्य सुन्दर हाथ और चरणों के अग्रभागवाली बहुत भ्रमरोंके तुल्य कज्जलवाले कमलके तुल्य नेत्रवाली पक्षियोंके शब्दोंसे बोलतीहुई शीघ्र उत्पन्न हुई प्रातःकालकी संध्या कन्याके समान (माताके समान) रात्रिको अनुसरण (पीछे) करतीहैं ॥

४१—अग्निके पूजन करने वालोंके घरघरमें नहीं नष्टहुई ज्वाला-वालीयह अग्नि विधिपूर्वक स्वरोंके उच्चारणकरनेवाले श्रेष्ठऋत्विक् (यज्ञकरानेवाले) लोगोंसे सामधेनी (अग्नि बालनेकी ऋचा) को पढ़करबड़े पापोंकानाश करकेअच्छे प्रकारसे हवन कियेगये सान्नाय्य (एकप्रकारकाहव्य)का स्वादु लेतीहै ॥

४२—जब कर्म के आरंभकरनेवाले नियमवालों का ओष्ठयअक्षर से वारंवार बन्दकियागया अन्य अक्षरोंसे लक्षित उठी-हुई किरणवाले दांतोंसे युक्तमुख क्षण २ में खोलीगई और बन्दकीगई सुन्दर सीपीकी तुल्यता को प्राप्तहोताहै ॥

४३—पूर्वदिशामें नवीन सुवर्ण के तुल्य पीतवर्णवाला सूर्य्यकी किरणोंका समूह समुद्रके जलोंको भस्म करके जगत् के भस्मकरने का उद्योग करनेवाली समुद्रके ऊपर बलतीहुई वड़वा नलकी ज्वालाके समान शोभित होताहै ॥

४४–विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहंगालापकोलाहलाभि-
र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्य्यतेऽर्कः॥

४५–पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः
स्फुटमनिशमतापि ज्वालया वाडवाग्नेः।
यदयमिदमिदानीमंगमुद्यन्दधाति
ज्वलितखदिरकाष्ठाङ्गारगौरं विवस्वान्॥

४६–अतुहिनरुचिनासौ केवलन्नोदयाद्रिः
क्षणमुपरिगतेन क्ष्माभृतः सर्व एव।
नवकरनिकरेण स्पष्टबन्धूकसून-
स्तवकरचितमेते शेखरम्बिभ्रतीव॥

४७–उदयशिखरिशृंगप्रांगणेष्वेष रिंगन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रःशब्दयन्त्या वयोभिः
परिपततिदिवोऽङ्के हेलया बालसूर्य्यः॥

४८–क्षणमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्तपादः
प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतमन्हाय लोकम्।
भुवनतलमशेषम्प्रत्यवेक्षिष्यमाणः
क्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः॥

४४–विस्तार कीगई बड़ी रस्सियों के तुल्य रूपवाली किरणोंसे भारी कलशके समान खींचेगये इन सूर्य्यको वेगयुक्त पक्षियोंके शब्दरूपी कोलाहल की करने वाली दिशाएं समुद्र के मध्यसे निकालती हैं ॥

४५–यह सूर्य्य रात्रिके समय समुद्रके जलमें डूबे हुए भीतर बडवानलकी ज्वालासे अत्यन्त संतप्त मानों कियेगये जिस कारणसे इस समय उदय होते हुए इस जलते हुए खैर की लकड़ीके अंगार के समान रक्तशरीरको धारणकरतेहैं ॥

४६–क्षणभर ऊपरस्थित सूर्य्यसे केवल उदयाचलही नहीं किन्तु यह सम्पूर्ण पर्व्वत क्षणभर ऊपर प्राप्त नवीन किरणों के समूहसे प्रफुल्लित गुलदुपहरिया के पुष्पोंके गुच्छोंसे बने हुए शिरो भूषण को मानों धारण करतेहैं ॥

४७–यह बाल सूर्य्य उदयाचल के शिखरोंके आँगनों में घूमते हुए पद्मिनियों से हास्य पूर्व्वक देखेगये पक्षियों के द्वारा बुलानेवाली दिव (आकाश और माता) के अंक (समीप और गोदी) में कोमल कराग्रों (हस्ताग्र और किरणाग्रों) के फैलानेवाले होकर लीला पूर्व्वक जातेहैं ॥

४८–यह सूर्य्य क्षणभर बैठेहुए पृथ्वीतलमें पाद (किरण और चरण) के रखने वाले प्रणाम करते हुए प्रसन्न लोगों को शीघ्र देखकर संपूर्ण पृथ्वीतलके देखनेकी इच्छा करतेहुए सिंहासनके तुल्य पर्व्वतके तटसे और पर्व्वतके तटकेतुल्य सिंहासनसे उठे ॥

४९–परिणतमदिराभम्भास्करेणांशुबाणै-
स्तिमिरकरिघटायाः सर्वदिक्षु क्षतायाः।
रुधिरमिव वहन्त्यो भान्ति बालातपेन
छुरितमुभयरोधोवारितं वारि नद्यः ॥

५०–दधाति परिपतन्त्यो जालवातायनेभ्य-
स्तरुणतपनभासो मन्दिराभ्यन्तरेषु ।
प्रणयिषु वनितानाम्प्रातरिच्छत्सु गन्तुं
कुपितमदनमुक्तोत्तप्तनाराचलीलाम् ॥

५१–अधिरजनि वधूभिः पीतमैरेयरिक्तं
कनकचषकमेतद्रोचनालोहितेन ।
उदयदहिमरोचिर्ज्योतिषाक्रान्तमन्त-
र्मधुन इव तथैवापूर्णमद्यापि भाति ॥

५२–सितरुचि शयनीये नक्तमेकान्तमुक्तं
दिनकरकरसंगव्यक्तकौसुम्भकान्ति ।
निजमिति रतिबन्धोर्जानतीमुत्तरीयं
परिहसति सखी स्त्रीमाददानान्दिनादौ ॥

५३–द्रुतमिव शिशिरांशोरंशुभिर्यन्निशासु
स्फटिकमयमराजद्राजताद्रिस्थलाभम् ।
अरुणितमकठोरैर्वेश्म काश्मीरजाम्भः-
स्नपितमिव तदेतद्भानुभिर्भाति भानोः॥

५४–सरसनखपदान्तर्दष्टकेशप्रमोक-
म्प्रणयिनि विदधानेयोपिता मुल्लसन्त्यः।
विदधाति दशनानां सीत्कृताविष्कृतना-
मभिनवरविभासः पद्मरागानुकारम् ॥

४९–नदियां बाल आतपसे मिलेहुए परिपक्व मदिरा के तुल्य दोनों किनारों से रुके हुए जल को किरणरूपी बाणों से सम्पूर्ण दिशाओं में मारे गये अन्धकाररूपी हाथिओं के समूहके रुधिरके समान वहती हुई शोभितहोती हैं ॥

५०–झरोखोंके छिद्रोंसे मन्दिरोंके भीतर आई हुई बालसूर्य्य की किरणें प्रातः काल जानेकी इच्छा करते हुए स्त्रियोंके प्रियों में क्रोधयुक्त कामदेव से छोडे गये तपाये हुए बाणों की शोभाको धारण करती हैं ॥

५१–रात्रिके समय स्त्रियोंसे पीगई मदिरा वाला खाली सुवर्ण-मय मदिरा पीनेका पात्र गोरोचन के तुल्य अरुण सूर्य्य के तेजसे भीतर व्याप्तहोकर इससमयभी उसीप्रकार (मद्यसे पूर्ण) शोभित होताहै ॥

५२–रात्रिके समय शय्यामें अत्यन्त श्वेतवर्णके त्यागकरनेवाले प्रातःकाल सूर्य्यकी किरणोंके संगसे प्रकट कुसुमकी का-न्तिवाले प्रियके डुपट्टेको अपना जानकर उठातीहुई स्त्रीको सखी हँसती है ॥

५३–कैलासके तटके तुल्य जो गृह रात्रियों में चन्द्रमाकी किर-णोंसे धुलकर स्फटिक मणिसे बने हुए के समान शोभित था वह यह गृह सूर्य्यकी कोमल किरणों से रक्तवर्ण किया गया केशरके जलसे सींचेहुए के समान शोभित होताहै ॥

५४–प्रियके स्त्रियोंके आर्द्र नखक्षतों के मध्यमें लगेहुए केशोंके छुटाने पर शीत्कारों से खुलेहुए दांतोंमें पड़ती हुई नवीन सूर्य्यकी किरणें पद्मरागमणिकी तुल्यताको धारणकरतीहैं॥

५५–अविरतदयितांगासंगसञ्चारितेन
छुरितमभिनवासृक्कान्तिना कुंकुमेन ।
कनकनिकषरेखा कोमलं कामिनीना-
म्भवति वपुरवाप्तच्छायमेवातपेऽपि ॥

५६–सरसिजवनकान्तम्बिभ्रदभ्रान्तवृत्तिः
करनयनसहस्रं हेतुमालोकशक्तेः ।
अखिलमतिमाहिम्ना लोकमाक्रान्तवन्तं
हरिरिव हरिदश्वः साधु वृत्रं हिनस्ति ॥

५७–अवतमसभिदायै भास्वताभ्युद्गतेन
प्रसभमुडुगणोऽसौ दर्शनीयोऽप्यपास्तः ।
निरसितुमरिमिच्छोर्ये तदीयाश्रयेण
श्रियमधिगतवन्तस्तेऽपि हन्तव्यपक्षे ॥

५८–प्रतिफलति करौघे सम्मुखावस्थितायां
रजतकटकभित्तौ सान्द्रचन्द्रांशुगौर्य्याम् ।
वहिरभिहतमद्रेः संहतं कन्दरान्त-
र्गतमपि तिमिरौघं घर्मभानुर्भिनत्ति ॥

५९–वहिरपि विलसन्त्यः काममानिन्यिरे य-
द्दिवसकररुचोऽन्तं ध्वान्तमन्तर्गृहेषु ।
नियतविषयवृत्तेरप्यनल्पप्रताप-
क्षतसकलविपक्षस्तेजसः स स्वभावः ॥

५५–निरन्तर प्रियाओंके प्रियोंके अंगके संगसे लगेहुए नवीन रुधिरके तुल्य रक्त कान्तिवाली केशरसे व्याप्त सुवर्ण की कसौटी में रेखाके तुल्य मनोहर कामिनियों का शरीर आतप में भी कान्ति युक्त हुआ ॥

५६–कमलोंके वनके प्रिय और कमलों के वनके समान सुन्दर दर्शनकी शक्तिके कारण नेत्रोंके तुल्य किरणें और किरणों के तुल्य नेत्रोंके सहस्रको धारण करनेवाले अभ्र (मेघ और आकाश) में रहनेवाले इन्द्रके समान सूर्य्य महिमा से लोकको व्याप्तकरते हुए वृत्र (अन्धकार और वृत्र नाम दैत्य) को अच्छेप्रकार से मारते हैं ॥

५७–अन्धकारके नाश करने के लिये उदयको प्राप्त सूर्य्यसे देखने के योग्यभी यह नक्षत्रोंका समूह बलात्कारसे निकालदिया गया क्योंकि शत्रुके मारनेकी इच्छा करने वालेको जो उस शत्रुके आश्रयसे श्रीको प्राप्तहुए हैं वह भी मारने के योग्य पक्षमें हैं ॥

५८–सूर्य्य सन्मुख स्थित चन्द्रमाकी किरणोंके तुल्य श्वेत चाँदी की पर्व्वतके मध्यरूपी दीवारमें किरणके समूहके पड़नेपर पर्व्वतके बाहर स्थित और कन्दराओंके भीतर स्थित भी अन्धकारके समूहको नाशकरते हैं ॥

५९–बाहर भी प्राप्त सूर्य्यकी किरणोंने गृहोंके मध्यमें अच्छे प्रकारसे जो अन्धकारका नाशकिया वह नियत स्थानमें रहने वाले भी तेजका बड़े प्रतापसे संपूर्ण शत्रुओंका नाशकरने वाला स्वभाव है ॥

६०—चिरमतिरसलौल्याद्बन्धनं लम्भितानां
पुनरयमुदयाय प्राप्य धाम स्वमेव
दलितदलकपाटः षट्पदानां सरोजे
सरभस इव गुप्तिस्फोटमर्कः करोति ॥

६१—युगपदयुगसप्तिस्तुल्यसंख्यैर्मयूखै-
र्दशशतदलभेदंकौतुकेनाशु कृत्वा ।
श्रियमलिकुलगीतैर्लालिताम्पंकजान्त-
र्भवनमधिशयानामादरात्पश्यतीव ॥

६२—अदयमिव कराग्रैरेष निष्पीड्य सद्यः
शशधरमहरादौ रागवानुष्णरश्मिः ।
अवकिरति नितान्तंकान्तिनिर्यासमच्छ-
स्नुतनवजलपाण्डुम्पुण्डरीकोदरेषु ॥

६३—प्रविकसति चिराय द्योतिताशेषलोके
दशशत करमूर्त्तावक्षिणीव द्वितीये ।
सितकरवपुषासौ लक्ष्यते सम्प्रति द्यौ-
र्विगलितकिरणेन व्यंगितैकेक्षणेव ॥

६४--कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्ड-
न्त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां हीविचित्रो विपाकः॥

६०—यह सूर्य्य फिर भी उदयके लिये अपने स्थानको प्राप्तहोकर अत्यन्त रसके लोभसे कमलमें बन्धनको प्राप्तकियेगये भ्रमरोंके वेगपूर्व्वक पत्ररूपी कपाटोंके खोलनेवाले होकर बन्धनको छुड़ाते हैं ॥

६१—सूर्य्य एक संग तुल्य संख्यावाली किरणोंसे सहस्रदलोंको कौतुकपूर्व्वक शीघ्र खोलकर भ्रमरोंके समूहोंके गीतों से सत्कार कीगई कमलरूपी गृहके मध्यमें सोई हुई लक्ष्मी को मानों आदरसे देखते हैं ॥

६२—प्रातःकाल अनुरागयुक्त सूर्य्य चन्द्रमाको कराग्रों (हस्ताग्र और किरणके अग्रभागों) से निर्द्दयतापूर्व्वक दबायकर मेघोंसे टपकेहुए नवीन जलके समान श्वेतवर्णवाले कान्तिके सारांशको कमलोंके भीतर अत्यन्त फेंकते हैं ॥

६३—संपूर्ण संसार के प्रकाशकरनेवाले हजार किरणवाली मूर्त्तिवाले सूर्य्यके द्वितीय नेत्रकेसमान बहुत कालमें प्रकाशित होनेपर इससमय यह आकाश प्रकाशरहित चन्द्रमा से व्याकुल कियेगये एकनेत्रवाला (काणा) मानों लक्षित होताहै ॥

६४—कुमुदिनियों का वन शोभारहितहै कमलोंका समूह शोभायुक्तहै उलूक आनन्दको त्याग करताहै चक्रवाक आनन्दयुक्तहै सूर्य्य उदयहोते हैं चन्द्रमाअस्त होतेहैं आश्चर्य्य है कि दुष्ट दैवकी चेष्टाओं का परिपाक विविधप्रकार का है ॥

६५—क्षणमतुहिनधाम्नि प्रोष्य भूयः पुरस्ता-
दुपगतवति पाणिग्राहवद्दिग्वधूनाम्।
द्रुततरमुपयाति स्रंसमानांशुकोऽसा-
वुपपतिरिव नीचैः पश्चिमान्तेन चन्द्रः॥

६६—प्रलयमखिलतारालोकमन्हाय नीत्वा
श्रियमनतिशयश्रीः सानुरागान्दधानः।
गगनसलिलराशिं रात्रिकल्पावसाने
मधुरिपुरिव भास्वानेष एकोऽधिशेते॥

६७—कृतसकलजगद्विबोधोऽवधूतांधकारोदयः
क्षयितकुमुदतारकश्रीर्वियोगन्नयन् कामिनः।
वहुतरगुणदर्शनादभ्युपेताल्पदोषः कृती
तव वरद! करोतु सुप्रातमह्नामयन्नायकः॥

इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये प्रत्यूषवर्णनो
नामैकादशः सर्गः ११॥

६५–सूर्य्य के दिशारूपी स्त्रियोंके पतिके समान क्षणभर प्रवास करके फिर पूर्व्वकी दिशामें आनेपर यह चन्द्रमा गिरी हुई किरणवाला नम्रहोकर पश्चिम दिशाके कोणसे शीघ्र भागता है ॥

६६–संपूर्ण तारारूपी संसारको शीघ्र नाशकरके बड़ी महिमा वाले अनुरागयुक्त श्रीको धारण करनेवाले यह सूर्य्य एक श्रीकृष्णजी के समान रात्रिरूपी कल्प के अन्तमें समुद्रके तुल्य आकाश में स्थित होते हैं ॥

६७–संपूर्ण संसारके जगानेवाले अन्धकारके उदय के नाश करनेवाले कुमुदिनी और नक्षत्रोंकी शोभाके नाश करने वाले कामियोंके वियोगके करनेवाले बहुत गुणके देखने से अंगीकार कियेगये स्वल्पदोषवाले कृतार्थ यह सूर्य्य हे वरद तुम्हारा प्रातःकाल अच्छाकरें ॥

इति श्रीमाघकृतशिशुपालबधमहाकाव्यस्य भाषानुवादे प्रत्यूषवर्णनोनामैकादशःसर्गः ११ ॥

द्वादशः सर्गः ।

रैवतकपर्वततो भगवतः श्रीकृष्णस्य प्रस्थानवर्णनम् ॥

१–इत्थं रथाश्वेभनिषादिनाम्प्रगे
गणो नृपाणामथ तोरणाद्बहिः ।
प्रस्थानकालक्षमवेषकल्पना-
कृतक्षणक्षेपमुदैक्षताच्युतम् ॥

२–स्वक्षं सुपत्रं कनकोज्ज्वलद्युति-
ञ्जवेन नागान् जितवन्तमुच्चकैः ।
आरुह्य तार्क्ष्यन्नभसीव भूतले
ययावनुद्घातसुखेन सोऽध्वना ॥

३–हस्तस्थिताखण्डितचक्रशालिन-
न्द्विजेन्द्रकान्तं श्रितवक्षसं श्रिया ।
सत्यानुरक्तन्नरकस्य जिष्णवो
गुणैर्नृपाः शार्ङ्गिणमन्वयासिषुः ॥

बारहवासर्ग ॥

श्री कृष्णजी के पर्व्वतसे प्रयाण करनेका वर्णन ॥

१—इसप्रकार प्रातःकाल सूर्य्योदयके उपरान्त रथ घोड़े और हाथियोंपर चढ़नेवाले राजालोगोंके समूहने बाहरके द्वार के बाहर प्रस्थानके समय उचित वेषके बनानेसे क्षणभर विलम्ब करनेवाले श्रीकृष्णजी की बाटदेखी ॥

२—वह श्रीकृष्णजी सुन्दरअक्ष (पहिये के रखनेका एकप्रकार का काष्ठ और इन्द्री) वाले सुन्दरपत्र (वाहन और पक्ष) वाले सुवर्ण के समान निर्मलद्युतिवाले और सुवर्ण की रचनावाले वेगसे नाग (हाथी और सर्पों)के जीतनेवाले उन्नततार्क्ष (गरुड़ और रथ) पर चढ़करके आकाशके तुल्य पृथ्वीतल में अनुरोधके विना सुगममार्गसे चले ॥

३—हाथ में स्थित अखंडितचक्रों (सुदर्शनचक्र और हाथों में चक्रकी रेखाओं) से युक्त उत्तम ब्राह्मणोंको प्रिय और चन्द्रमाके समान सुन्दर शोभासे व्याप्त हृदयवाले और लक्ष्मी से स्थितकियेगये हृदयवाले सत्यमें अनुरक्त और सत्यभामामें अनुरक्त नरकके जीतनेवाले और नरकासुर के जीतनेवाले राजालोगगुणोंसे श्रीकृष्ण जीके पीछेचले ॥

४–शुक्लैः सतारैर्मुकुलीकृतैः स्थुलैः
कुमुद्वतीनां कुमुदाकरैरिव ।
व्युष्टम्प्रयाणञ्च वियोगवेदना-
विदूननारीकमभूत्समन्तदा ॥

५–उत्क्षिप्तगात्रः स्म विडम्बयन्नभः
समुत्पतिष्यन्तमगेन्द्रमुच्चकैः ।
आकुञ्चितप्रोहनिरूपितक्रमं
करेणुरारोहयते निषादिनम् ॥
६–स्वैरं कृतास्फालनलालितान् पुरः
स्फुरत्तनूर्न्दर्शितलाघवक्रियाः ।
वंकाविलग्नैकसवल्गपाणय-
स्तुरंगमानारुरुहुस्तुरंगिणः ॥
७–अन्हाय यावन्न चकार भूयसे
निषेदिवानासनबन्धमध्वने ।
तीव्रोत्थितास्तावदसह्यरंहसो
विशृंखलं शृंखलकाः प्रतस्थिरे ॥

४–श्वेत वर्णवाले रस्सी से युक्त और बीज सहित बन्द किये गये दीर्घ कुमुदिनियोंके तड़ागों के समान कनातों से और कनातोंके समान कुमुदिनियों के तड़ागों से उपलक्षित बिरहकी व्यथा से संतापयुक्त स्त्री वाले कुमुदिनीवाली पृथ्वीको प्रातःकाल और प्रयाण (यात्रा) उससमय (दोनों) समान हुए ॥

५–शरीर का उठानेवाला आकाशके प्रति उछलनेको उद्यत बड़े पर्वतके समान उन्नत हाथी सकोड़े हुए चरणमें पैर रखनेवाले हाथीवान् को चढ़ाताहै ॥

६–सवार लोग सन्मुख धीरेधीरे सुहरानेसे सावधान कियेगये शरीरोंके कंपानेवाले घोड़ोंपर शीघ्रता दिखाईगई है जिनमें ऐसी क्रियावाले बंक (जीनपोशके किसी एकभाग में) लगेहुए और एक लगाम सहित हाथवाले होकर चढ़े ॥

७–सवारने बड़े मार्ग के लिये शीघ्र जबतक आसन नहींबांधा तभीतक तीक्ष्णतापूर्व्वक उठे हुए दुस्सह वेगवाले ऊंट अनर्गलतासे चले ॥

८—गण्डोज्ज्वलामुज्ज्वलनाभिचक्रया
विराजमानान्नवयोदरश्रिया।
कश्चित् सुखम्प्राप्तुमनाः सुसारथी-
रथीं युयोजाविधुरां वधूमिव॥

९—उत्थातुमिच्छन् विधृतः पुरोबला-
न्निधीयमाने भरभाजि यन्त्रके।
अर्द्धोज्झितोद्गारविभुग्नर्भरस्वरः
स्वनाम निन्ये रवणः स्फुटार्थताम्॥
१०—नस्यागृहीतोऽपि धुवन्विषाणयो-
र्युगं ससूत्कारविवर्त्तितत्रिकः।
गोणीञ्जनेन स्म निधातुमुद्धृता-
मनुक्षणन्नोक्षतरः प्रतीच्छति॥

११—नानाविधाविष्कृतसामजस्वरः
सहस्रवर्त्मा चपलैर्दुरध्ययः।
गान्धर्वभूयिष्ठतया समानतां
स सामवेदस्य दधौ वलोदधिः॥

८–सुखपूर्वक जाने की इच्छावाले और सुखके प्राप्तकरने की इच्छासे युक्त सुन्दर सारथीवाले और सुन्दर सहाय वाले किसी रथवालेने चिह्नों से उज्ज्वल और कपोलोंसे उज्ज्वल उज्ज्वल छिद्रोंके मध्यवाले पहियोंके अंगसे युक्त और सुन्दर नाभिमंडलवाली नवीन उन्नतपहियों की शलाकाओंकी शोभासे और उदरकी शोभासे विराजमान अग्रभागसहित और नहीं विकल स्त्री के समान रथको जोता ॥

९–भारसे युक्त यन्त्रविशेषके रखने पर बलसे उठनेकी इच्छा करते हुए आगे पकड़े गये आधे फेंके हुए वमनसे विषम स्वर वाले रवण (ऊंट) ने अपना नाम यथार्थता को प्राप्तकिया ॥

१०–नाथमें पकड़े गयेभी दोनों सींगों को कँपाते हुए सूत्कार (सूंसूंकरना) पूर्वक त्रिक (पूंछकी हड्डीसे लगे हुएदोनों चूतड़ोंकी हड्डियों) के लोटाने वाले बड़े बैलने पीठमेंरखने केलिये लोगोंसे वारंवार उठाई गई गौनको स्वीकार नहीं किया ॥

११–अनेक प्रकारके सामजों (हाथियों) केस्वरोंका प्रकटकरनेवाला हजारों मार्गोंसे चलनेवाला गान्धर्वों(घोड़ों)की अधिकतासे चपल लोगोंसे नहीं प्राप्तहोनेके योग्य सेनारूपी समुद्र सामवेदकी समानताको धारण करताभया ॥

१२--प्रत्यन्यनागञ्चलितस्त्वरावता
निरस्य कुण्ठन्दधताऽन्यमंकुशम् ।
मूर्द्धानमूर्ध्वायतदन्तमण्डलं
धूवन्नरोधि द्विरदो निषादिना ॥

१३--सम्मूर्च्छनुच्छृंखलशंखनिःस्वनः
स्वनः प्रयाते पटहस्य शार्ङ्गिणि ।
सत्त्वानि निन्ये नितराम्महान्त्यपि
व्यथान्द्वयेषामपि मेदिनीभृताम् ॥

१४--कालीयकक्षोदविलेपनश्रिय-
न्दिशद्दिशामुल्लसदंशुमद्द्युति ।
खातं खुरैर्मुद्गभुजां विपप्रथे
गिरेरधः काञ्चनभूमिजं रजः ॥

१५--मन्द्रैर्गजानां रथमण्डलस्वनै-
र्निजुह्नुवे तादृशमेव बृंहितम् ।
तारैर्विभूवे परभागलाभतः
परिस्फुटैस्तेषु तुरंगहेषितैः ॥

१६--अन्वेतुकामोऽवमतां कुशग्रह-
स्तिरोगतं सांकुशमुद्वहन् शिरः ।
स्थूलोच्चयेनागमदन्तिकागतां-
गजोऽग्रयाताग्रकरः करेणुकाम् ॥

१७--यान्तोऽस्पृशन्तश्चरणैरिवावनि-
ञ्जवात्प्रकीर्णैरभितः प्रकीर्णकैः ।
अद्यापि सेनातुरगाः सविस्मयै-
रलूनपक्षा इव मेनिरे जनैः ॥

१२–अन्यहाथी के प्रति चलाहुआ ऊंचे और बड़े दाँतों के मण्डलवाले मस्तकको कँपाता हुआ हाथी नहीं तीक्ष्ण अंकुशको छोडकर अन्य अंकुशके ग्रहण करनेवाले हाथीवान्से रोकागया ॥

१३–वृद्धिको प्राप्तहोते भये अनुरोधरहित शंख के शब्दवाले श्रीकृष्णजी के चलने पर नगाड़े के शब्दने दोनों मेदिनीभृतों (पर्व्वत और राजाओं) के सत्त्व(प्राणी और सेना) व्याकुल किये ॥

१४–केशर के चूर्णोंसे कीगई उबटन की शोभाको दिशाओं को देतीहुई दीप्तिमान् सूर्य्यके समान द्युतिवाली घोड़ोंके खुरों से खोदी गई सुवर्णकी पृथ्वी से उत्पन्न हुई रज पर्व्वत के नीचे फैली ॥

१५–गंभीर रथों के मण्डलों के शब्दोंसे तद्रूप हाथियोंका शब्द तिरस्कार किया गया और अत्यन्त उच्चस्वरवाले घोड़ों के शब्द अत्यन्त उत्कृष्टतासे उनमें प्रकट हुए ॥

१६–समीपमें प्राप्त हथिनीके पीछे जानेकी इच्छा करते हुए हाथीवान् के अनादर करने वाले अंकुशयुक्त तिरछेशिरको धारण करते हुए हाथीने सूंड़के अग्रभाग को फैलाकर स्थूलोच्चय (गतिविशेष) से गमन किया ॥

१७–वेग से चरणों से मानों पृथ्वीको नहीं छूतेहुए गमन करते हुए सेनाके घोड़े चारोंओर फैलेहुए चमरोंसे अद्यापि नहीं कटेहुए पक्षवाले मानों विस्मययुक्त मनुष्यों से देखेगये ॥

१८--ऋज्वीर्दधानैरवतत्य कन्धरा-
श्चलावचूडाः कलघर्घरारवैः ।
भूमिर्महत्यप्यविलम्बितक्रमं
क्रमेलकैस्तत्क्षणमेव चिच्छिदे ॥

१९--तूर्णम्प्रणेत्रा कृतनादमुच्चकैः
प्रणोदितं वेसरयुग्यमध्वनि ।
आत्मीयनेमिक्षतसान्द्रमेदिनी-
रजश्चयाक्रान्तिभयादिवाद्रवत् ॥

२०--व्यावृत्तवक्त्रैरखिलैश्चमूचरै-
र्व्रजद्भिरेव क्षणमीक्षिताननाः ।
वल्गद्गरीयःस्तनकम्प्रकञ्चुकं
ययुस्तुरंगाधिरुहोऽवरोधिकाः ॥

२१--पादैः पुरः कूवरिणां विदारिताः
प्रकाममाक्रान्ततलास्ततो गजैः ।
भग्नोन्नतानन्तरपूरितान्तरा
वेभुर्भुवः कृष्टसमीकृता इव ॥

२२--दुर्दान्तमुत्प्लुत्य निरस्तसादिनं
सहासहाकारमलोकयज्जनः ।
पर्याणतस्त्रस्तमुरोविलम्बिन-
स्तुरंगमम्प्रद्रुतमेकया दिशा ॥

२३--भूभृद्भिरप्यस्खलिताः स्खलून्नतै-
रपह्नुवाना सरितः पृथूरपि ।
अन्वर्थसंज्ञैव परं त्रिमार्गगा
ययावसंख्यैः पथिभिश्चमूरसौ ॥

१८–सीधी चंचल कण्ठ भूषणवाली ग्रीवाओंको फैलायकर धारणकरनेवाले मधुर क्षुद्रघण्टिकाओं के शब्दवाले ऊंटोंने, शीघ्र चरणधरके बड़ी भी पृथ्वी उसी क्षणमें उल्लंघनकी ॥

१९–सारथीसे प्रेरणा कियागया अत्यन्त शब्द करनेवाला खच्चरोंका रथ, अपनी चक्रधारासे खुदीहुई घनी पृथ्वी की रजके समूहसे दबानेके भयसे मानों शीघ्र मार्गमें दौड़ा ॥

२०–मुखके तिरछे करनेवाले चलतेहुए संपूर्ण सेनाके पुरुषोंसे क्षणभर देखेगये मुखवालीं घोड़ोंपर चढ़ीहुई रणवासकी स्त्रियां चंचलभारीस्तनोंसेकंपमान कंचुकीकेहोनेपरचलीं॥

२१–पहले रथोंके पहियोंसे विदीर्ण कीगई पीछे हाथियोंसे अत्यन्त दबायेगये तलवाली टूटेहुए और ऊंचे अन्तररहित दोनों भागों से पूर्ण अन्तरवाली पृथ्वी जोतगिई और बराबर कीगई के समान शोभितहुई ॥

२२–हृदयमें लगेहुए पर्य्याण (जीनपोश) से गिरेहुए उछल के सवारके गिरानेवाले एक दिशासे भागेहुए दुष्ट घोड़ेको हास्ययुक्त हाहाकारके साथ लोगों ने देखा ॥

२३–उन्नतभी भूभृतों (पर्व्वत और राजा लोगों) से नहींरोकीगई बड़ी नदियोंको भी आच्छादन करतीहुई त्रिमार्गगा (गंगा) केवल अर्थ युक्त नामवालीही हैं यह सेना तो असंख्य मार्गोंसे चली ॥

२४—त्रस्तौ समासन्नकरेणुसूत्कृता-
न्नियन्तरि व्याकुलमुक्तरज्जुके ।
क्षिप्तावरोधांगनमुत्पथेन गां
विलंघ्य लघ्वीं करभौ वभञ्जतुः ॥
२५—स्रस्तांगसन्धौ विगताक्षपाटवे
रुजा निकामं विकलीकृते रथे ।
आप्तेन तक्ष्णा भिषजेव तत्क्षण-
म्प्रचक्रमे लंघनपूर्वकः क्रमः ॥
२६—धूर्भंगसंक्षोभविदारितोष्ट्रिका-
गलन्मधुप्लावितदूरवर्त्मनि ।
स्थाणौ निषंगिण्यनसि क्षणं पुरः
शुशोच लाभाय कृतक्रयो वणिक् ॥
२७—भेरीभिराकुष्टमहागुहामुखो
ध्वजांशुकैस्तर्जितकन्दलीदलः ।
उत्तुंगमातंगजितालघूपलो
वलैः स पश्चात् क्रियते स्म भूधरः ॥
२८—वन्येभदानानिलगन्धदुर्द्धराः
क्षणन्तरुच्छेदविनोदितक्रुधः ।
व्यालद्विपा यन्तृभिरुन्मदिष्णवः
कथञ्चिदारादपथेन निन्यिरे ॥
२९—तैर्वैजयन्तीवनराजिराजिभि-
र्गिरिप्रतिच्छन्दमहामतंगजैः ।
वह्वचः प्रसर्पज्जनतानदीशतै-
र्भुवो वलैरन्तरयाम्बभूविरे॥

२४–समीपमें स्थित हाथी के सूत्कार (सूसूकरने) से डरेहुए खच्चर सारथीके व्याकुलतापूर्व्वक डोरीके छोड़नेवाले होनेपर रणवासकी स्त्रियोंके गिरनेपर कुमार्गसे पृथ्वीको उल्लंघन करके रथको तोड़ते भये ॥

२५–शिथिल अंगकी सन्धिवाले अक्षों(चक्रधारा का काष्ठ औरइं-द्रियों)की सामर्थ्यसे रहितरथ (गाड़ीऔरशरीर)केरुज(रोग और टूटना) से व्याकुल होनेपर हितबढ़ईने वैद्यकेसमान लंघन (उल्लंघन औरउपवास)पूर्व्वकविधानप्रारंभकिया॥

२६–कीलमें लगीहुई गाड़ीके धुरीके टूटनेकेद्वाराक्षोभ से टूटेहुए मृत्तिकाके मद्यके पात्रसे टपकतीहुई मदिरासे बड़े मार्गके सींचने वाले होनेपर पहले लाभके लिये खरीदने वाले वैश्यने क्षणभर शोक किया ॥

२७–नगाड़ोंसे बड़ी गुहाओंके मुखोंकी निन्दा करनेवाली ध्वजा-ओंके वस्त्रोंसे लताओं के पत्रोंकी तिरस्कार करने वाली ऊंचे हाथियोंसे स्थूल पाषाणों की जीतनेवाली सेनाओं से वह पर्व्वत पीछे कियागया ॥

२८–वनके हाथियोंके मदके पवनकी गन्धिसे दुःखसे ग्रहणकरने केयोग्य क्षणभर वृक्षोंके तोड़नेसे शान्ति क्रोधवाले अत्यन्त उन्मत्त दुष्ट हाथियोंको हाथीवान् किसीप्रकार दूरसे कुमार्ग से लेगये ॥

२९–वनकी पंक्तियों के समान पताकाओं से शोभित पर्व्वतोंके तुल्य बड़े हाथीवाली बहतीहुई नदियों के समान जनों के समूहों के सैकड़ों से युक्त सेनाओं से बहुतसी पृथ्वी उल्लंघन कीगई ॥

३०--तस्थे मुहूर्त्तं हरिणीविलोचनैः
सद्दांशि दृष्ट्वा नयनानि योषिताम् ।
मत्वाथ सन्त्रासमनेकविभ्रम-
क्रियाविकाराणि मृगैः पलाय्यत ॥

३१--निम्नानि दुःखादवतीर्य्य सादिभिः
सयत्नमाकृष्टकशाः शनैः शनैः ।
उत्तेरुरुत्तालखुरारवन्द्रुताः
श्लथीकृतप्रग्रहमर्वतां व्रजाः ॥

३२--अध्यध्वमारूढवतैव केनचित्
प्रतीक्षमाणेन जनम्मुहुर्धृतः ।
दाक्ष्यं हि सद्यः फलदं यदग्रत-
श्चखाद दासेरयुवा वनावलीः ॥

३३--शौरेः प्रतापोपनतैरितस्ततः
समागतैः प्रश्रयनम्रमूर्त्तिभिः ।
एकातपत्रा पृथिवीभृताङ्गणै-
रभूद्बहुच्छत्रतया पताकिनी ॥

३४--आगच्छतोऽनूचि गजस्य घण्टयोः
स्वनं समाकर्ण्य समाकुलाङ्गनाः ।
दूरादपावर्त्तितभारवाहणाः
पथोऽप सस्रुस्त्वरितञ्चमूचराः ॥

३५--ओजस्विवर्णोज्ज्वलवृत्तशालिनः
प्रसादिनोऽनुज्झितगोत्रसंविदः ।
श्लोकानुपेन्द्रस्य पुरः स्म भूयसो
गुणान् समुद्दिश्य पठन्ति वन्दिनः ॥

३०–हरिणी के नेत्रोंके समान स्त्रियोंके नेत्रोंको देखकर मृग मुहूर्त्तभर स्थितहुए इसके उपरान्त अनेक विलासों की क्रियारूपी विकारवाले जानकर भयपूर्व्वक भागे ॥

३१–घोड़ों के समूह सवारोंसे यत्नपूर्व्वक पकड़ीगई लगामवाले भी धीरे धीरे दुःखपूर्व्वक उतारमें उतरकर ऊंचे खुरोंके शब्दपूर्व्वक और लगाम की शिथिलतापूर्व्वक वेगयुक्त होकर दौड़े ॥

३२–चतुरता शीघ्र फलकी देनेवालीहोती है जिसकारणसे मार्ग में चढ़ेहुएही किसी पुरुषकी बाटदेखते हुए किसी पुरुषसे वारंवार स्थित कियेगये जवान ऊंटने आगे वनोंकी पंक्ति (नीम आदिकों के पत्तों) को खाया ॥

३३–श्रीकृष्णजी की सेना प्रतापसे नम्र इधर उधरसे आयेहुए विनयसे नम्र मूर्त्तिवाले राजालोगों के कारण बहुत छत्रोंसे केवल आतपत्रमय हुई ॥

३४–पीछे आतेहुए हाथीके घंटोंका शब्द सुनके घबराई हुई स्त्री वाले सेनाके लोग दूरहीसे भारके लेचलने वालों के हटाने वाले होकर शीघ्र मार्गसे भागे ॥

३५–बन्दीलोग तेजस्वी वर्णके उज्ज्वल व्यापारसे शोभित अनुग्रहयुक्त कुल और आचारके नहीं छोड़नेवाले श्रीकृष्णजी के गुणोंको लेकर बहुतसे श्लोक सन्मुख पढ़ते थे ॥

३६--निःशेषमाक्रान्तमहीतलो जलै-
श्चलन् समुद्रोऽपि समुज्झति स्थितिम् ।
ग्रामेषु सैन्यैरकरोदवारितः
किमव्यवस्थाञ्चलितोऽपि केशवः ॥

३७--कोशातकीपुष्पगुलुच्छकान्तिभि-
र्मुखैर्विनिद्रोल्वणबाणचक्षुषः ।
ग्रामीणवध्वस्तमलक्षिता जनै-
श्चिरं वृतीनामुपरि व्यलोकयन् ॥

३८--गोष्ठेषु गोष्ठीकृतमण्डलासनान्
सनादमुत्थाय मुहुः स वल्गतः ।
ग्राम्यानपश्यत्कपिशाम्पिपासतः
स्वगोत्रसंकीर्त्तनभावितात्मनः ॥

३९--पश्यन् कृतार्थैरपि वल्लवीजनो
जनाधिनाथं न ययौ वितृष्णताम् ।
एकान्तमौग्ध्यानवबुद्धविभ्रमैः
प्रसिद्धविस्तारगुणैर्विलोचनैः ॥

४०--प्रीत्या नियुक्ताल्लिहतीः स्तनन्धया-
न्निगृह्य पारीमुभयेन जानुनोः ।
वर्द्धिष्णुधाराध्वानि रोहिणीः पय-
श्चिरन्निदध्यौ दुहतः स गोदुहः ॥

४१--अभ्याजतोऽभ्यागततूर्णतूर्णका-
न्निर्य्याणहस्तस्य पुरो दुधुक्षतः ।
वर्गाद्गवां हुंकृतिचारु निर्यती-
मरिमेधोरैक्षत गोमतल्लिकाम् ॥

३६–चलायमान समुद्रभी जलोंसे संपूर्ण पृथ्वीका आच्छादन करनेवाला होकर मर्य्यादा को छोड़ताहै श्रीकृष्णजी ने तो चलकर भी असंख्य सेनाओं से संपूर्ण पृथ्वीतल के आच्छादन करनेवाले होकर क्या मर्य्यादा त्यागकरदी किन्तुनहीं॥

३७–कोशातकी (तोरई) के पुष्पोंके गुच्छों के समान कान्ति वाले प्रफुल्लित बड़े पियाबाँसे के पुष्पके समान नेत्रवाली ग्रामकी स्त्रियोंने उन श्रीकृष्णजी को सेनाके लोगोंसे नहीं देखीगई बहुत कालतक वृति (घेरे) के ऊपरसे देखा ॥

३८–उन श्रीकृष्णजी ने गौओंके स्थानपर वार्त्ताकरने में मंडलाकारसे बैठनेवाले अट्टाट्टहासादिक शब्दों सहित उठकरके कूदतेहुए वारंवार मद्यकेपीनेकी इच्छाकरते हुए श्रीकृष्णजीके नामकेकीर्त्तनमें चित्तकेलगानेवाले ग्रामीणलोगदेखे॥

३९–अत्यन्तमुग्धता (भोलेपन) से विलासों के नहीं जानने वाले प्रकट विस्ताररूपी गुणवाले कृतार्थ नेत्रोंसे श्रीकृष्णजी को देखता हुआ गोपांगनाओंका समूह तृप्तिको नहीं प्राप्तहुआ ॥

४०–बंधे हुए बछड़ोंको चाटती हुई गौओंसे दूधको दोनों घुटनों से दुहनीको दबायकर बढ़तेहुये दूधकी धाराके शब्दपूर्व्वक दुहतेहुए गौ के दोहनेवालोंको उन श्रीकृष्णजी ने बहुत कालतक देखा ॥

४१–सन्मुख आतेहुए पैर बांधनेकी रस्सीको हाथमें लियेहुए दुहनेकी इच्छाकरतेहुए दुहने वालेके सन्मुख आयेहुए शीघ्रतायुक्त छोटेबछड़े वाली गौओंके समूहसे मनोहर हुंकारपूर्व्वक निकलतीहुई उत्तम गौको श्रीकृष्णजी ने देखा ॥

४२--स व्रीहिणां यावदवासितुं गताः
शुकान्मृगैस्तावदुपद्रुतश्रियाम्।
कैदारिकाणामभितः समाकुलाः
सहासमालोकयति स्म गोपिकाः॥

४३--व्यासेद्धुमस्मानवधानतः पुरा
चलत्यसावित्युपकर्णयन्नसौ।
गीतानि गोप्याः कलमं मृगव्रजो
न नूनमत्तीति हरिर्व्यलोकयत्॥

४४--लीलाचलस्त्रीचरणारुणोत्पल-
स्खलत्तुलाकोटिनिनादकोमलः।
शौरेरुपानूपमपाहरन्मनः
स्वनान्तरादुन्मदसारसारवः॥

४५--उच्चैर्गतामस्खलितां गरीयसी-
न्तदातिदूरादपि तस्य गच्छतः।
एके समूहुर्बलरेणुसंहतिं
शिरोभिराज्ञामपरे महीभृतः॥

४६--प्रायेण नीचानपि मेदिनीभृतो
जनः समेनैव पथाधिरोहति।
सेना मुरारेः पथ एव सा पुन-
र्महामहीध्रान् परितोऽध्यरोहयत्॥

४७--दन्ताग्रनिर्भिन्नपयोदमुन्मुखाः
शिलोच्चयानारुरुहुर्महीयसः।
तिर्य्यक्कटप्लाविमदाम्बुनिम्नगा-
विपूर्य्यमाणश्रवणोदरान्द्विपाः॥

४२–जबतक तोतों के भगानेकोगये तबतक मृगोंसे बिगाड़ीहुई संपत्तिवाले चावलोंके खेतोंके समूहोंकी रक्षाकरनेवाली (स्त्रियां) चारोंओरसे व्याकुल उन श्रीकृष्णजीने हास्यपूर्वक देखीं ॥

४३–धानोंकी रक्षा करनेवाली के गीतोंको सुनता हुआ यहमृगोंका समूह निश्चयधानोंको नहीं खाताहै नहीं तो यह रक्षाकरनेवाली हमलोगोंके निवारण करनेको एकाग्रतासे प्रथम चलेगी इसप्रकार श्रीकृष्णजीने देखा ॥

४४–बहुत जलवाले देशों के समीपमें लीलापूर्व्वक चलनेवाले स्त्री के लालकमलके तुल्य चरणोंमें चलायमान नूपुर के शब्दोंके तुल्य मतवाले हंसोंके शब्दने श्रीकृष्णजी का मन और शब्दोंसे हटा लिया ॥

४५–उससमय बहुत दूर जातेहुए भी श्रीकृष्णजी की ऊपरगई हुई और ऊपरके लोकोंमें व्याप्त नहीं भंगहुई औरसत्यबड़ी औरपूज्यसेनाकी रजकुछ महीभृतों (पर्व्वतों) ने औरआज्ञा अन्य महीभृतों (राजा लोगों) ने शिरों से धारण की ॥

४६–प्रायः नीचेभी पर्व्वतोंपर लोग सुगममार्गसे चढ़ते हैं फिर वह श्रीकृष्णजी की सेना मार्गरूपी बड़े पर्व्वतोंपर सब ओर से चढ़ी ॥

४७–हाथी मुखको उठानेवाले दांतोंके अग्रभागोंसे मेघोंको विदीर्णकरके तिरछे कपोलसे बहतेहुए मदजलके प्रवाहों से कर्णोंके छिद्रोंकेपूर्ण होनेपर बड़े शिलाओंके समूहोंपरचढ़े॥

४८--श्च्योतन्मदाम्भःकणकेन केनचि-
ज्जनस्य जीमूतकदम्बकद्युता।
नागेन नागेन गरीयसोच्चकै-
ररोधि पन्थाः पृथुदन्तशालिना॥

४९--भग्नद्रुमाश्चक्रुरितस्ततो दिशः
समुल्लसत्केतनकाननाकुलाः।
पिष्टाद्रिपृष्ठास्तरसा च दन्तिन-
श्चलन्निजांगाचलदुर्गमा भुवः॥

५०--आलोकयामास हरिर्महीधरा-
नधिश्रयन्तीर्गजताः परःशताः।
उत्पातवातप्रतिकूलपातिनी-
रुपत्यकाभ्यो बृहतीः शिला इव॥

५१--शैलाधिरोहाभ्यसनाधिकोद्धुरैः
पयोधरैरामलकीवनाश्रिताः।
तम्पर्वतीयप्रमदाश्चचायिरे
विकाशविस्फारितविभ्रमेक्षणाः॥

५२--सावज्ञमुन्मील्य विलोचने सकृत्
क्षणम्मृगेन्द्रेण सुषुप्सुना पुनः।
सैन्यान्न यातः समयापि विव्यथे
कथं सुराजम्भवमन्यथाथवा॥

५३--उत्सेधनिर्धूतमहीरुहां ध्वजै-
र्जैनावरुद्धोद्धतसिन्धुरंहसाम्।
नागैरधिक्षिप्तमहाशिलम्मुहु-
र्बलम्बभूवोपरि तन्महीभृताम्॥

४८–टपकतेहुए मदके कणवाले मेघोंके समूहके तुल्य द्युतिवाले बड़े दाँतोंसे शोभित बड़ेभारी उन्नत किसी हाथीसे लोगों का मार्ग जिसप्रकार रोकागया उस प्रकार पर्व्वतसे नहीं रोकागया ॥

४९–हाथियों ने इधर उधर टूटेहुए वृक्षवाली दिशायें पताका-रूपी वनों से व्याप्त करदीं और वेगसे चूर्ण कीहुई पर्व्वतों की पृष्ठवाली पृथ्वी चलतेहुए अपने शरीररूपी पर्व्वतों से दुर्गम करदीं ॥

५०–श्रीकृष्णजी ने पर्व्वतोंका आश्रय लेनेवाले सैकड़ों हाथि-योंके समूह पर्व्वतके निकटकी भूमियोंसे उत्पातके वायुसे प्रतिकूल गिरनेवालीं (ऊपरजानेवालीं) बड़ी शिलाओं के समान देखे ॥

५१--पर्व्वतपर चढ़नेके अभ्याससे अत्यन्त उन्नत स्तनोंके द्वारा उपलक्षित आमलेके वनमें स्थित पर्व्वतवासियोंकी स्त्रियां फैलाने से विलासरहित नेत्रवाली होकर श्रीकृष्णजीको देखतीहुईं ॥

५२--अनादरपूर्वक नेत्रोंको एकवार क्षणभर खोलकर फिर सोने की इच्छा करता हुआ सिंह समीपमें जातीहुईभी सेनासे नहींडरा अथवा नहींतोक्यासुखसे राजाहोताहै किन्तुनहीं॥

५३--हाथियोंकेद्वारा बड़ी शिलाओंकी तिरस्कार करनेवाली सेना ध्वजोंके द्वारा उन्नतिसे तिरस्कार कियेगये वृक्षवाले जनों से रोकेगये उद्धत नदियों के वेगवाले पर्व्वतों के ऊपर बारंवार हुई ॥

५४--श्मश्रूयमाणे मधुजालके तरो-
र्गजेन गण्डङ्कषता विधूनिते।
क्षुद्राभिरक्षुद्रतराभिराकुलं
विदश्यमानेन जनेन दुद्रुवे ॥
५५--नीते पलाशिन्युचिते शरीरव-
द्गजान्तकेनान्तमदान्तकर्मणा।
सञ्चेरुरात्मान इवापरं क्षणात्
क्षमारुहन्देहमिव प्लवंगमाः ॥
५६--प्रह्वानतीव क्वचिदुद्धतिश्रितः
क्वचित्प्रकाशानथ गह्वरानपि।
साम्यादपेतानिति वाहिनीहरे-
स्तदातिचक्राम गिरीन् गुरूनपि ॥
५७--स व्यासवत्या परितोऽपथान्यपि
स्वसेनया सर्वपथीनया तया।
अम्भोभिरुल्लंघिततुंगरोधसः
प्रतीपनाम्नीः कुरुतेस्म निम्नगाः ॥
५८--यावद् व्यगाहन्त न दन्तिनांघटा-
स्तुरंगमैस्तावदुदीरितं खुरैः।
क्षिप्तं समीरैः सरिताम्पुरः पत-
ज्जलान्यनैषीद्रज एव पंकताम् ॥
५९--रन्तुं क्षतोत्तुंगनितम्बभूमयो
मुहुर्व्रजन्तः प्रमदम्मदोद्धताः।
पंकं करापाकृतशैवलांशुकाः
समुद्रगाणामुदपादयन्निभाः ॥

५४--वृक्षकी डाढ़ीके समान कपोल को रगड़ते हुए हाथीसे सहत के समूहके कंपित होनेपर बहुत स्थूल मक्खियों से काटे हुए लोग व्याकुल होकर भागे ॥

५५--उचित वृक्षके शरीरके समान दुष्टहाथीरूपी यमराज से नाश किये जानेपर बन्दर प्राणोंके समान अन्य वृक्षमें देहके समान क्षणभरमें प्रविष्ट हुए ॥

५६--कभी अत्यन्त नम्र कहींउन्नत कहींप्रकट कहीं अत्यन्त गह्वर इसप्रकार समतासे रहित बड़ेभी पर्व्वतोंको श्रीकृष्णजी की सेना ने उल्लंघन किया ॥

५७--उन श्रीकृष्णजी ने सबओरसे बुरेमार्गोंको भी व्याप्तकरने वाली संपूर्ण मार्गोंमें जानेवाली उसअपनी सेनासे जलों से ऊंचे किनारों के उल्लंघन करनेवालीं निम्नगा (नीचे जानेवालीं अर्थात् नदियां) उलटे नामवाली कीं ॥
५८--हाथियोंके समूहोंने जबतक नहीं मझाये तभीतक घोड़ों से खुरोंके द्वारा उठाई गई वायुसे बखेरी गई पहलेहीगिरी हुई रज नेही नदियों के जल पंकता को प्राप्त किये ॥

५९--क्रीड़ा करनेके लिये किनारोंके तोड़ने वाले वारंवार हर्ष को प्राप्तहोते भये मदसे उद्धत सूंडोंसे वस्त्र के समान सिवारके खेंचने वाले हाथियोंने नदियों में कीच उत्पन्नकी ॥

६०--रुग्णोरुरोधः परिपूरिताम्भसः
समस्थलीकृत्य पुरातनीर्नदीः।
कूलङ्कषौघाः सरितस्तथापराः
प्रवर्त्तयामासुरिभा मदाम्बुभिः॥

६१--पद्मैरनन्वीतवधूमुखद्युतो
गता न हंसैः श्रियमातपत्रजाम्।
दूरेऽभवन् भोजबलस्य गच्छतः
शैलोपमातीतगजस्य निम्नगाः॥

६२--स्निग्धाञ्जनश्यामतनूभिरुन्नतै-
र्निरन्तराला करिणाङ्कदम्बकैः।
सेना सुधाक्षालितसौधसम्पदा-
म्पुरां वहूनाम्परभागमाप सा॥

६३--प्रासादशोभातिशयालुभिः पथि
प्रभोर्निवासाः पटवेश्मभिर्बभुः।
नूनं सहानेन वियोगविक्लवा
पुरः पुरश्रीरपि निर्ययौ तदा॥

६४--वर्ष्म द्विपानां विरुवन्त उच्चकै-
र्वनेचरेभ्यश्चिरमाचचक्षिरे।
गण्डस्थलाघर्षगलन्मदोदक-
द्रवद्रुमस्कन्धनिलायिनोऽलयः॥

६५--आयामवद्भिः करिणां घटाशतै-
रधःकृताट्टालकपंक्तिरुच्चकैः।
दूष्यैर्जितोदग्रगृहाणि सा चमू-
रतीत्य भूयांसि पुराण्यवर्त्तत॥

६०—हाथियोंने टूटे हुए बड़े किनारोंसे सूखे हुए जल वाली नदियोंको स्थलके समान करके मदके जलोंसे किनारों के रगड़ने वाली और नदी बहाई ॥

६१--कमलोंसे नहीं प्राप्त स्त्रियों के मुखकी शोभा वाली हंसों से क्षत्रकी शोभा को नहीं प्राप्तहोने वाली नदियां पर्व्वतों की उपमाके उल्लंघन करने वाले हाथी वाली यदुवंशियों की सेनासे दूरहुई ॥

६२--चिकने अंजनके समान श्याम शरीरवाले उन्नत हाथियों के समूहों से घनी वह सेना सुधा (लेपन विशेष) से धोई हुई गृहोंकी सम्पत्ति वाले बहुत से पुरोंके दूरदेशमें पहुंची ॥

६३—मार्गमें प्रभुश्रीकृष्णजीके निवास गृहों की शोभाके उल्लंघन करने वाले डेरोंसे शोभित हुए निश्चय उस समय इनश्री-कृष्णजीके साथ वियोग से डरीहुई पुरकी लक्ष्मी भी आगे चली आई ॥

६४--कपोलोंके रगड़नेसे टपकते हुए मद जलसे आर्द्र वृक्षोंके गुद्दोंमें रहने वाले उच्चस्वर से गूंजते हुए भ्रमरों ने हाथियों का प्रमाण वनके वासियोंसे बहुत देरतक कहा ॥

६५—दीर्घतायुक्त हाथियों के सैकड़ों समूहों से चौवारोंकी पंक्ति-योंकी तिरस्कार करने वाली सेना उन्नत डेरोंसे जीतेगये उन्नत गृह वाले बहुतसे पुरोंको उल्लंघन करके गई ॥

६६--उद्धूतमुच्चैर्ध्वजिनीभिरंशुभिः
प्रतप्तमभ्यर्णतया विवस्वतः ।
आह्लादिकह्लारसमीरणाहते
पुरः पपाताम्भसि यामुने रजः ॥

६७--या घर्मभानोस्तनयापि शीतलैः
स्वसा यमस्यापि जनस्य जीवनैः ।
कृष्णापि शुद्धेरधिकं विधातृभि-
र्विहन्तुमंहांसि जलैः पटीयसी ॥

६८--यस्या महानीलतटीरिव द्रुताः
प्रयान्ति पीत्वा हिमपिण्डपाण्डुराः ।
कालीरपस्ताभिरिवानुरञ्जिताः
क्षणेन भिन्नाञ्जनवर्णतां घनाः ॥

६९--व्यक्तम्बलीयान् यदि हेतुरागमा-
दपूरयत् सा जलधिन्न जाह्नवी ।
गांगौघनिर्भर्त्सितशम्भु कन्धरा
सवर्णमर्णः कथमन्यथास्य तत् ॥

७०--अभ्युद्यतस्य क्रमितुञ्जवेन गां
तमालनीला नितरान्धृतायतिः ।
सीमेव सा तस्य पुरः क्षणम्बभौ
बलाम्बुराशेर्महतो महापगा ॥

कलापकम् ॥

६६--सेनाओंसे उठाई गई निकटता के कारण सूर्य्यकीकिरणों से संतप्त आनन्द करने वाली सुगन्धित वायुसे कंपित यमुनाजी के जलमें आगे धूलगिरी ॥

६७--जो यमुना सूर्य्यकी कन्याभी शीतलजलोंसे यमराज की बहिनभी जीवनदेने वाले जलोंसे कृष्णवर्ण वाली भी अधिक शुद्धिके उत्पन्नहोने वाले जलोंसे पापोंके नाशकरने को अत्यन्त समर्थ है ॥

६८--हिमके पिण्डके समान शुभ्रवर्णवाले मेघ द्रवीभूत नील-मणिके तटोंके समान कृष्णवर्ण वाले जिस यमुनाके जलों को पीकर उनजलोंसे मानों रँगगये क्षणभरमें चिकने क-ज्जलके वर्णको प्राप्त होते हैं ॥

६९--यदि युक्ति आगम (गंगासमुद्रकी पूर्ण करनेवालीहै इस प्रमाण) से अधिक बलवान्है तो उसयमुनाने मानों स-मुद्रको पूर्ण कियाहै गंगाजी ने नहीं (किया) नहीं तो जिसकारणसे इस समुद्रका जल गंगाजीके प्रवाहसे भस्म-रहित कियेगये शिवजीके कण्ठके तुल्यवर्ण वाला कैसेहै ॥

७०--तमालके तुल्यनीलवर्णवाली अत्यन्त दीर्घताकी धारण करनेवाली वह बड़ी नदी यमुना वेगसे पृथ्वीके दबानेको उद्यत बड़ीसेनारूपी समुद्रके आगे क्षणभर मानों सीमा (हद्द) शोभितहुई ॥

७१--लोलैररित्रैश्चरणैरिवाभितो
जवाद्रजन्तीभिरसौ सरिज्जनैः।
नौभिः प्रतेरे परितः प्लवोदित-
भ्रमीनिमीलल्ललनावलम्बितैः॥

७२--तत्पूर्वमंसद्वयसं द्विपाधिपाः
क्षणं सहेलाः परितो जगाहिरे।
सद्यस्ततस्तेरुरनारतस्रुत-
स्वदानवारिप्रचुरीकृतम्पयः॥

७३--प्रोथैः स्फुरद्भिः स्फुटशब्दमुन्मुखै-
स्तुरंगमैरायतकीर्णवालधि।
उत्कर्णमुद्ग्राहितधीरकन्धरै-
रतीर्य्यताग्रे तटदत्तदृष्टिभिः॥

७४--तीर्त्वा जवेनैव नितान्तदुस्तरां
नदीम्प्रतिज्ञामिव तां गरीयसीम्।
शृंगैरपस्कीर्णमहत्तटीभुवा-
मशोभतोच्चैर्नदितङ्ककुद्मताम्॥

७५--सीमन्त्यमाना यदुभूभृताम्बलै-
र्वभौ तरद्भिर्गवलासितद्युतिः।
सिन्दूरितानेकपकंकणांकिता-
तरंगिणी वेणिरिवायता भुवः॥

७६--अव्याहताक्षिप्रगतैः समुच्छ्रिता
ननुज्झितद्राघिमभिर्गरीयसः।
नाव्यम्पयः केचिदतारिषुर्भुजैः
क्षिपद्भिरूर्मीनपरैरिवोर्मिभिः॥

७१—सब ओर से चंचल पतवारोंसे मानों चरणोंसे वेगपूर्व्वक चलतीहुई नौकाओं से इसयमुना के भँवरोंके भयसे नेत्रों की बन्द करनेवाली स्त्रियों से आश्रय लियेगये पुरुष, सब ओर से पारगये ॥

७२—बड़े हाथी पहले कन्धेतक गहरेजलमें क्रीड़ापूर्व्वक प्रविष्ट हुए पीछे शीघ्रनिरन्तर टपकतेहुए अपने मदजलसे बढ़े हुए उस जलमें तैरे ॥

७३—स्पष्ट शब्दपूर्व्वक चंचल नासिकाओं से उपलक्षित ऊर्ध्व मुखवाले कानोंको उठाकर निश्चलग्रीवाओंके फैलानेवाले सन्मुख किनारेमें दृष्टिदेनेवाले घोड़े पूंछोंको फैलाकर तैरे ॥

७४—अत्यन्त दुस्तर बड़ी प्रतिज्ञाके समान उसनदीको वेगसे तैर कर शृंगोंसे बड़े किनारोंके कुरेदनेवाले बैलोंका उच्चस्वर वाला शब्द शोभितहुआ ॥

७५—यदुबंशी राजाओंकी तैरतीहुई सेनाओंसे सिरके जूड़ेसमेत कीगई भैंसेके सींगके समान द्युतिवाली सिंदूरयुक्त हाथी-रूपी शिरोभूषणोंसे चिह्नयुक्त यमुनानदी, बड़ी पृथ्वी की वेणीमानों शोभित हुई ॥

७६—कुछ पुरुष नौकासे पारजानेके योग्यजलमें रोकरहित शीघ्रगमनवाली अत्यन्त दीर्घ उन्नत बड़ीतरंगोंको हटाती हुई अन्यतरंगों के समान स्थितभुजाओं से तैरे ॥

७७–विदलितमहाकूलामुक्ष्णां विषाणविघट्टनै-
रलघुचरणाकृष्टग्राहां विषाणिभिरुन्मदैः।
सपदि सरितं सा श्रीभर्त्तुर्बृहद्रथमण्डलैः
स्खलितसलिलामुल्लंघ्यैनाञ्जगामवरूथिनी॥

इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये प्रयाणवर्णनो नाम
द्वादशः सर्गः॥ १२॥

७७-वह श्रीकृष्णजीकी सेना बैलोंके शृंगोंके आघातों से टूटे हुए बड़े किनारों वाली उन्मत्त विषाणियों (हाथियों) से बड़े चरणोंके द्वारा खींचेगये ग्राहवाली बड़े रथोंके समूहों से व्याकुल कियेगये जलवाली इसनदी यमुनाको शीघ्र उल्लंघन करके चली ॥

इति श्रीमाघकृतशिशुपालबधमहाकाव्यस्य भाषानुवादे प्रयाणवर्णनो नाम द्वादशःसर्गः १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ।

युधिष्ठिरेण भगवतस्समागमवर्णनम् ॥

१—यमुनामतीतमथ शुश्रुवानमु-
न्तपसस्तनूजइति नाधुनोच्यते ।
स यदाऽचलन्निजपुरादहर्निशं
नृपतेस्तदादि समचारि वार्त्तया ॥

२—यदुभर्त्तुरागमनलब्धजन्मनः
प्रमदादमानिव पुरे महीयसि ।
सहसा ततः स सहितोऽनुजन्मभि-
र्वसुधाधिपोऽभिमुखमस्य निर्ययौ ॥

३—रभसप्रवृत्तकुरुचक्रदुन्दुभि-
ध्वनिभिर्जनस्य बधिरीकृतश्रुतेः।
समवादि वक्तृभिरभीष्टसंकथा-
प्रकृतार्थशेषमथ हस्तसंज्ञया ॥

४--अपदान्तरञ्च परितः क्षितिक्षिता-
मपतन् द्रुतभ्रमितहेमनेमयः ।
जविमारुताञ्चितपरस्परोपम-
क्षितिरेणुकेतुवसनाः पताकिनः ॥

५--द्रुतमध्वनन्नु परिपाणिवृत्तयः
पणवा इवाश्वचरणक्षता भुवः ।
ननृतुश्च वारिधरधीरवारण-
ध्वनिहृष्टकूजितकलाः कलापिनः ॥

तेरहवां सर्ग।

युधिष्ठिरसे श्रीकृष्णजीके समागम का वर्णन ॥

१—इसके उपरान्त युधिष्ठिरने इससमय यमुनासे पार हुए इन श्रीकृष्णजी को सुना यह नहीं कहते किन्तु वह श्री कृष्णजी जिससमय अपने पुरसे चलेथे तभीसे रात्रिदिन राजाको वृत्तान्त मिला ॥

२—इसके अनन्तर वह राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णजीके आगमन से उत्पन्नहुए हर्षके कारण बहुत बड़े भी पुरमें मानों नहीं अमातेहुए एकाएकी छोटे भाइयों के साथ इन श्रीकृष्ण-जी के सन्मुख चले ॥

३--हर्षसे प्रवृत्त कुरुवंशियोंकी सेनाके नगाड़ोंके शब्दोंसे बधिर कानवाले लोगोंके वक्ता लोगोंने यथेष्ट वार्त्ताओं में चली हुई बातका शेष हाथोंकी संज्ञासे कहा ॥

४--शीघ्र लौटीहुई सुवर्णकी नेमिवाले वेगयुक्त पवनसे कंपित कीगई परस्परमें तुल्य पृथ्वीकी रेणु और पताकाओं के वस्त्रवाले राजालोगों के रथ, सब ओर से पदमात्र के भी अवकाश के विना दौड़े ॥

५--घोड़ोंके खुरोंसे ताड़ित भूमियां ऊपर हाथोंके ताड़नवाले पणव (वाद्यविशेष) के समान शीघ्र शब्दयुक्तहुईं मेघों के शब्दके तुल्य गंभीर हाथियोंकी ध्वनियोंसे प्रसन्न मधुरशब्द वाले मोर नाचने लगे ॥

६--व्रजतोरपि प्रणयपूर्वमेकतां
कुकुराधिनायकुरुनाथसैन्ययोः।
रुरुषे विषाणिभिरनुक्षणम्मिथो
मदमूढवुद्धिषु विवेकिता कुतः॥

७--अवलोक एव नृपतिः स्म दूरतो
रभसाद्रथादवतरीतुमिच्छतः।
अवतीर्णवान् प्रथममात्मनाहरि-
र्विनयं विशेषयति संभ्रमेण सः॥

८--वपुषा पुराणपुरुषः पुरःक्षितौ
परिपुञ्ज्यमानपृथुहारयष्टिना।
भुवनैर्नतोऽपि विहितात्मगौरवः
प्रणनाम नाम तनयम्पितृष्वसुः॥

९--मुकुटांशुरञ्जितपरागमग्रतः
स न यावदाप शिरसा महीतलम्।
क्षितिपेन तावदनपेक्षितक्रमं
भुजपञ्जरेण रभसादगृह्यत॥

१०--न ममौ कपाटतटविस्तृतन्तनौ
मुरवैरिवक्ष उरसि क्षमाभुजः।
भुजयोस्तथापि युगलेन दीर्घयो-
र्विकटीकृतेन परितोऽभिषस्वजे॥

११--गतया निरन्तरनिवासमध्युरः
परिनाभि नूनमवमुच्य वारिजम्।
कुरुराजनिर्दयनिपीडनाभयात्
मुखमध्यरोहि मुरविद्विषः श्रिया॥

६--उससमय श्रीकृष्णजीकी और युधिष्ठिरकी सेनाओंके स्नेह-
पूर्व्वक एकताको प्राप्तहोनेपर भी हाथी क्षण क्षणमें पर-
स्पर क्रुद्धहुए क्योंकि मदसे मूढबुद्धिवालों में विवेक कहाँ ॥

७--दूरसे हर्षपूर्व्वक रथसे उतरनेकी इच्छाकरते हुए युधिष्ठिर
से पहलेही उतरेहुए उन श्रीकृष्णजी ने विशेष शीघ्रतासे
विनय बढ़ाई ॥

८--पुराणपुरुष श्रीकृष्णजी ने संसार भरसे नमस्कार किये
गयेभी अपने गौरवके उत्पन्न करनेवाले होकर सन्मुखकी
पृथ्वीमें इकट्ठीकीगई स्थूल यष्टिकाके समान मालावाले
शरीरसे बुआके पुत्र युधिष्ठिरको नमस्कार किया ॥

९--वह श्रीकृष्णजी मुकुटकी किरणों से रागयुक्त कीगई धूल
वाले पृथ्वीतल में जबतक शिरसे नहीं प्राप्तहुए तभीतक
राजा युधिष्ठिरने परिपाटीकी अपेक्षा न करके भुजारूपी
पिंजरे के द्वारा वेग से ग्रहणकिया ॥

१०--कपाटोंके तटके तुल्य विस्तारयुक्त श्रीकृष्णजीका वक्षस्स्थ-
ल दुर्बल युधिष्ठिरजी के हृदयमें नहीं अमाया तिसपरभी
बढ़ाई हुई दोनों भुजाओंसे सबओरसे आलिंगनकिया ॥

११--नाभिकमलको छोड़कर हृदयमें निरन्तर निवासकोप्राप्त
लक्ष्मी युधिष्ठिरके निर्दय आलिंगनके भयसे श्रीकृष्णजीके
मुखपरविराजमानहुई ॥

१२--शिरसि स्म जिघ्रति सुरारिबन्धने
छलवामनं विनयवामनन्तदा।
यशसेव वीर्य्यविजितामरद्रुम-
प्रसवेन वासितशिरोरुहे नृपः॥
१३--सुखवेदनाहृषितरोमकूपया
शिथिलीकृतेऽपि वसुदेवजन्मनि।
कुरुभर्तुरंगलतया न तत्यजे
विकसत्कदम्बनिकुरम्बचारुता॥
१४--इतरानपि क्षितिभुजोऽनुजन्मनः
प्रमनाः प्रमोदपरिफुल्लचक्षुषः।
स यथोचितं जनसभाजनोचितः
प्रसभोद्धृतासुरसभोऽसभाजयत्॥
१५--समुपेत्य तुल्यमहसः शिलाघनान्
घनपक्षदीर्घतरबाहुशालिनः।
परिशिश्लिषुः क्षितिपतीन् क्षितीश्वराः
कुलिशात्परेण गिरयो गिरीनिव॥
१६--इभकुम्भतुंगघटितेतरेतर-
स्तनभारदूरविनिवारितोदराः।
परिफुल्लगण्डफलकाः परस्पर-
म्परिरेभिरे कुकुरकौरवस्त्रियः॥
१७--रथवाजिपत्तिकरिणीसमाकुल-
न्तदनीकयोः समगतद्वयम्मिथः।
दधिरे पृथक्करिण एव दूरतो
महतां हि सर्वमथवा जनातिगम्॥

१२--राजा युधिष्ठिरने बलिके बन्धनमें कपट से वामनरूपवाले उस समय विनय से वामन (नम्र) श्रीकृष्णजीको पराक्रमसे पारिजातके जीतनेसे मानों उत्पन्न यशसे सुगन्धित केशवाले शिरमें सूंघा ॥

१३--श्रीकृष्णजीके छूटने परभी सुखके अनुभव से प्रसन्न रोम कूपवाली युधिष्ठिरजी के शरीररूपी लताने प्रफुल्लित कदम्बके समूहकी सुन्दरता नहीं त्यागी ॥

१४--सबके स्वागत करनेके योग्य बलसे दैत्योंके समूहोंके नाश करनेवाले प्रसन्नचित्त उन श्रीकृष्णजीने आनन्दसेप्रफुल्लित नेत्रवाले अन्य भीमादिक राजा युधिष्ठिरके भाइयोंकोयथायोग्य कुशल प्रश्नादिकों से आनन्दित किया ॥

१५--सम तेजवाले शिलाओंके तुल्य दृढघने पक्षोंके तुल्य बड़ी भुजाओं से शोभित राजालोगोंको राजालोग इकट्ठे प्राप्त होकर वज्रके लगनेसे पहले पर्व्वतोंको प्राप्त होकर पर्व्वतों के समान शोभित हुए ॥

१६--हाथियोंके मस्तकोंके समान ऊँचे और मिले हुए एकदूसरोंके स्तनोंके भारोंसे दूर निवारणकिये गये स्तनोंके भारों वाली रोमांचयुक्त कपोलों वाली यादव और पाण्डवोंकी स्त्रियोंने परस्पर आलिंगन किया ॥

१७--रथघोड़े पैदल और हथिनियोंसे व्याप्त वहदोनों सेनापरस्पर मिलीं हाथी दूरसेही अलग रक्खे गये क्योंकि बड़ोंकी सम्पूर्ण बातें लोगोंसे विलक्षणहोती हैं ॥

१८--अधिरुह्यतामिति महीभृतोदितः
कपिकेतुनार्पितकरो रथं हरिः।
अवलम्बितैलविलपाणिपल्लवः
श्रयति स्म मेघमिव मेघवाहनः॥

१९--रथमास्थितस्य च पुराभिवर्त्तिन-
स्तिसृणाम्पुरामिव रिपोर्मुरद्विषः।
अथ धर्ममूर्त्तिरनुरागभावितः
स्वयमादित प्रवयणम्प्रजापतिः॥

२०--शनकैरथास्य तनुजालकान्तर-
स्फुरितक्षपाकरकरोत्कराकृति।
पृथुफेनकूटमिव निम्नगापते-
र्मरुतश्च सूनुरधुवत्प्रकीर्णकम्॥

२१--विकसत्कलायकुसुमासितद्युते-
रलघूडुपाण्डु जगतामधीशितुः।
यमुनाह्रदोपरिगहंसमण्डल-
द्युतिजिष्णुजिष्णुरभृतोष्णवारणम्॥

२२--पवनात्मजेन्द्रसुतमध्यवर्त्तिना
नितरामरोचि रुचिरेण चक्रिणा।
दधतेव योगमुभयग्रहान्तर-
स्थितिकारितन्दुरुधुराख्यमिन्दुना॥

१८—श्रीकृष्णजी चढ़ो इस प्रकार राजा युधिष्ठिरसे कहेगये अर्जुनके हाथका सहारा लेकर कुबेरके हाथरूपी पल्लवका सहारालेने वाले मेघपर इन्द्रके समान रथपरचढ़े ॥

१९—इसके उपरान्त परस्पर चढ़ेहुए पुरके सन्मुख चले हुए त्रिपुरके मारनेवाले शिवजीके समान श्रीकृष्णजीकाधर्ममूर्ति राजायुधिष्ठिरने अनुराग से युक्तहोकर आपहीप्रतोद (चाबुक) ग्रहणकिया ॥

२०—इसके उपरान्त इनश्रीकृष्णजीके सूक्ष्म छिद्रोंके भीतरफैले हुए चन्द्रमाकी किरणोंके समूहके तुल्य आकृति वाला चमर समुद्रके बड़े फेनों के समूहके समान भीमसेनने ढुलाया ॥

२१—प्रफुल्लित कलाय (वृक्षविशेष) के पुष्पके समान नीलवर्णवाले जगत्के नाथ श्रीकृष्णजी के अर्जुनने, बड़े नक्षत्रोंके तुल्य श्वेतवर्णवाला यमुनाजी के कुण्डके ऊपरप्राप्त हंसोंके समूहकी शोभाका जीतनेवाला छत्रलगाया ॥

२२—भीमसेन और अर्जुनके मध्यमें प्राप्त सुन्दर श्रीकृष्णजी दो ग्रहोंके मध्यमें स्थितिसे प्राप्त दुर्धुर नाम योगको धारण करतेहुए चन्द्रमाके समान अत्यन्त शोभितहुए ॥

२३--वशिनं क्षितेरयनयाविवेश्वर-
न्नियमो यमश्च नियतं यतिं यथा।
विजयश्रिया वृतमिवार्कमारुता-
वनुसस्रतुस्तमथ दस्रयोः सुतौ॥

२४--मुदितैस्तदेति दितिजन्मनां रिपा-
वविनीयसम्भ्रमविकाशिभक्तिभिः।
उपसेदिवद्भिरुपदेष्टरीव तै-
र्ववृते विनीतमविनीतशासिभिः॥

२५--गतयोरभेदमिति सैन्ययोस्तयो-
रथ भानुजह्नुतनयाम्भसोरिव।
प्रतिनादितामरविमानमानकै-
र्नितराम्मुदा परमयेव दध्वने॥

२६--मखमीक्षितुं क्षितिपतेरुपेयुषा-
म्परितः प्रकल्पितनिकेतनं बहिः।
उपरुध्यमानमिव भूभृताम्बलैः
पुटभेदनन्दनुसुतारिरैक्षत॥

२७--प्रतिनादपूरितदिगन्तरः पतन्
पुरगोपुरम्प्रति स सैन्यसागरः।
रुरुचे हिमाचलगुहामुखोन्मुखः
पयसाम्प्रवाह इव सौरसैन्धवः॥

२३–इसके उपरान्त इन्द्रियोंके जीतनेवाले राजाकेपीछे शुभके देनेवाले भाग्य और नीतिके समान, आचारमें निष्ठ यती के पीछे यम औरनियमके समान, विजयकीलक्ष्मी से युक्तके पीछे सूर्य्य और वायुके समान नकुल और सहदेव उन श्रीकृष्णजी के पीछे चले ॥

२४–उससमय इसप्रकार प्रसन्न कपट भिन्न आदरसे प्रकटभक्ति वाले दुष्टोंको शिक्षादेने वाले पाण्डव लोगोंने श्रीकृष्णजी में गुरूमें शिष्योंके समान नीतिपूर्व्वक वर्त्ताव किया ॥

२५–इसप्रकार दोनों सेनाओं के यमुना और गंगाजी के जलों के समान एकताको प्राप्तहोने पर इसके उपरान्त मंगलके नगाड़े मानोंबड़े आनन्दसे देवताओंके विमानों के प्रतिशब्द(झाईंशब्द)करनेवालेहोनेपरअत्यंतशब्दायमानहुए ॥

२६–युधिष्ठिर के यज्ञके देखने के लिये आयेहुए राजालोगों की सेनाओं से बाहर सबओरसे बनायेगये स्थानवाले मानों घेरेगये नगरको श्रीकृष्णजी ने सन्मुखदेखा ॥

२७–प्रतिशब्दोंसे दिशाओंके मध्यका व्याप्त करनेवाला पुरीके द्वारके प्रति जाताहुआ सेनारूपी समुद्र हिमाचलकी गुहा के मुखमें जानेको तैयार गंगाजी के प्रवाह के समान शोभितहुआ ॥

२८—असकृद्गृहीतबहुदेहसम्भव-
स्तदसौ विभक्तनवगोपुरान्तरम् ।
पुरुषः पुरम्प्रविशतिस्म पञ्चभिः
सममिन्द्रियैरिव नतेन्द्रसूनुभिः ॥

२९—तनुभिस्त्रिणेत्रनयनानवेक्षित-
स्मरविग्रहद्युतिभिरच्युतन्नराः ।
प्रमदाश्च यत्र खलु राजयक्ष्मणः
परतो निशाकरमनोरमैर्मुखैः ॥

३०--अवलोकनाय सुरविद्विषान्द्विषः
पटहप्रणादविहितोपहूतयः ।
अवधीरितान्यकरणीयसत्वराः
प्रतिरथ्यमीयुरथ पौरयोषितः ॥

३१--अभिवीक्ष्य सामिकृतमण्डनं यतीः
कररुद्धनीविगलदंशुकाः स्त्रियः ।
दधिरेऽधिभित्ति पटहप्रतिस्वनैः
स्फुटमट्टहासमिव सौधपंक्तयः ॥

३२--रभसेन हारपददत्तकांचयः
प्रतिमूर्द्धजन्निहितकर्णपूरकाः ।
परिवर्त्तिताम्बरयुगाः समापतन्
वलयीकृतश्रवणपूरकाः स्त्रियः ॥

३३—व्यतनोदपास्य चरणम्प्रसाधिका
करपल्लवाद्रसवशेन काचन ।
द्रुतयावकैकपदचित्रितावनि-
म्पदवीङ्गतेव गिरिजा हरार्द्धताम् ॥

२८--वारंवार बहुतसे शरीरोंमें प्रादुर्भावके ग्रहणकरनेवाले पुराण पुरुष नवीन द्वारवाले उस पुरमें पांचइन्द्रियोंके समान पांच राजपुत्र युधिष्ठिरादिकोंके साथ उन श्रीकृष्णजी ने प्रवेशकिया ॥

२९--जिसपुरमें पुरुष शिवजीके नेत्रसे नहीं देखेगये कामदेवके शरीरके समान द्युतिवाले शरीरों से कान्तियुक्त होतेथे और स्त्रियां क्षयीरोगसे रहित चन्द्रमाके तुल्य मनोरम मुखोंसे शोभित होतीथीं ॥

३०--इसके उपरान्त दुन्दुभियोंके शब्दोंसे मानों बुलाई गई पुर की स्त्रियां दैत्योंके शत्रु श्रीकृष्णजीके दर्शन के लिये अन्य कार्य्योंकी त्यागकरनेवालीं औरवेगयुक्तगलीमें प्राप्तहुई ॥

३१--आधे अलंकारको करके जाती हुई हाथसे पकड़े हुए ग्रन्थि वाले गिरते हुए वस्त्रोंवालीं स्त्रियों को देखकर गृहों की पंक्तियोंने दिवालोंमें नगाड़ोंके प्रति शब्दोंसे मानोंउत्पन्न हुए अट्टाट्टहासोंको धारणकिया ॥

३२--शीघ्रता से हारके स्थानमें क्षुद्रघंटिका की रखने वाली केशोंमें वर्णके आभूषणोंकी धारण करने वाली उलटे पलटे वस्त्रोंके युगों की धारण करनेवाली कर्ण के आभूषणों का कंकण बनाने वाली स्त्रियां दौड़ीं ॥

३३--किसी स्त्रीने रसके वशीभूतहोकर शृंगार करनेवालीकेहाथरूपी पल्लवसे चरणको हटाकर शिवजीके अर्द्धांग को प्राप्त पार्वतीजी के समान महावरके द्वारा एक चरणसेचित्रवर्ण वाली पृथ्वीवाला मार्ग बनाया ॥

३४--विशाल कटिके भागोंके ऊपर पड़ी हुई शब्दायमान मेखलाओंसे व्याकुल ऊंची सुवर्णकी सिढ़ियों में चढ़ने से बजते हुए सुवर्णके नूपुर वाली स्त्रियां गृहोंमें चलीं ॥

३५--मुरके जीतने वाले श्रीकृष्णजी के देखनेकी इच्छासे सुवर्ण सम्बन्धी गृहोंके झरोखों में प्रकाशमान स्त्रीका मुखरूपी कमल उदयाचल की कन्दराके छिद्रमें स्थित चन्द्रमाके मंडलके समान शोभित हुआ ॥

३६--ऊँचे अपनेगृहपर चढ़ी हुई वायुसे कंपायमान वस्त्रांचल वाली किसी अंगनासे वह नगर श्रीकृष्णजी के आनेपर पताकासे कीगई शोभावाला मानों शोभितहुआ ॥

३७--गृहमें स्त्रियोंने कमलकी कलियोंके समान हाथोंके युग्मों से फेंकीहुई खुलीहुई सीपीसे गिरेहुए मोतियोंके समूह केसमान मानों स्थित पुष्पके तुल्य खीलोंसे श्रीकृष्णजीको आच्छादित किया ॥

३८--पालेसे छूटे हुए चन्द्रमाके समान सुन्दर लक्ष्मी से युक्त ब्राह्मणोंको प्रसन्न करते हुए प्रद्युम्नके उत्पन्न करने वाले देवताओं के प्रसन्न करनेवाले श्रीकृष्णजी, स्त्रियोंके बहुत कालतक बड़ेउत्सवरूप हुए ॥

३९--यहशिवजी पार्वतीजीके भयसे अच्छे प्रकार इन पुरकी स्त्रियोंको नहीं देखते हैं इसीकारणसे मानों कामदेवसे निर्भयहोकर स्थितिकी गई स्त्रियोंको सन्मुख श्रीकृष्णजीने क्षणभर देखा ॥

४०–विपुलेन सागरशयस्य कुक्षिणा
भवनानि यस्य पपिरे युगक्षये ।
मदविभ्रमासकलया पपे पुनः
स पुरस्त्रियैकतमयैकया दृशा ॥

४१–अधिकोन्नमद्घनपयोधरम्मुहुः
प्रचलत्कलापिकलशंखकस्वना ।
अभिकृष्णमंगुलिमुखेन काचन
द्रुतमेककर्णविवरं व्यघट्टयत् ॥

४२–परिपाटलाब्जदलचारुणासकृ-
च्चलितांगुलीकिशलयेन पाणिना ।
सशिरःप्रकम्पमपरा रिपुम्मधो-
रनुदीर्णवर्णनिभृतार्थमाह्वयत् ॥

४३–नलिनान्तिकोपहितपल्लवश्रिया
व्यवधाय चारु मुखमेकपाणिना ।
स्फुरितांगुलीविवरनिःसृतोल्लस-
द्दशनप्रभांकुरमजृम्भतापरा ॥

४४–वलयार्पितासितमहोपलप्रभा-
बहुलीकृतप्रतनुरोमराजिना ।
हरिवीक्षणाक्षणिकचक्षुषान्यया
करपल्लवेन गलदम्बरन्दधे ॥

४५–निजसौरभभ्रमितभृंगपक्षति-
व्यजनानिलक्षयितघर्मवारिणा ।
अभिशौरि काचिदनिमेषदृष्टिना
पुरदेवतेव वपुषा व्यभाव्यत ॥

४०--कल्पके अन्तमें समुद्र में सोने वाले जिनश्रीकृष्णजीकी बड़ी कोखने संसार पी डालेथे वहश्रीकृष्णजी किसी पुरकी स्त्रीसे मदके विकारके द्वारा नहीं सम्पूर्ण एक दृष्टिसेपान किये गये ॥

४१--किसीस्त्री ने श्रीकृष्णजी के सन्मुख अधिक भुजाके उठानेसे अधिक उन्नतस्तनवाली वारंवार नाचते हुए मोर के समान मधुर कंकणकी ध्वनिवाली होकर उँगलीके अग्रभागसे एककानका छिद्र शीघ्रबन्दकिया ॥

४२--अन्य स्त्री ने रक्तकमलके पत्तों के समान सुन्दर वारंवार चलायमान पल्लवों के तुल्य अंगुलीवाले हाथसे शिरको कंपाय कर श्रीकृष्णजी को अक्षरों के विना कहे छिपाकर बुलाया ॥

४३--अन्य स्त्रीने कमलके समीप रक्खेहुए पल्लवकी शोभावाले एक हाथसे सुन्दर मुखको छिपायकर उज्ज्वल उंगलियों के मध्यसे शोभायमान दाँतोंके प्रभारूपी अंकुरों के निकलने पर जंभाईली ॥

४४--श्रीकृष्णजी के देखने में स्थिर दृष्टिवाली अन्य स्त्रीने गिरते हुए वस्त्रको कंकणमें जड़ीहुई नीलमणियों की प्रभाओं से सूक्ष्म रोमोंकी पंक्तिको घनी करने वाले हाथरूपी पल्लव से पकड़ा ॥

४५--कोई स्त्री अपनी सुगन्धिसे भ्रमण कराये गये भ्रमरों के पक्षोंके मूलरूपी पंखोंकी वायुसे नाशको प्राप्त स्वेदवाले श्रीकृष्णजीके सन्मुख पलकरहित दृष्टिवाले शरीर से पुरदेवता के समान अनुमान की गई ॥

४६--अभियाति नः सतृष एष चक्षुषो
हरिरित्यखिद्यत नितम्बिनीजनः।
न विवेद यः सततमेनमीक्षते
न वितृष्णतां व्रजति खल्वसावपि॥

४७--अकृतस्वसद्मगमनादरः क्षणं
लिपिकर्मनिर्मित इव व्यतिष्ठत।
गतमच्युतेन सह शून्यतां गतः
प्रतिपालयन्मन इवांगनाजनः॥

४८--अलसैर्मदेन सुदृशः शरीरकैः
स्वगृहान् प्रति प्रतिययुः शनैः शनैः।
अलघुप्रसारितविलोचनाञ्जलि-
द्रुतपीतमाधवरसौघनिर्भरैः॥

४९--नवगन्धवारिविरजीकृताः पुरो
घनधूपधूमकृतरेणुविभ्रमाः।
प्रचुरोद्धतध्वजविलम्बिवाससः
पुरवीथयोऽथ हरिणातिपेतिरे॥

५०--उपनीय विन्दुसरसो मयेन या
मणिदारु [illegible]रु किल वार्षपर्वणम्।
विदधेऽवधूतसुरसद्मसम्पदं
समुपासदत्सपदि संसदं स ताम्॥

५१--अधिरात्रि यत्र निपतन्नभोलिहां
कलधौतधौतशिलवेश्मनां रुचौ।
पुनरप्यवापदिव दुग्धवारिधि-
क्षणगर्भवासमनिदाघदीधितिः॥

४६–स्त्रियां हमारे नेत्रोंके तृष्णायुक्त रहनेपर भी यह श्रीकृष्ण-जी जाते हैं इस कारणसे खेदको प्राप्तहुईं जो पुरुष इन श्रीकृष्णजी को निरन्तर देखताहै वहभी तृप्तिको नहीं प्राप्त होताहै यह मानों नहीं जानती थीं ॥

४७–स्त्रियां श्रीकृष्णजीके साथ गये हुए मनकी मानों बाटदेख-तीहुईं शून्यताको प्राप्तहुईं अपने घरजाने की अपेक्षासे निवृत्त होकर चित्रकीसी लिखीं क्षणभर स्थित हुईं ॥

४८–अधिक फैलायेगये नेत्ररूपी अंजलियों से शीघ्र पियेगये श्रीकृष्णरूपी अमृतके समूहसे भारी मदसे आलस्ययुक्त शरीरोंसे उपलक्षित स्त्रियां धीरे२ अपने गृहोंके प्रति गईं ॥

४९–इसके उपरान्त श्रीकृष्णजी ने पहले नवीन सुगन्धियुक्त जलोंसे धूलिरहित कीगई घने धूपोंके धुएंसे कियेगये धू-लिके भ्रमवाली अत्यन्त उन्नत भुजाओं के दण्डों में लगे हुए वस्त्रवाली पुरकी गलियोंको उल्लंघन किया ॥

५०–मय दैत्यसे वृषपर्वाका सुन्दर मणिरूपी काष्ठ विन्दु सरसे लायकर जो सभा बनाईगई थी इन्द्रके घरकी लक्ष्मीकी तिरस्कार करनेवाली उस सभाको श्रीकृष्णजी प्राप्त हुए ॥

५१–रात्रिके समय जिससभामें मेघोंतक पहुंचनेवाले चाँदीके तुल्य श्वेत शिलावाले गृहोंकी प्रभामें प्रवेश करताहुआ चन्द्रमा फिरभी दूधके समुद्रमें क्षणभर गर्भवासको मानों प्राप्तहुआ ॥

५२–लयनेषु लोहितकनिर्मिता भुवः
शितिरत्नरश्मिहरितीकृतान्तराः ।
जमदग्निसूनुपितृतर्पणीरपो
वहति स्म या विरलशैवला इव ॥

५३–विशदाश्मकूटघटिताः क्षपाकृतः
क्षणदासु यत्र च रुचैकतां गताः ।
गृहपङ्क्तयश्चिरमतीयिरे जनै-
स्तमसीव हस्तपरिमर्शसूचिताः ॥

५४–निलयेषु नक्तमसिताश्मनाञ्चयै-
र्विसिनीवधूपरिभवस्फुटागसः ।
मुहुरत्रसद्भिरपि यत्र गौरवा-
ञ्छशलाञ्छनांशव उपांशु जघ्निरे ॥

५५–सुखिनः पुरोऽभिमुखतामुपागतैः
प्रतिमासु यत्र गृहरत्नभित्तिषु ।
नवसंगमैरविभरुः प्रियाजनैः
प्रमदन्त्रपाभरपराङ्मुखैरपि ॥

५६–तृणवाञ्छया मुहुरवाञ्चिताननान्
निचयेषु यत्र हरिताश्मवेश्मनाम् ।
रसनाग्रलग्नकिरणांकुराञ्जनो
हरिणान् गृहीतकवलानिवैक्षत ॥

५७–विपुलालवालभृतवारिदर्पण-
प्रतिमागतैरभिविरेजुरात्मभिः ।
यदुपान्तिकेषु दधतो महीरुहः
सपलाशराशिमिव मूलसंहतिम् ॥

५२—गृहोंमें नीलमणियों की किरणों से हरे वर्णसे युक्त मध्य वाली पद्मराग मणियों से बनीहुई भूमियोंको मानों थोरे शिवारवाले परशुरामके पितरों के तृप्तकरनेवाले जलोंको जो सभा धारण करती थी ॥

५३--और जिस सभामें श्वेत पत्थरोंकी शिलाओंके समूह से बनी हुई रात्रि में चन्द्रमाकी चन्द्रिकासे एकताको प्राप्त अन्धकारके समान हाथ लगाने से ज्ञात होने वाली गृहों की पंक्तियों को, लोगोंने बहुत कालमें उल्लंघनाकिया ॥

५४--जिस सभामें गृहोंमें रात्रिकेसमय कमली रूपी स्त्रियों के अपमानसे स्पष्ट अपराध वाली चन्द्रमाकी किरणें दोष-रहित नीलमणिके समूहों के द्वारा गौरवसे समीपमें वारं-वार छिपाई गई ॥

५५--जिस सभामें नवीन संगम वाली लज्जाके भारसे विमुख भीगृहोंकी रत्नोंकी दीवारोंमें पड़ेहुए प्रतिविम्बोंमें आगे सन्मुखताको प्राप्त स्त्रियोंसे प्रियलोग हर्षको प्राप्त हुए ॥

५६—जिस सभामें मरकत मणियोंके गृहोंके समूहों में तृणोंकी आशासे वारंवार मुखके झुकाने वाले जिह्वाके अग्रभागमें लगीहुई अंकुरोंके समान किरण वाले मानों ग्रासकोलिये हुए हरिणोंको जनोंनेदेखा ॥

५७—जिस सभाके समीप में वृक्ष बड़े थावलोंमें भरे जलरूपी दर्पणों में प्रतिविम्बित अपनी मूर्त्तियोंसे मानों पत्तोंके स-मूहसे युक्त मूल के समूह के धारण करनेवाले शोभित हुए ॥

५८—उरगेन्द्रमूर्द्धरुहरत्नसन्निधे-
मुहुरुन्नतस्य रसितैः पयोमुचः।
अभवत् यदंगनभुवः समुच्छ्वस-
न्नववालवायजमणिस्थलांकुराः॥
५९—नलिनी निगूढसलिला च यत्र सा
स्थलमित्यधः पतति या सुयोधने।
अनिलात्मजप्रहसनाकुलाखिल-
क्षितिपक्षयागमनिमित्ततां ययौ॥
६०—हसितुम्परेण परितः परिस्फुर-
त्करवालकोमलरुचावुपेक्षितैः।
उदकर्षि यत्र जलशंकया जनै-
र्मुहुरिन्द्रनीलभुवि दूरमम्वरम्॥
६१—अभितः सदोऽथ हरिपाण्डवौ रथा-
दमलांशुमण्डलसमुल्लसत्तनू।
अवतेरतुर्नयननन्दनौ नभः
शशिभार्गवावुदयपर्वतादिव॥
६२—तदलक्ष्यरत्नमयकुड्यमादरा-
दभिधातरीत इव इत्यथो नृपे।
धवलाश्मरश्मिपटलाविभावित-
प्रतिहारमाविशदसौ सदः शनैः॥
६३—नवहाटकेष्टकचितन्ददर्श सः
क्षितिपस्य वस्त्यमथ तत्र संसदि।
गगनस्पृशाम्मणिरुचाञ्चयेन यत्
सदनान्युदस्मयत नाकिनामपि॥

५८–सर्पोंके मस्तकोंमें उत्पन्न हुए रत्नोंकी निकटतासे वारंवार उन्नत मेघके शब्दोंसे जिस सभाके आंगनकी पृथ्वी उत्पन्न हुए नवीन वैडूर्य्य मणिके अंकुर वाली होतीथी ॥

५९–जिस सभामें छिपेहुए जलवाली कमलिनी वर्त्तमानथी जो नलिनी दुर्य्योधन के स्थलकी भ्रांतिसे नीचे गिरनेपर भीमसेनके हँसने से व्याकुल सम्पूर्ण राजा लोगोंके नाश की प्राप्तिमें कारणताको प्राप्तहुई ॥

६०–जिस सभामें सबओरसे दीप्तिमान खड्गके तुल्य श्याम कान्ति वाली नीलमणिकी पृथ्वी में हँसने के लिये अन्य पुरुषसे उपदेश कियेगये लोगोंने जलकी भ्रान्ति से वारं-वार वस्त्र उठाये ॥

६१–इसके उपरान्त तेजके पुंजसे भासमान मूर्त्तिवाले नेत्रों के आनन्द करने वाले श्रीकृष्णजी और पाण्डव सभाके सन्मुख रथसे आकाश के सन्मुख उदयाचल से चन्द्रमा और शुक्रके समान उतरे ॥

६२–इसके उपरान्त यह श्रीकृष्णजी राजा युधिष्ठिर के आदर-पूर्व्वक इधर आइये इधर आइये ऐसे कहने पर उसनहीं लक्षित रत्नोंकी दीवार वाली घने किरणोंके समूहसे नहीं लक्षित द्वारवाली सभामें धीरे धीरे प्रविष्टहुए ॥

६३–इसके उपरान्त उन श्रीकृष्णजीने सभामें नवीन सुवर्णकी-ईंटोंसे जड़े हुए राजा युधिष्ठिरके गृहको देखा जोगृहआ-काशके स्पर्श करने वाली अत्यन्त उन्नत मणियों की का-न्तियों के समूह से देवता लोगोंकेभी गृहोंको हंसताथा ॥

६४–उदयाद्रिमूर्ध्नि युगपच्चकासतो-
र्दिननाथपूर्णशशिनोरसम्भवाम्।
रुचिमासने रुचिरधाम्नि बिभ्रता-
वलघुन्यथ न्यषदतां नृपाच्युतौ॥

६५–सुतरां सुखेन सकलक्लमच्छिदा
सनिदाघमंगमिव मातरिश्वना।
यदुनन्दनेन तदुदन्वतः पयः
शशिनेव राजकुलमाप नन्दथुम्॥

६६–अनवद्यवाद्यलयगामि कोमलं
नवगीतमप्यनवगीततान्दधत्।
स्फुटसात्विकांगिकमनृत्यदुज्ज्वलं
सविलासलासिकविलासिनीजनः॥

६७–सकले च तत्र गृहमागते हरौ
नगरेऽप्यकालमहमादिदेश सः।
सततोत्सवन्तदिति नूनमुन्मुदो
रभसेन विस्मृतमभून्महीभृतः॥

६८–हरिराकुमारमखिलाभिधानवित्
स्वजनस्य वार्त्तमयमन्वयुङ्क्त च।
महतीमपि श्रियमवाप्य विस्मयः
सुजनो न विस्मरति जातु किञ्चन॥

६४–इसके उपरान्त उदयाचल के शिखरमें एकसाथ प्रकाश-
मान सूर्य्य और चन्द्रमाकी असंभव शोभाको धारण करते
हुए राजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्णजी निर्मल तेजवाले वड़े
सिंहासन पर बैठे ॥

६५–वह राजा का कुल सम्पूर्ण क्लेशोंके नाशकरनेवाले श्रीकृष्ण-
जीसे वायुसे सन्तापयुक्त शरीर के समान चन्द्रमासे स-
मुद्रके जलके समान अत्यन्त सुखपूर्व्वक आनन्दको प्राप्त
हुआ ॥

६६--विलासयुक्त नाचने वाली स्त्रियोंने निन्दारहित वाद्य के
लयको प्राप्तहोने वाले नवीन गातवाले सुन्दर स्पष्टअन्तः-
करणकी चेष्टा और शरीरकी चेष्टासे युक्त कोमल और ती-
व्रतासे नृत्यकिया ॥

६७--और उस राजायुधिष्ठिरने श्रीकृष्णजीके गृहमें आनेपर स-
म्पूर्ण उस नगरमें उत्सवकी आज्ञादी मानों बड़े आनन्द-
युक्त राजायुधिष्ठिर को वह नगर निरन्तर उत्सव वालाहै
यह बात शीघ्रतासे भूल गईथी ॥

६८--सम्पूर्ण नामोंके जानने वाले उन श्रीकृष्णजीने वालकों से
लेकर सम्पूर्ण बन्धुओंसे अनामय (तुमरोग रहितहो यह)
पूछा क्योंकि बड़ी सम्पत्तिको प्राप्तहोकरभी अहंकाररहित
सुजन कभीभी किसी को नहीं भूलताहै ॥

६९--मर्त्यलोकदुरवापमवाप्तरसोदयं
नूतनत्वमतिरिक्ततयानुपदन्दधत्।
श्रीपतिः पतिरसाववनेश्च परस्परं
संकथामृतमनेकमसिस्वदतामुभौ॥

इति श्रीशिशुपालवधे महाकाव्ये श्रीशब्दालंकृतसर्गान्ते श्रीकृष्ण-समागमो नाम त्रयोदशः सर्गः॥१३॥

६९--दोनों श्रीकृष्णजी और राजायुधिष्ठिरने परस्पर मनुष्योंको दुर्लभ रसके उदयको प्राप्त अत्यन्त स्नेहसे क्षण क्षण में अपूर्वताके धारण करनेवाले अनेक संभाषणरूपी अमृत का स्वादु लिया ॥

इति श्रीमाघकृतमहाकाव्यशिशुपालबधस्य भाषानुवादे
श्रीकृष्णसमागमो नाम त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥

श्रीकृष्णयुधिष्ठिरयोः परस्परसंभाषणवर्णनं राजसूययज्ञवर्णनं कोर्घदानयोग्य इति युधिष्ठिरेण पृष्टे भीष्मपितामहे सर्वथा भगवान् श्रीकृष्णएवार्घमर्हतीत्युक्तेयुधिष्ठिरेण श्रीकृष्णायार्घदानवर्णनम् ॥

१—तञ्जगाद गिरमुद्गिरन्निव
स्नेहमाहितविकाशया दृशा ।
यज्ञकर्मणि मनः समादधद्
वाग्विदांवरमकद्वदो नृपः ॥

२—लज्जते न गदितः प्रियम्परो
वक्तुरेव भवति त्रपाधिका ।
व्रीडमेति न तव प्रियं वदन्
ह्रीमतात्रभवतैव भूयते ॥

३—तोषमेति वितथैः स्तवैः पर-
स्ते च तस्य सुलभाः शरीरिभिः ।
अस्ति न स्तुतिवचोऽनृतन्तव
स्तोत्रयोग्य! न च तेन तुष्यसि ॥

४—वह्वपि प्रियमयन्तव ब्रुवन्
न व्रजत्यनृतवादितां जनः ।
सम्भवन्ति यददोषदूषिते
सार्व ! सर्वगुणसम्पदस्त्वयि ॥

चौदहवां सर्ग ॥

श्रीकृष्ण युधिष्ठिरकी परस्पर वार्त्ता-राजसूय यज्ञका वर्णन-अर्घ देनेके योग्य कौनहै ऐसा युधिष्ठिर करके भीष्म पितामहसे पूछना और भीष्मजीकरके अर्घदेनेके योग्य स्तुतिपूर्व्वक श्रीकृष्णजी को कहाजाना और युधिष्ठिरकरके श्रीकृष्णजीको अर्घ दियाजाना ॥

१—सुन्दर बोलनेवाले राजायुधिष्ठिर यज्ञके कर्ममें मनको प्रवृत्त करतेहुए प्रसादयुक्त दृष्टिसे मानों स्नेहको वमन करते हुए अच्छे बोलनेवालों में श्रेष्ठ उन श्रीकृष्णजी से वचन बोले ॥

२—कोई पुरुष प्रिय वचन कहागया लज्जित नहीं होता किन्तु कहनेवाले को लज्जा होती है तुमको प्रिय कहतेहुए लज्जा नहीं होती किन्तु पूजन करने के योग्य आपही लज्जित होतेहो ॥

३—अन्य पुरुष मिथ्या स्तुतियोंसे सन्तोषको प्राप्तहोताहै और वह मिथ्या स्तुतियां प्राणियोंको सुलभ हैं हे स्तुतिके योग्य तुम्हारी स्तुतिका वचन मिथ्यानहीं होता और उस स्तुति के वचन से आप प्रसन्न नहीं होते ॥

४—यह पुरुष (मैं) बहुतभी तुमको प्रिय कहताहुआ मिथ्यावादी पनेको नहीं प्राप्तहोता जिसहेतुसे हे सबके हित करने वाले दोषोंसे रहित आपमें संपूर्ण गुणोंकी सम्पत्तियां संभव होती हैं ॥

५—सा विभूतिरनुभावसम्पदां
भूयसी तव यदायतायति ।
एतदूढगुरुभार ! भारतं
वर्षमद्य मम वर्त्ततेवशे ॥

६—सप्ततन्तुमधिगन्तुमिच्छतः
कुर्वनुग्रहमनुज्ञया मम ।
मूलतामुपगते खलु त्वयि
प्रापि धर्ममयवृक्षता मया ॥

७—संभृतोपकरणेन निर्मलां
कर्त्तुमिष्टिमभिवाञ्छता मया ।
त्वं समीरण इव प्रतीक्षितः
कर्षकेण बलजान् पुपूषता ॥

८—वीतविघ्नमनघेन भाविता
सन्निधेस्तव मखेन मेऽधुना ।
को विहन्तुमलमास्थितोदये
वासरश्रियमशीतदीधितौ ॥

९—स्वापतेयमधिगम्य धर्मतः
पर्य्यपालयमवीवृधञ्च यत् ।
तीर्थगामि करवै विधानत-
स्तज्जुषस्व जुहवानि चानले ॥

१०—पूर्वमंग ! जुहुधि त्वमेव वा
स्नातवत्यवभृथे ततस्त्वयि ।
सोमपायिनि भविष्यते मया
वाञ्छितोत्तमवितानयाजिना ॥

५--हेबड़े भारके धारण करनेवाले यहभारतवर्ष इससमय बहुत काल पर्य्यन्त वर्त्तमान है (वर्त्तमान रहैगा) वह तुम्हारी सामर्थ्यकी सम्पत्तियोंकी बड़ी महिमा है ॥

६--यज्ञको प्राप्तहोनेकी इच्छा करतेहुए मुझपर आज्ञादेने से अनुग्रहकरो क्योंकि तुम्हारे मुख्यहोनेपर मैं धर्ममयवृक्ष-पनेको प्राप्तहुआ ॥

७--दोषरहित यज्ञकरनेकी इच्छाकरतेहुए साधनों के इच्छाकर-नेवाले मैंने तुम्हारी बाटदेखी अन्नकी राशियोंको वसावने की इच्छाकरनेवाले खेतवाले से वायुकेसमान ॥

८--इससमय तुम्हारे निकटहोनेसे हमारा यज्ञ विघ्नोंसे रहित निर्दोषहोगा क्योंकि सूर्य्य के उदयहोने पर कौनदिनकी शोभाके नाशकरनेको समर्थ होताहै ॥

९--जोद्रव्य धर्मसे पायकर यत्नसे पालनकियाथा और बढ़ा-याथा वह द्रव्य विप्रोंको दूंगा उसको तुम भोगकरो और अग्निमें हवनकरूंगा ॥

१०--हे श्रीकृष्ण पहले तुम्हीं यज्ञकरो सोम (लताकारस) के पीनेवाले आपके यज्ञके अन्तमें स्नानकरने वाले होने पर पीछे मैं वांछाकियेहुए उत्तम यज्ञका करनेवाला हूंगा ॥

११–किं विधेयमनया विधीयता-
न्त्वत्प्रसादजितयार्थसम्पदा।
शाधि शासक! जगत्त्रयस्य मा-
माश्रवोऽस्मि भवतः सहानुजः॥

१२–तं वदन्तमिति विष्टरश्रवाः
श्रावयन्नथ समस्तभूभृतः।
व्याजहार दशनांशुमण्डल-
व्याजहारशबलन्दधद्वपुः॥

१३–सादिताखिलनृपम्महन्महः
सम्प्रति स्वनयसम्पदैव ते।
किम्परस्य स गुणः समश्नुते
पथ्यवृत्तिरपि यद्यरोगिताम्॥

१४–तत् सुराज्ञि भवति स्थिते पुरः
कः क्रतुं यजतु राजलक्षणम्।
उद्धृतौ भवति कस्य वा भुवः
श्रीवराहमपहाय योग्यता॥

१५–शासनेऽपि गुरुणि व्यवस्थितं
कृत्यवस्तुषु नियुङ्क्ष्व कामतः।
त्वत्प्रयोजनधनन्धनञ्जया-
दन्य एष इति माञ्च मावगाः॥

१६–यस्तवेह सवने न भूपतिः
कर्म कर्मकरवत् करिष्यति।
यस्य नेष्यति वपुः कबन्धता-
म्बन्धुरेष जगतां सुदर्शनः॥

११--आपके अनुग्रहसे जीतीहुई इसधनकी सम्पत्तिसे कौनसा कार्य्य करनाचाहिये हे तीनों लोकोंके शिक्षादेने वाले मुझे शिक्षाकरो भाइयों समेत तुम्हारा विधेय (वचनमें स्थित) हूं ॥

१२--इसके उपरान्त श्रीकृष्णजी इस प्रकार कहते हुए राजा युधिष्ठिर से सम्पूर्ण राजा लोगों को सुनाते हुए दांतों की किरणोंके मण्डलके मिस वाले हारसे चित्रवर्णयुक्त शरीर को धारण करते हुए बोले ॥

१३--इस समय हमारा बड़ातेज अपनी नीतिकी महिमा सेही सम्पूर्ण राजाओंका जीतने वालाहै क्योंकि जो पथ्य वृत्ति (गुणकारी अन्न पानादिकी क्रिया) वालाभी अरोगताको प्राप्तहोय तो यहभी क्या वैद्य का गुणहै किन्तु नहीं ॥

१४--इस कारणसे उत्तम राजा आपके सन्मुख स्थित होने पर कौन राजाके चिह्नसेयुक्त (राजसूय) यज्ञकरै जैसे पृथ्वी के उठाने में श्री वराहजी को छोड़कर किस की योग्यताहै ॥

१५--बड़ीभी आज्ञामें स्थित मुझे कर्त्तव्य कार्य्योंमें यथेच्छआज्ञा दीजिये तुम्हारे प्रयोजनरूपी धन वाले मुझको अर्जुन से अन्य न समझो ॥

१६--जो राजा तुम्हारे इस यज्ञमें वृत्तिके तुल्य कार्य्य न करैगा उस राजाका शरीर यह सुदर्शन चक्र कबन्धपने को प्राप्तकरैगा ॥

१७–इत्युदीरितगिरन्नृपस्त्वयि
श्रेयसि स्थितवति स्थिरा मम।
सर्वसम्पदिति शौरिमुक्तवा-
नुद्वहन् मुदमुदस्थित क्रतौ॥

१८–आननेन शशिनः कलान्दध-
द्दर्शनक्षयितकामविग्रहः।
आप्लुतः स विमलैर्जलैरभू-
दष्टमूर्तिधरमूर्तिरष्टमी॥

१९–तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यता-
म्बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।
कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद्
वृत्तिभाजि करणे यथर्त्विजि॥

२०–शब्दितामनपशब्दमुच्चकै-
र्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।
याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्
द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्॥

२१–सप्तभेदकरकल्पितस्वरं
साम सामविदसंगमुज्जगौ।
तत्र सूनृतगिरश्च सूरयः
पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत॥

१७–इस प्रकारके वचन कहनेवाले श्रीकृष्णजीसे राजायुधिष्ठिर ने आपके कल्याणमें स्थित होनेपर मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति-यांस्थिरहैं यह कहने वाले आनन्दको प्राप्तहोतेहुए यज्ञकर-ने के लिये उद्योग किया ॥

१८–मुखसे चन्द्रमाकी कलाकेसमान कान्तिको धारण करतेहुए दर्शनसे काम और क्रोध के नाश करने वाले निर्मलजलों से स्नान करने वाले वह राजायुधिष्ठिर आठमूर्तियों के धारण करने वाले (शिवजी) की आठवीं मूर्तिहुए ॥

१९--क्रियाओं (होमादिक और पुण्य पापादि कर्मों) को नहीं करते हुए सांख्यशास्त्र में कहे हुए आत्माकी तुल्यता को धारण करते हुए राजायुधिष्ठिरकी उसकर्मके समान यज्ञ कराने वालेके वृत्ति (होमादि व्यापार और पुण्य पापादि कर्म) के करने वाले होने पर उस यज्ञ कराने वालों के व्यापारके साक्षात्कार करनेसे कर्त्तृता (कर्त्तापन) हुई ॥

२०--मीमांसा शास्त्रके जानने वाले यज्ञ कराने वालोंनेउच्चारण कीगई याज्या (एक प्रकारकी श्रुति) के द्वारा उच्चस्वरसे अशुद्ध शब्दके विना आह्वान कीगई देवताका उद्देश्य करके सम्पूर्ण वस्तुको याज्या(एकप्रकारकीश्रुति) से हवनकिया॥

२१--सामवेदके जानने वालेने सातप्रकारसे हाथकेद्वारा कल्पना किये गये स्वरवाले सामवेदको स्पष्टगान किया और प्रिय और सत्यवचन वाले पण्डितों ने कल्याण के करने वाले ऋग्वेद और यजुर्वेद पढ़े ॥

२२–बद्धदर्भमयकाञ्चिदामया
वीक्षितानि यजमानजायया ।
शुष्मणि प्रणयनादिसंस्कृते
तैर्हवींषि जुहवाम्बभूविरे ॥

२३–नाञ्जसा निगदितुं विभक्तिभि-
र्व्यक्तिभिश्च निखिलाभिरागमे ।
तत्र कर्मणि विपर्य्ययेणीनमन्
मन्त्रमूहकुशलः प्रयोगिणः ॥

२४–संशयाय दधतोः सरूपतां
दूरभिन्नफलयोः क्रियाम्प्रति ।
शब्दशासनविदः समासयो-
र्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते ॥

२५–लोलहेतिरसनाशतप्रभा-
मण्डलेन लसता हसन्निव ।
प्राज्यमाज्यमसकृद्वषट्कृत-
न्निर्मलीमसमलीढ पावकः ॥

२६–तत्र मन्त्रपवितं हविः क्रता-
वश्नतो न वपुरेव केवलम् ।
वर्णसम्पदमतिस्फुटान्दध-
न्नाम चोज्ज्वलमभूद्धविर्भुजः ॥

२७–स्पर्शमुष्णमुचितन्दधच्छिखी
यद्दाह हविरद्भुतन्न तत् ।
गन्धतोऽपि हुतहव्यसम्भवा-
द्देहिनामदहदोघमंहसाम् ॥

२२–कुशाओंकी क्षुद्रघंटिकाकी बांधनेवाली यजमानकी स्त्री से देखागया हव्य प्रणयन (संस्कार विशेष) से शुद्ध अग्निमें उन यज्ञकरानेवालों ने हवनकिया ॥

२३–उस कर्ममें अन्यप्रकार से सुनेहुए शब्दके लिंग वचनादिकोंसे बदलनेमें चतुर यज्ञके करानेवालों ने वेदमें संपूर्ण विभक्तियों से और लिंगोंसे नहीं सुखपूर्वक कहने के योग्य इसमन्त्रको बदलदिया ॥

२४–सन्देह उत्पन्न करनेके लिये तुल्यताको धारण करतेहुए क्रियाके प्रति अत्यन्त विलक्षण फलवाले समासोंके होने पर व्याकरण शास्त्रके ज्ञाता यज्ञ करानेवालों ने स्वरसे विग्रह (वाक्यसे अर्थकाकहना) को निश्चय किया ॥

२५–प्रकाशमान चंचल ज्वालारूपी सैकड़ों जिह्वाओं के प्रभा मंडलसे मानों हंसतीहुई अग्निमें वषट्कारसे हवन किये गये शुद्ध बहुत घृतका वारंवार स्वादुलिया ॥

२६–उसयज्ञमें मन्त्रोंसे पवित्र घृतादिक वस्तुओंको खातीहुई अग्निका अत्यन्त प्रकाशमान वर्णोंकी सम्पत्तियोंको धारण करताहुआ केवल शरीरही नहीं उज्ज्वलहुआ किन्तु नाम भी उज्ज्वल हुआ ॥

२७–स्वाभाविक उष्ण स्पर्शको धारण करनेवाली अग्निने जो घृतादिक भस्मकिया वह अद्भुतनहीं है क्योंकि हवनकीगई शाकल्यसे उत्पन्न सुगन्धिसे भी प्राणियोंके पापोंका समूह भस्मकरदिया ॥

२८—उन्नमन् सपदि धूम्रयन्दिशः
सान्द्रतान्दधदधः कृताम्बुदः ।
द्यामियाय दहनस्य केतनः
कीर्त्तयन्निव दिवौकसाम्प्रियम् ॥

२९—निर्जिताखिलमहार्णवौषधि-
स्यन्दसारममृतं ववल्गिरे ।
नाकिनः कथमपि प्रतीक्षितुं
हूयमानमनले विषेहिरे ॥

३०—तत्र नित्यविहितोपहूतिषु
प्रोषितेषु पतिषु द्युयोषिताम् ।
गुम्फिताः शिरसि वेणयोऽभवन्
न प्रफुल्लसुरपादपस्रजः ॥

३१—प्राशुराशु हवनीयमत्र यत्
तेन दीर्घममरत्वमध्यगुः ।
उद्धतानधिकमेधितौजसो
दानवांश्च विबुधा विजिग्यिरे ॥

३२—नापचारमगमन् क्वचित् क्रियाः
सर्वमत्र समपादि साधनम् ।
अत्यशेरत परस्परन्धियः
सत्रिणां नरपतेश्च सम्पदः ॥

३३—दक्षिणीयमवगम्य पङ्क्तिशः
पङ्क्तिपावनमथ द्विजव्रजम् ।
दक्षिणः क्षितिपतिर्व्यशिश्रण-
दक्षिणाः सदसि राजसूयकीः ॥

२८–शीघ्र ऊपरको जातीहुई दिशाओं को मैलीकरती हुई घने-पनको धारणकरतीहुई मेघोंको नीचे करनेवाली अग्निकी पताका (धूम्र) देवतालोगों के प्रियको मानों कहतीहुई आकाशमें प्राप्तहुई ॥

२९–देवतालोग संपूर्ण समुद्रकी औषधियोंके निकलेहुए रसके सारांशके जीतनेवाले अमृतनाम शाकल्यको भोजनकरते भये-अग्निमें हवनकीगई शाकल्यकी बाट देखनेको किसी प्रकार समर्थहुए ॥

३०–उसयज्ञमें नित्य आह्वान कियेगये पतियोंके परदेश जाने पर स्वर्गकी स्त्रियोंके शिरमें जटायें पड़गईं-प्रफुल्लित कल्प-वृक्षकी माला नहीं गूंथीगईं ॥

३१–देवता लोगों ने इस यज्ञ में शीघ्र शाकल्य कोजो भोजन किया इससे (देवतालोग) बहुत काल तक देवतापने को प्राप्तहुए और अत्यन्त बढ़ेहुए बलवाले होकर प्रचण्ड दैत्योंको जीतलिया ॥

३२–इस यज्ञमें कहींभी कर्म दोषोंको नहीं प्राप्तहुए सम्पूर्णसा-धन सम्पन्न हुए यज्ञ कराने वालोंकी बुद्धियां और राजा की सम्पत्तियां परस्पर बढ़ीं ॥

३३--इसके उपरान्त उदार राजाने दक्षिणाके योग्य पंक्तिकेपवित्र करने वाले ब्राह्मणों के समूहको पंक्ति के क्रमसे प्राप्तहो-कर सभामें राजसूय यज्ञकी दक्षिणादीं ॥

३४–वारिपूर्वमखिलासु सत्क्रिया-
लब्धशुद्धिषु धनानि वीजवत्।
भावि बिभ्रति फलम्महद् द्विज-
क्षेत्रभूमिषु नराधिपोऽवपत्॥

३५–किं नु चित्रमधिवेदि भूपति-
र्दक्षयन्द्विजगणानपूयत।
राजतः पुपुविरे निरेनसः
प्राप्य तेऽपि विमलम्प्रतिग्रहम्॥

३६–स स्वहस्तकृतचिह्नशासनः
पाकशासनसमानशासनः।
आशशांकतपनार्णवस्थिते-
र्विप्रसादकृत भूयसीर्भुवः॥

३७–शुद्धमश्रुतिविरोधि बिभ्रतं
शास्त्रमुज्ज्वलमवर्णसंकरैः।
पुस्तकैः सममसौ गणम्मुहु-
र्वाच्यमानमशृणोद् द्विजन्मनाम्॥

३८–तत्प्रणीतमनसामुपेयुषा-
न्द्रष्टुमाहवनमग्रजन्मनाम्।
आतिथेयमनिवारितातिथिः
कर्तुमाश्रमगुरुः स नाश्रमत्॥

३९–मृग्यमाणमपि यद्दुरासदं
भूरिसारमुपनीय तत् स्वयम्।
आसतावसरकांक्षिणो वहि-
स्तस्य रत्नमुपदीकृतं नृपाः॥

३४—राजाने अच्छी क्रियाओंसे शुद्धिको प्राप्त ब्राह्मणरूपी क्षेत्रकी पृथ्वियों में होनेवाले बड़े फलके धारण करनेवाले बीजोंके समान धन जलके दानपूर्वक बोये (दिये) ॥

३५—राजायुधिष्ठिर वेदीमें ब्राह्मणों को प्रसन्न करते हुए पवित्र हुए यह क्या आश्चर्य्य है किन्तु वह ब्राह्मण लोगभी पातकरहित राजासे शुद्ध प्रतिग्रह को लेकर पवित्र होगये ॥

३६—इन्द्रके समान आज्ञावाले उन राजा युधिष्ठिरने अपने हाथसे नियमके पत्रोंपर चिह्न बनाकर चन्द्रमा और सूर्य्य की स्थिति पर्य्यन्त बहुतसी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दी ॥

३७—इन राजायुधिष्ठिरने शुद्धवेदके विरोधसे रहित शास्त्र को धारण करने वाले बाँचते हुए ब्राह्मणोंके समूह को स्पष्ट अक्षर वाली पुस्तकों समेत सुना (गुणादिकसुने) ॥

३८—अतिथियोंके नहीं निवारण करने वाले आश्रमोंके गुरू वह राजायुधिष्ठिर यज्ञ देखने केलिये आये हुए प्रसन्नचित्तवाले ब्राह्मणोंके अतिथि सत्कार करनेमें श्रमको नहीं प्राप्त हुए ॥

३९—जोरत्न ढूंढने परभी दुर्लभथा बड़े सारांशवाले भेट किये गये उस रत्नको राजालोग आपलेकर उन राजायुधिष्ठिर कीसेवाके अवसरको देखते हुए बाहर स्थित हुए ॥

४०—एक एव वसु यद्ददौ नृप-
स्तत्समापकमतर्क्यत क्रतोः।
त्यागशालिनि तपःसुते ययुः
सर्वपार्थिवधनान्यपि क्षयम् ॥

४१—प्रीतिरस्य ददतोऽभवत्तथा
येन तत्प्रियचिकीर्षवो नृपाः।
स्पर्धितैरधिकमागमन् मुदं
नाधिवेश्म निहितैरुपायनैः ॥

४२—यं लघुन्यपि लघूकृताहितः
शिष्यभूतमशिषत्स कर्मणि।
सस्पृहन्नृपतिभिर्नृपोऽपरै-
र्गौरवेण ददृशेतरामसौ ॥

४३—आद्यकोलतुलिताम्प्रकम्पनैः
कम्पितामुहुरनीदृगात्मानि।
वाचि रोपितवतामुना महीं
राजकाय विषया विभेजिरे ॥

४४—आगताद् व्यवसितेन चेतसा
सत्वसम्पदविकारिमानसः।
तत्र नाभवदसौ महाहवे
शात्रवादिव पराङ्मुखोऽर्थिनः ॥

४५—नैक्षतार्थिनमवज्ञया मुहु-
र्याचितस्तु न च कालमाक्षिपत्।
नादितालपमथ न व्यकत्थयद्
दत्तमिष्टमपिनान्वशेत सः ॥

४०—एकही राजाने जो धनदिया वह यज्ञका संपूर्ण करनेवाला समझा परन्तु युधिष्ठिरके दानशील होनेपर संपूर्ण राजा लोगोंके भी धन क्षीणता को प्राप्तहुए ॥

४१—दानकरतेहुए इन राजा युधिष्ठिरके उसप्रकारसे प्रीति उत्पन्नहुई (कि) जिसप्रकार उन राजा युधिष्ठिरके प्रियकरने की इच्छा करनेवाले राजालोगदीहुई भेटोंसे अधिक प्रसन्नहुए घरमें रक्खीहुई भेटोंसे नहीं प्रसन्न हुए ॥

४२--शत्रुओंके स्वल्प करने वाले राजायुधिष्ठिरने शिष्यकेतुल्य जिस राजाको छोटेभी कार्य्यमें आज्ञादी उस राजाकोअन्य राजालोगोंने साथ अभिलाषके गौरवपूर्व्वक देखा ॥

४३--वराहजी से उठाई गई कंपाने वालों (हिरण्याक्षादिकों) से कंपाई गई पृथ्वीको किसीसे नहीं कंपाये गये वचन में स्थित करते हुए इन राजायुधिष्ठिर ने राजालोगों को देश बाँटदिये ॥

४४--गुणकी अधिकता से नहीं विकारयुक्त चित्तवाले राजा युधिष्ठिर उस महाहव (यज्ञ और युद्ध) में निश्चययुक्त चित्तसे आये हुए शत्रु के समान अतिथि से नहीं पराङ्मुख हुए ॥

४५--उन राजा युधिष्ठिरने याचकको वारंवार अनादरसे नहीं देखा प्रार्थना करनेपर समय नहीं व्यतीत किया और स्वल्पभी नहीं दिया और अपनी प्रशंसा नहीं की और दीहुई प्रियवस्तुका भी शोचनहीं किया ॥

४६—निर्गुणोऽपि विमुखो न भूपते-
र्दानशौण्डमनसः पुरोऽभवत् ।
वर्षुकस्य किमपः कृतोन्नते-
रम्बुदस्य परिहार्य्यमूषरम् ॥

४७—प्रेम तस्य न गुणेषु नाधिकं
न स्म वेद न गुणान्तरञ्च सः ।
दित्सया तदपि पार्थिवोऽर्थिनं
गुण्यगुण्य इति न व्यजीगणत् ॥

४८—दर्शनानुपदमेव कामतः
स्वंवनीयकजनेऽधिगच्छति ।
प्रार्थनार्थरहितन्तदाभव-
द्दीयतामिति वचोऽतिसर्जने ॥

४९—नानवाप्तवसुनार्थकाम्यता
नाचिकित्सितगदेन रोगिणा ।
इच्छताशितुमनाशुषा न च
प्रत्यगामि तदुपेयुषा सदः ॥

५०—स्वादयन् रसमनेकसंस्कृत-
प्राकृतैरकृतपात्रसंकरैः ।
भावशुद्धिसहितैर्मुदञ्जनो
नाटकैरिव बभार भोजनैः ॥

५१—रक्षितारमिति तत्र कर्मणि
न्यस्य दुष्टदमनक्षमं हरिम् ।
अक्षतानि निरवर्त्तयत्तदा
दानहोमयजनानि भूपतिः ॥

४६--बहुत देनेवाले राजा युधिष्ठिर के सन्मुख निर्गुणभी विमुख नहींहुआ क्योंकि जलके बरसने वाले उन्नतियुक्त मेघ को क्या ऊषर छोड़देना चाहिये किन्तु नहीं ॥

४७--उन राजायुधिष्ठिर को क्या गुणोंमें अधिक प्रेम नथा किन्तु था और वह राजा युधिष्ठिर क्या विशेष गुणको नहीं जानतेथे किन्तु जानतेथे तथापि राजाने देनेकी इच्छासे याचक कोगुणी और निर्गुणी नहीं विचार किया ॥

४८—याचकोंके दर्शनके उपरान्त यथेच्छ धनके प्राप्तहोने पर उस समय "दीयतां" यह वचन प्रार्थनारूपी अर्थसे रहित होकर त्याग अर्थमें प्राप्त हुआ ॥

४९--धनकी इच्छा करने वाला उस सभामें प्राप्त पुरुष विना धनकी प्राप्तिके नहींगया रोगयुक्त उस सभामें प्राप्त हुआ पुरुष विनारोगकी शान्तिके नहींगया भोजनकी इच्छाकरनेवाला सभामें प्राप्त पुरुष भोजन कियेविना नहीं गया॥

५०—बहुत प्रकारके संस्कारयुक्त और प्राकृत पात्रों के मेलसे रहित पदार्थोंकी शुद्धतासे युक्त नाटकों के समान भोजनों से रसका स्वादुलेतेहुए लोग आनन्दको प्राप्तहुए ॥

५१—इसप्रकार राजा युधिष्ठिरने उस कर्ममें दुष्टोंके नाशकरने में समर्थ श्रीकृष्णजी को रक्षा करनेवाला बनाकर विघ्नरहित दान होम और यज्ञ किये ॥

५२—एक एव सुसखैष सुन्वतां
शौरिरित्यभिनयादिवोच्चकैः।
यूपरूपकमनीनमद्भुजं
भूश्चपालतुलितांगुलीयकम् ॥

५३—इत्थमत्र विततक्रमे क्रतौ
वीक्ष्य धर्ममथ धर्मजन्मना।
अर्घ्यदानमनु चोदितो वचः
सभ्यमभ्यधित शन्तनोः सुतः ॥

५४—आत्मनैव गुणदोषकोविदः
किं न वेत्सि करणीयवस्तुषु।
यत्तथापि न गुरून् न पृच्छसि
त्वंक्रमोऽयमिति तत्र कारणम्॥

५५—स्नातकं गुरुमभीष्टमृत्विजं
संयुजा च सह मेदिनीपतिम्।
अर्घभाज इति कीर्त्तयन्ति षट्
ते च ते युगपदागताः सदः ॥

५६—शोभयन्ति परितः प्रतापिनो
मन्त्रशक्तिविनिवारितापदः।
त्वन्मखम्मुखभुवः स्वयम्भुवो
भूभुजश्च परलोकजिष्णवः ॥

५७—आभजन्ति गुणिनः पृथक् पृथक्
पार्थ ! सत्कृतिमकृत्रिमाममी।
एक एव गुणवत्तमोऽथवा
पूज्य इत्ययमपीष्यते विधिः ॥

५२–सोम यज्ञ करनेवालों के सहायक यह श्रीकृष्णजीही केवल हैं यह चेष्टासे मानों प्रकटकरके पृथ्वीने अंगूठी के तुल्य चषाल (एकप्रकारका यज्ञस्तम्भ) वाले उन्नत यज्ञस्तंभ-रूपी भुजाको उठाया ॥

५३–इसप्रकार इसयज्ञके विस्तारयुक्त अनुष्ठानवाले होनेपर पीछे राजायुधिष्ठिर से धर्मशास्त्रको विचारकर अर्घदान के लिये पूंछेगये भीष्म पितामहने सभाके योग्यवचन कहा ॥

५४–गुण और दोषोंके जाननेवाले कर्त्तव्य अर्थोंमें आपही क्या नहीं जानतेहो तथापि तुम गुरूलोगोंसे जो पूछतेहो उस में यह न्यायहै यही कारण है नतु अज्ञान ॥

५५–स्नातक (गृहस्थविशेष) गुरू-बन्धु-यज्ञकरानेवाला–जा-माता और राजा इनछः को अर्घके योग्य कहतेहैं और वह छःओं एक साथही तुम्हारी सभामें प्राप्त हैं ॥

५६–प्रतापयुक्त मन्त्रकी शक्तिसे आपत्तियोंके निवारण करने वालेपरलोक के जीतनेवाले राजालोग और ब्राह्मणलोग तुम्हारे यज्ञको सबओर से शोभित करते हैं ॥

५७–हे पृथाके पुत्र राजायुधिष्ठिर गुणयुक्त यहलोग पृथक् पृथक् प्रत्येक निष्कपट सत्कारके योग्यहैं अथवा अत्यन्त गुणवान् एकही पूजाकरनेके योग्यहै यह विधान भी इच्छा किया जाताहै ॥

५८—अत्र चैष सकलेऽपि भाति मा-
म्प्रत्यशेषगुणबन्धुरर्हति ।
भूमिदेवनरदेवसंगमे
पूर्वदेवरिपुरर्हणां हरिः ॥

५९—मर्त्यमात्रमवदीधरद् भवान्
मैनमानमितदैत्यदानवम् ।
अंश एष जनतातिवर्त्तिनो
वेधसः प्रतिजनं कृतस्थितेः ॥

६०--ध्येयमेकमपथे स्थितन्धियः
स्तुत्यमुत्तममतीतवाक्पथम् ।
आमनन्ति यमुपास्यमादराद्
दूरवर्त्तिनमतीव योगिनः ॥

६१--पद्मभूरिति सृजन् जगद्रजः
सत्त्वमच्युत इति स्थितिन्नयन् ।
संहरन् हर इति श्रितस्तम-
स्त्रैधमेष भजति त्रिभिर्गुणैः ॥

६२—सर्ववेदिनमनादिमास्थित-
न्देहिनामनुजिघृक्षया वपुः ।
क्लेशकर्मफलभोगवर्जितम्
पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः ॥

५८–यहां संपूर्ण भी ब्राह्मण और राजालोगोंके संगममें संपूर्ण गुणों से युक्त दैत्योंके शत्रुयह श्रीकृष्णजी पूजनके योग्य हैं यह मुझे विदित होताहै ॥

५९–दैत्य और दानवोंके नम्रकरनेवाले इन श्रीकृष्णजीको आप केवल मनुष्यही न निश्चयकरो क्योंकि यह श्रीकृष्णजी सम्पूर्णलोकोंसे अलग और सम्पूर्ण लोगों में स्थितिकरने वाले परमात्माके अंशहैं ॥

६०–योगी लोग अद्वितीय उत्तम जिन श्रीकृष्णजीको ध्यान करनेके योग्य तिसपर भी बुद्धिके अगोचर कहते हैं स्तुति करनेके योग्य तथापि वाणीके अगोचर कहते हैं आदर से सेवा करनेके योग्य तथापि अत्यन्त दूरवर्त्ती कहतेहैं ॥

६१–यह श्रीकृष्णजी रजोगुणका आश्रयलेकर संसारको उत्पन्न करतेहुए ब्रह्मा सत्त्वगुणका आश्रयलेकर संसारको स्थापित करतेहुए विष्णु और तमोगुणका आश्रयलेकर संसारको नाशकरतेहुए शिव इसप्रकार तीनगुणों से त्रिविधताको धारण करते हैं ॥

६२–इन श्रीकृष्णजी को सर्वज्ञ अनादि प्राणियोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे शरीरमें स्थित क्लेशों और कर्मोंके फलों के अनुभव से रहित पुरुष विशेष (परमपुरुष) ईश्वर कहते हैं ॥

६३—भक्तिमन्त इह भक्तवत्सले
सन्ततस्मरणरीणकल्मषाः ।
यान्ति निर्वहणमस्य संसृति-
क्लेशनाटकविडम्बनाविधेः ॥

६४—ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो
योगमार्गपतितेन चेतसा ।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये
यंविशन्ति वशिनं मुमुक्षवः ॥

युग्मम् ।

६५—आदितामजननाय देहिना-
मन्तताञ्च दधतेऽनपायिने ।
बिभ्रते भुवमधः सदाथ च
ब्रह्मणोऽप्युपरि तिष्ठते नमः ॥

६६—केवलन्दधति कर्तृवाचिनः
प्रत्ययानिह न जातु कर्मणि ।
धातवः सृजतिसंहृशास्तयः
स्तौतिरत्र विपरीतकारकः ॥

६७—पूर्वमेष किल सृष्टवानप-
स्तासु वीर्यमनिवार्य्यमादधौ ।
तच्च कारणमभूद्धिरण्मयं
ब्रह्मणोऽसृजदसाविदञ्जगत् ॥

६३–भक्तवत्सल इन श्रीकृष्णजी में भक्ति युक्त पुरुष निरन्तर स्मरण करनेसे पापरहित होकर यह श्री कृष्णजीके संसार के क्लेशरूपी नाटक के भयोंकी समाप्तिको प्राप्त होतेहैं ॥

६४–ग्रामीणता (मूढता) के छोड़नेकी इच्छा करते हुए मोक्षार्थी पुरुष मोक्षके लिये दुर्गम-अद्वितीय-स्वतन्त्र-जिन श्रीकृष्णजीको योगमार्ग में स्थित चित्तसे ध्यान करतेहैं ॥

६५–जीवोंकी कारणता और अन्तताको धारण करतेहुए जन्मरहित और नाशरहित सबकालमें पातालमें पृथ्वीके धारण करनेवाले और ब्रह्मलोक के ऊपर भी स्थित श्रीकृष्णजी को नमस्कार है ॥

६६--सृज और समपूर्वक हृ और शास यह धातु इन श्रीकृष्ण जी में केवल कर्तृ कारकको धारण करती हैं कदापि भी कर्म कारकमें प्रत्ययको नहीं धारण करतीहैं किन्तु स्तु धातु विपरीत कारकवाली है ॥

६७–इन श्रीकृष्णजीने पहले जल उत्पन्न किये उन जलोंमें नहीं निवारण करनेके योग्य वीर्य्य रक्खा वह वीर्य्य हिरण्मय ब्रह्माका कारणहुआ इन ब्रह्माने संसार उत्पन्नकिया ॥

६८—मत्कुणाविव पुरा परिप्लवौ
सिन्धुनाथशयने निषेदुषः ।
गच्छतः स्म मधुकैटभौ विभो-
र्यस्य नैद्रसुखविघ्नतां क्षणम् ॥

६९—श्रौतमार्गसुखगानकोविद-
ब्रह्मषट्चरणगर्भमुज्ज्वलम् ।
श्रीमुखेन्दुसविधेऽपि शोभते
यस्य नाभिसरसीसरोरुहम् ॥

७०—सत्यवृत्तमपि मायिनञ्जग-
द्वृद्धमप्युचितनिद्रमर्भकम् ।
जन्म बिभ्रतमजन्नवम्बुधा
यम्पुराणपुरुषम्प्रचक्षते ॥

७१—स्कन्धधूननविसारिकेशर-
क्षिप्तसागरमहाप्लवामयम् ।
उद्धृतामिव मुहूर्त्तमैक्षत
स्थूलनासिकवपुर्वसुन्धराम् ॥

७२—दिव्यकेशरिवपुः सुरद्विषो
नैव लब्धशममायुधैरपि ।
दुर्निवाररणकण्डु कोमलै-
र्वक्ष एष निरदारयन्नखैः ॥

६८–पूर्वके समय चंचल मधुकैटभ मत्कुण (खटमल) के समान समुद्ररूपी शयनमें सोयेहुए प्रभु जिन श्रीकृष्णजीके क्षणभर निद्रासम्बंधी सुखकी विघ्नता करनेको प्राप्तहुए॥

६९–श्रुतिसम्बन्धी मार्ग के सुखदेनेवाले गानके जाननेवाले ब्रह्मारूपी भ्रमरसे अन्तःकरणमें युक्त निर्मल जिन श्रीकृष्णजीकी नाभिरूपी तड़ागमें कमल लक्ष्मीके मुखरूपी चन्द्रमाके समीपमें भी शोभित होताहै॥

७०–जिन श्रीकृष्णजी को सत्य वृत्तिवाले भी मायायुक्त कहते हैं संसारभरमें वृद्धभी निद्रामें प्राप्त बालक कहते हैं जन्मरहित भी जन्मको धारण करनेवाले कहतेहैं-रमणीयतासे रमणीय भी पुराणपुरुष कहते हैं॥

७१--स्थूलनासिकायुक्त शरीरवाले (वराहमूर्त्ति) इन श्रीकृष्णजीने ग्रीवाके कंपानेसे फैलीहुई सटाओं (ग्रीवाकेबालों) से फेंकेगये समुद्रके महाप्रवाहवाली मानों क्षणमात्र में उठाईगई पृथ्वीको देखा॥

७२--दिव्य सिंहकी मूर्त्तिने इन्द्रके शस्त्रोंसे भी नहीं शान्तिको प्राप्त दुर्जय रणकीखुजलीवाले देवताओं के शत्रु हिरण्यकशिपुके वक्षस्स्थलको कोमल नखोंसे विदीर्णकिया॥

७३--वारिधेरिव कराग्रवीचिभि-
र्दिङ्मतंगजमुखान्यभिघ्नतः ।
यस्य चारुनखशुक्तयः स्फुर-
न्मौक्तिकप्रकरगर्भतान्दधुः ॥
युग्मकम् ।

७४--दीप्तनिर्जितविरोचनादय-
ङ्क्षां विरोचनसुतादभीप्सतः ।
आत्मभूरवरजाखिलप्रजः
स्वर्पतेरवरजत्वमाययौ ॥

७५--किंक्रमिष्यति किलैप वामनो
यावदित्थमहसन् न दानवाः ।
तावदस्य न ममौ नभस्तले
लंघितार्कशशिमण्डलक्रमः ॥

७६--गच्छतापि गगनाग्रमुच्चकै-
र्यस्य भूधरगरीयसांघ्रिणा ।
क्रान्तकन्धर इवावलो बलिः
स्वर्गभर्त्तुरगमत् सुबन्धताम् ॥

७७-क्रामतोऽस्य ददृशुर्दिवौकसो
दूरमूरुमलिनीलमायतम् ।
व्योम्नि दिव्यसरिदम्बुपद्धति-
स्पर्द्धयेव यमुनौघमुत्थितम् ॥

७३--तरंगोंके तुल्य हाथोंके अग्रभागोंसे दिग्गजोंके मुखोंको ताड़-नकरतेहुए समुद्रके समान जिन सिंहकी मूर्त्तिवाले श्रीकृ-ष्णजी के सीपियों के समान नख,भीतर प्राप्त देदीप्यमान मोतियोंके समूहवाले हुए ॥

७४--स्वयं उत्पन्न होनेवाले भी संपूर्ण प्रजाओं के प्रथम उत्पन्न होनेवाले भी यह श्रीकृष्णजी दीप्तिसे सूर्यके जीतनेवाले विरोचनके पुत्र बलिसे पृथ्वीके लेनेकी इच्छा करते हुए इन्द्रके अनुजपनेको प्राप्तभये ॥

७५--यह वामन क्या पैर रक्खेगा इसप्रकार दैत्यलोग जबतक नहीं हंसनेपाये उसके पहलेही सूर्य्य और चन्द्रमाका उल्लं-घन करनेवाला वह इन श्रीकृष्णजी के चरणका रखना आकाशमें नहीं समाया ॥

७६--आकाशके ऊपर प्राप्तभी पर्वतके तुल्य भारी जिन वामन जीके उन्नत चरण से मानों दबाये गये कण्ठ वाला दुर्बल बलि इन्द्रसे सुखपूर्वक बँधने वाला हुआ ॥

७७--पैरको फैलाते हुए इनश्रीकृष्णजीकी दूरतक प्राप्त भ्रमरके तुल्य श्याम जंघाको देवता लोगोंने आकाशमें गंगाजी के जलके प्रवाह की ईर्षा से उठा हुआ यमुना का प्रवाह मानों देखा ॥

७८--यस्य किञ्चिदपकर्त्तुमक्षमः
कायनिग्रहगृहीतविग्रहः।
कान्तवक्त्रसदृशाकृतिं कृती
राहुरिन्दुमधुनापि बाधते॥

७९--सम्प्रदायविगमादुपेयुषी-
रेष नाशमविनाशिविग्रहः।
स्मर्त्तुमप्रतिहतस्मृतिः श्रुती-
र्दत्त इत्यभवदत्रिगोत्रजः॥

८०--रेणुकातनयतामुपागतः
शातितप्रचुरपत्रसंहतिः।
लूनभूरिभुजशाखमुज्झित-
च्छायमर्जुनवनं व्यधादयम्॥

८१--एष दाशरथिभूयमेत्य च
ध्वंसितोद्धतदशाननामपि।
राक्षसीमकृत रक्षितप्रज-
स्तेजसाधिकविभीषणाम्पुरीम्॥

८२--निष्प्रहन्तुममरेशविद्विषा-
मर्थितः स्वयमथ स्वयम्भुवा।
सम्प्रति श्रयति सूनुतामय-
ङ्कश्यपस्य वसुदेवरूपिणः॥

८३--तात! नोदधिविलोडनम्प्रति
त्वद्विनाथ वयमुत्सहामहे।
यः सुरैरिति सुरौघवल्लभो
वल्लवैश्च जगदे जगत्पतिः॥

७८--शरीरके छेदन करने से शत्रुता का ग्रहण करनेवाला चतुर राहु जिन श्रीकृष्णजीके कुछभी अपकार करनेको असमर्थ होकर सुन्दर मुखके तुल्य आकृतिवाले चन्द्रमाको अबतक पीड़ा देताहै ॥

७६--नाश रहित स्वरूपवाले नहीं नष्टहुई स्मृतिवाले यह श्रीकृष्णजी सम्प्रदायके न होने से कालके दोषको प्राप्त वेदोंके प्रवृत्त करनेके लिये दत्त इस नामसे अत्रिके गोत्रमें उत्पन्न हुए ॥

८०--यह श्रीकृष्णजी रेणुकाकी तनयता (परशुरामत्व) को प्राप्तहोकर अर्जुनरूपी वनकोकटेहुए संपूर्ण पत्रोंके समूह वाला कटीहुई बहुत भुजारूपी शाखावाला कान्तिरहित करतेभये ॥

८१--प्रजाके रक्षा करने वाले इनश्रीकृष्णजी ने दशरथके पुत्र पनेको प्राप्त होकर मारे गये उद्धत रावण वाली राक्षसों की पुरी लंका अपने तेज से अत्यन्त बलवान् विभीषण से युक्तकी ॥

८२--यह श्रीकृष्णजी इन्द्रके शत्रुओं को नाश करने के लिये ब्रह्मासे स्वयं प्रार्थना किये गये इस समय वसुदेव के रूप में प्राप्त कश्यपकी पुत्रता को प्राप्त हुए ॥

८३--देवताओंके प्रिय जगत्के पति जो श्रीकृष्णजी देवतालोगों से और गोपों से हे तात समुद्रमथने के लिये और दही मथनेके लिये आपके विना हम नहीं समर्थ हैं इसप्रकार कहेगये ॥

८४--नात्तगन्धमवधूय शत्रुभि-
श्छायया च शमितामरश्रमम्।
योऽभिमानमिव वृत्रविद्विषः
पारिजातमुदमूलयद्दिवः॥

८५--यं समेत्य च ललाटलेखया
बिभ्रतः सपदि शम्भुविभ्रमम्।
चण्डमारुतमिव प्रदीपव-
च्चेदिपस्य निरवाद्विलोचनम्॥

८६--यः कोलतां वल्लवताञ्च बिभ्र-
द्दंष्ट्रामुदस्याशु भुजाञ्च गुर्वीम्।
मग्नस्य तोयापदि दुस्तरायां-
गोमण्डलस्योद्धरणञ्चकार॥

८७--धन्योऽसि यस्य हरिरेप समक्ष एव
दूरादपि क्रतुपु यज्वभिरिज्यते यः।
दत्त्वार्घमत्रभवते भुवनेपु यावत्
संसारमण्डलमवाप्नुहि साधुवादम्॥

८८--भीष्मोक्तन्तदिति वचो निशम्य सम्यक्
साम्राज्यश्रियमधिगच्छता नृपेण।
दत्तेऽर्घे महति महीभृताम्पुरोऽपि
त्रैलोक्ये मधुभिदभूदनर्घ एव॥

इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये कृष्णार्घदानो नाम
चतुर्दशः सर्गः॥१४॥

८४--जिन श्रीकृष्णजीने शत्रुओंसे अनादर करके नहीं सूंघेगये छाया से देवताओंके खेदके निवारण करनेवाले पारिजात को इन्द्रके अभिमानके समानस्वर्गसे उखाड़ लिया ॥

८५--मस्तकसे शिवजीकी तुल्यताको धारणकरतेहुए शिशुपाल कानेत्र बडीवायुके समान जिन श्रीकृष्णजीको प्राप्तहोकर दीपकके समान नष्ट होगया ॥

८६--जिन श्रीकृष्णजीने वराहत्व (शूकरपने) को और गोपालत्व (गोपालपने) को धारणकरतेहुए शीघ्रभारी दंष्ट्रा और भुजाको उठाकर दुस्तरजल की आपत्तिमें डूबेहुए पृथ्वीमण्डल और गौओंके समूहोंका उद्धार किया ॥

८७--धन्यहो जिन तुम्हारे प्रत्यक्षमें यह श्रीकृष्णजी स्थितहैं जो श्रीकृष्णजी दूरसे भी यज्ञोंमें यज्ञ करनेवालोंसे पूजन किये जाते हैं पूजनकरने के योग्य श्रीकृष्णजीको अर्घ देकर संसार मण्डल भरमें भुवनोंमें सुन्दर कीर्त्ति को प्राप्तहो ॥

८८--चक्रवर्त्तीकी लक्ष्मीको प्राप्त राजायुधिष्ठिरसे इसप्रकार भीष्मजीसे कहेहुए उस वचनको अच्छेप्रकारसे सुनकर राजा लोगों के सन्मुख बड़े अर्घ के देनेपरभी श्रीकृष्णजी त्रैलोक्यमें अनर्घ (अमूल्य) ही हुए ॥

इति श्रीमाघकृतमहाकाव्य शिशुपालबधस्य भाषानुवादे कृष्णार्घदानो नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः ॥

क्रोधयुक्तेन शिशुपालेन श्रीकृष्ण सम्बन्धिभ्यो गालिप्रदानम् पुनः क्रुद्धेन भीष्मपितामहेन योभगवतः श्रीकृष्णस्य प्रथमपूजन-मसहमानो भवेत्सधनुस्सज्यं करोतु सर्वेषां राज्ञां शिरसि चरण-न्यासं करोमीति कथनम् पुनः शिशुपालसम्बन्धिराजवर्गस्य क्रोधावेशस्तैरेव सार्द्धं शिशुपालस्य वहिर्गमनम् युद्धाय व्रजति सर्वस्मिन् राजके स्त्रीणां सन्तापवर्णनम् ॥

१--अथ तत्र पाण्डुतनयेन
सदसि विहितम्मधुद्विषः ।
मानमसहत न चेदिपतिः
परवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम् ॥

२--पुर एव शार्ङ्गिणि सवैर-
मथ पुनरमुन्तदर्चया ।
मन्युरभजदवगाढतरः
समदोषकाल इव देहिनं ज्वरः ॥

३--अभितर्जयन्निव समस्त-
नृपगणमसावकम्पयत् ।
लोलमुकुटमणिरश्मि शनै-
रशनैः प्रकम्पितजगत्त्रयं शिरः ॥

४--स वमन् रुषाश्रु घनघर्म-
विगलदुरुगण्डमण्डलः ।
स्वेदजलकणकरालकरो
व्यरुचत्प्रभिन्न इव कुञ्जरस्त्रिधा ॥

पंद्रहवां सर्ग ॥

क्रोधयुक्त शिशुपाल करके श्रीकृष्णजीके पक्षवालोंको गालीदेना फिरक्रोधसे भीष्मजीका यहवचनकहनाकि जो कोईश्रीकृष्णजीके प्रथमपूजनकोनसहसकाहो वहधनुषचढ़ावे यहचरण सम्पूर्णराजा लोगोंके शिरपररखना फिरशिशुपालके पक्षवालेराजाओंकाक्रोधितहोना औरउन्हीं राजाओंके साथशिशुपालकाउठकरजाना और युद्धके निमित्त राजालोगोंके जानेपरस्त्रियोंका सन्तापयुक्तहोना ॥

१--इसके उपरान्त चेदिदेशका स्वामी शिशुपाल उस सभामें पाण्डुके पुत्र राजायुधिष्ठिरसे कीगई श्रीकृष्णजीकी पूजा को नहीं सहसका क्योंकि अहंकार वालोंका मन पराई वृद्धिमें मत्सरयुक्त होताहै ॥

२--पहलेही से श्रीकृष्णजी में शत्रुतायुक्त इस शिशुपालको फिर श्रीकृष्णजी की पूजासे बहुत घनाक्रोध प्राणीको दोष और कालमें तुल्यज्वरके समान प्राप्त हुआ ॥

३--यह शिशुपाल मानों सम्पूर्ण राजालोगोंको भयभीतकरता हुआ धीरे धीरे मुकुटकी मणिकी किरणों के चंचल होने पर अत्यन्त तीनों लोकों के कँपानेवाले शिरको कँपाता भया ॥

४--क्रोधसे अश्रुओंको छोड़ताहुआ बड़ी ऊष्मासे टपकतेहुए बड़ेकपोलवाला स्वेदके बिन्दुओंसेयुक्तहाथवाला वह शिशुपाल तीनस्थानों से बहतेहुए मदवाले हाथी के समान शोभितहुआ ॥

५--स निकामघर्मितमभीक्ष्ण-
मधुवदवधूतराजकः ।
क्षिप्तवहुलजलविन्दुवपुः
प्रलयार्णवोत्थित इवादिशूकरः ॥

६--क्षणमाश्लिपद्घटितशैल-
शिखरकठिनांसमण्डलः ।
स्तम्भमुपहितविधूतिमसा-
वधिकावधूनितसमस्तसंसदम् ॥

७--कनकांगदद्युतिभिरस्य
गमितमरुचरपिशंगताम् ।
क्रोधमयशिखिशिखापटलैः
परितः परीतमिव वाहुमण्डलम् ॥

८--कृतसन्निधानमिव तस्य
पुनरपि तृतीयचक्षुषा ।
क्रूरमजनि कुटिलभ्रू गुरु-
भ्रुकुटी कठोरितललाटमाननम् ॥

९--अतिरक्तभावमुपगम्य
कृतमतिरमुष्य साहसे ।
दृष्टिरगणितभयासिलता-
मवलम्बते स्म समया सखीमिव ॥

१०--करकुड्मलेन निजमूरु-
मुरुतरनगाश्मकर्कशम् ।
त्रस्तचपलचलमानजन-
श्रुतभीमनादमयमाहतोच्चकैः ॥

५–राजालोगों के अनादर करनेवाले उस शिशुपालने अत्यन्त स्वेदसे युक्त शरीरको प्रलयकालमें समुद्रसे उठेहुए वाराहजीके समान घनेबहुतसे जलके बिन्दुओंको फेंककर वारंवार कँपाया ॥

६–घने पर्व्वत के शिखरके समान कठिन कंधेवाले इस शिशुपालने कंपसे युक्त अत्यन्त संपूर्ण सभाके कँपानेवाले स्तम्भको क्षणभर स्पर्श किया ॥

७–सुवर्णके बाजुओंकी द्युतिसे पीतवर्णको प्राप्तकीगई इस शिशुपालकी भुजा क्रोधाग्निकी ज्वाला के समूहोंसे मानों सबओर से छाईहुई शोभित होतीथी ॥

८–कुटिल भृकुटीवाला बड़ी भृकुटियोंसे भयानक ललाटवाला उस शिशुपाल का मुख फिरभी मानों तीसरे नेत्रसे युक्त भयंकरहुआ ॥

९–इस शिशुपालकी दृष्टिने अत्यन्त रक्तताको प्राप्तहोकर साहसमें बुद्धिकी करनेवाली भयको न विचारकर समीपमें सखी के समान खड्गरूपी लताका अवलम्बन किया ॥

१०–इस शिशुपालने बड़ी पर्व्वतकी शिलाके समान कठोर अपनी जंघाको फूलतीहुई कलीके समान हाथसे डरेहुए चपलता पूर्व्वक चलेहुए लोगोंसे भयंकर ध्वनि के सुनने पर उच्चस्वर से ताड़न किया ॥

११–इति चुक्रुधे भृशमनेन
ननु महदवाप्य विप्रियम् ।
याति विकृतिमपि संवृतिमत्
किमु यन्निसर्गनिरवग्रहम्मनः ॥
१२–प्रथमं शरीरजविकार-
कृतमुकुलबन्धमव्यथी ।
भाविकलहफलयोगमसौ
वचनेन कोपकुसुमं व्यचीकसत् ॥
१३–ध्वनयन् सभामथ सनीर-
घनरवगभीरवागभीः ।
वाचमवददिति रोपवशा-
दतिनिष्ठुरस्फुटतराक्षरामसौ ॥
१४–यदपूपुजस्त्वमिह पार्थ !
मुरजितमपूजितं सताम् ।
प्रेम विलसति महत्तदहो
दयितञ्जनः खलु गुणीति मन्यते ॥
१५–यदराज्ञि राजवदिहार्घ्य-
मुपहितमिदम्मुरद्विषि ।
ग्राम्यमृग इव हविस्त्वदय-
म्भजते ज्वलत्सु न महीशवह्निषु ॥
१६–अनृतांगिरन्न गदसीति
जगति पटहैर्विघुष्यसे ।
निन्द्यमथ च हरिमर्चयत-
स्तव कर्मणैव विकशत्यसत्यता ॥

११–इसप्रकार इस शिशुपालने अत्यन्त क्रोधकिया क्योंकि विकार का छुपाने वाला भी मन बड़े अप्रियको प्राप्तहोकर विकारको प्राप्त होता है जो मन स्वभावही से चपलहै उसका क्या कहना ॥

१२–निर्भय इस शिशुपालने पहले शरीरसे उत्पन्नहुए विकारों से कलीके प्रादुर्भाव वाले होनेवाली कलहरूपी फलवाले क्रोधरूपी पुष्पको वचनसे प्रकाश किया ॥

१३–इसके उपरान्त जलयुक्त मेघके गर्जने के समान गंभीर स्वर वाला निर्भय यह शिशुपाल सभाको शब्दायमान करता हुआ अत्यन्त क्रोधसे अत्यन्त निष्ठुर औरस्पष्टअक्षर वाला वचन बोला ॥

१४–हेपृथा के पुत्र युधिष्ठिर सज्जनों से नहीं पूजन किये गये श्रीकृष्णको इस सभामें जिस कारणसे तुमने पूजनकिया है इससे बड़ा प्रेम प्रकाशित होताहै क्योंकि लोग प्रियको गुणी मानते हैं ॥

१५–नहीं राजा इन श्रीकृष्ण में राजाके योग्य जो यह अर्घदिया है उस अर्घको यह कृष्ण अग्निके तुल्य राजालोगोंकेदीप्तिमान्होनेपर और राजालोगोंके तुल्य अग्नियोंके दीप्तिमान् होनेपर हविको कुत्तेके समान नहीं प्राप्त होता है ॥

१६–हेयुधिष्ठिर असत्य वचनको नहीं बोलतेहो यह संसारमेंनगाड़ोंसे कहेजातेहो तिसपर भी निन्दा के योग्य श्रीकृष्णजी को पूजन करते हुए तुम्हारे कर्महीं से असत्यता प्रकट होती है ॥

१७--तव धर्मराज इति नाम
कथमिदमपष्ठु पठ्यते।
भौसदिनमभिदधत्यथवा
भृशमप्रशस्तमपि मंगलञ्जनाः॥

१८--यदि वार्चनीयतम एष
किमपि भवताम्पृथासुताः!
शौरिरवनिपतिभिर्निखिलै-
रवमानना र्थमिह किन्निमन्त्रितैः॥

१९--अथवा न धर्ममसुबोध-
समयमवयात वालिशाः।
कासमयमिह वृथापलितो
हतबुद्धिरप्रणिहितः सरित्सुतः॥

२०--स्वयमेव शन्तनुतनूज!
यमपि गुणसर्ध्यमभ्यधाः।
तत्र सुररिपुरयं कतमो
यमनिन्द्यवन्दिवदभिष्टुपे वृथा॥

२१--अवनीभृतान्त्वमपहाय
गणमतिजड़ः समुन्नतम्।
नीचि नियतमिह यच्चपलो
निरतः स्फुटं भवसि निम्नगासुतः॥

२२--प्रतिपत्तुमङ्ग! घटते च
न तव नृपयोग्यमर्हणम्।
कृष्ण! कलय ननु कोऽहमिति
स्फुटमापदाम्पदमनात्मवेदिता॥

१७--हे युधिष्ठिर तुम्हारा धर्मराज यह नाम कैसे मिथ्याही कहा जाताहै अथवा लोग अत्यन्त दुष्टभी भौम दिनको मंगल कहते हैं ॥

१८--हे कुन्तीके पुत्र यह श्रीकृष्णही किसी प्रकार तुम लोगोंका अत्यन्त पूजनीयथा तो तिरस्कारके लिये बुलाये गये सम्पूर्ण राजालोगोंसे यहाँ क्या प्रयोजन है ॥

१९--अथवा मूर्ख तुम लोग दुःख से जानने के योग्य आचार वाले धर्मको नहीं जानतेहो किन्तु निष्फल वृद्ध हुए नष्ट बुद्धि वाले यह भीष्मभी अत्यन्त प्रमत्तहैं ॥

२०--हेशन्तनुके पुत्र भीष्म तुम्हीं ने जिस समूहको अर्घकेयोग्य कहाथा उनमें से यह श्रीकृष्ण कौन है जिन श्रीकृष्ण की प्रगल्भ बोलने वाले भाटकी समान मिथ्या स्तुति करते हो ॥

२१--अत्यन्त जड़ चपल तुम उन्नत राजा लोगों के समूह को छोड़कर नीच इन श्रीकृष्णमें किस कारण से नित्य अनुरागयुक्त हो इससे नदीके पुत्र स्पष्टहो ॥

२२--हेकृष्ण तुमको राजाके योग्य पूजन ग्रहण करनानहींयोग्य है क्योंकि हेकृष्ण मैं कौनहूं यह विचारकरो क्योंकि अपने को न जानना आपत्तियों का स्थान है ॥

२३—असुरस्त्वया न्यवधि कोऽपि
मधुरिति कथम्प्रतीयते ।
दण्डदलितसरघः प्रथसे
मधुसूदनस्त्वमिति सूदयन् मधु ॥

२४—मुचुकुन्दतल्पशरणस्य
मगधपतिशातितौजसः ।
सिद्धमबल ! सबलत्वमहो
तव रोहिणीतनयसाहचर्य्यतः ॥

२५—छलयन् प्रजास्त्वमनृतेन
कपटपटुरैन्द्रजालिकः ।
प्रीतिमनुभवसि नग्नजितः
सुतयेष्टसत्य इति सम्प्रतीयसे ॥

२६—धृतवान् न चक्रमरिचक्र-
भयचकितमाहवे निजम् ।
चक्रधर इति रथांगमदः
सततम्बिभर्षि भुवनेषु रूढये ॥

२७—जगति श्रिया विरहितोऽपि
यदुदधिसुतामुपायथाः ।
ज्ञातिजनजनितनामपदा-
न्त्वमतः श्रियः पतिरिति प्रथामगाः ॥

२८—अभिशत्रु संयति कदाचि-
दविहितपराक्रमोऽपि यत् ।
व्योम्नि कथमपि चकर्थ पदं
व्यपदिश्यसे जगति विक्रमीत्यतः ॥

२३—मधुनाम कोई दैत्य तुमनेमारा यह कैसे निश्चय होसक्ता है किन्तु दण्डसे मधुमक्खीके मारनेवाले मधु (सहत) को पीड़ादेतेहुए मधुसूदन यह कहेजाते हो ॥

२४—हे बलहीन मुचुकुन्दकी शय्यारूपी रक्षकवाले जरासन्ध से नष्ट कियेहुए वीर्य्यवाले तुम्हारा रोहिणीके पुत्र बलभद्रके साथमें रहनेसे सबलत्व सिद्धहै ॥

२४—इन्द्रजालके जाननेवाले कपटमें चतुर मिथ्या से प्रजाओं को छलतेहुए सत्यप्रिय कहेजाते हो नग्नजित् नाम राजा की कन्या सत्यभामा से आनन्दका अनुभव करतेहो (इसी से सत्यप्रियहो)

२६—युद्धमें शत्रुओंकी सेनाके भयसे डरीहुई अपनी सेनाको नहीं रक्षाकरतेभये संसारमें चक्रधर इस प्रसिद्धि के लिये यह चक्र सदैव धारणकरतेहो ॥

२७—लक्ष्मी से रहित भी जातिके लोगोंसे प्रवृत्त कियेगये नाम वाली समुद्रकी कन्याको जिसकारण से विवाहाहै इसी से संसारमें लक्ष्मीपति विख्यात हुए ॥

२८—युद्धमें कभी भी शत्रुके सन्मुख पराक्रम नहीं किया जिस कारणसे किसीप्रकार आकाशमें पादक्षेप कियाहै इसी से संसारमें विक्रमी कहलातेहो ॥

२९–पृथिवीम्बिभर्थ यदि पूर्व-
सिदमपि गुणाय वर्त्तते ।
भूमिभृदिति परहारितभू-
स्त्वमुदाहृियस्व कथमन्यथा जनैः ॥

३०–तव धन्यतेयमपि सर्व-
नृपतितुलितोऽपि यत् क्षणम् ।
क्रान्तकरतलधृताचलकः
पृथिवीतले तुलितभूभृदुच्यसे ॥

३१–त्वमशक्नुवन्नशुभकर्म-
निरत ! परिपाकदारुणम् ।
जेतुमकुशलमतिर्नरकं
यशसेऽखिलोकमजयः सुतम्भुवः ॥

३२–सकलैर्वपुः सकलदोष-
समुदितमिदं गुणैस्तव ।
त्यक्तमपगुण ! गुणत्रितय-
त्यजनप्रयासमुपयासि किम्मुधा ॥

३३–त्वयि पूजनञ्जगति जाल्म !
कृतमिदमपाकृते गुणैः ।
हासकरमघटते नितरां
शिरसीव कङ्कतमपेतमूर्द्धजे ॥

३४–मृगविद्विषामिव यदित्थ-
मजनि मिषताम्पृथासुतैः ।
अस्य वनशुन इवापचितिः
परिभाव एष भवताम्भुवोऽधिपाः ॥

२९–यदि पहलेभी पृथ्वीको धारणकरते यह भी गुणके लिये होता शत्रुओंसे हरीगई पृथ्वीवाले तुमलोगोंसे किसप्रकार उलटे अर्थ से भूमिभृत् (राजा) कहलातेहो ॥

३०–यह तुम्हारी धन्यता है किसप्रकार सम्पूर्ण राजालोगों से तुलित (तिरस्कार कियेगये) भी क्षणभर थकेहुए हाथमें छोटे पर्व्वतके धारण करनेवाले होकर पृथ्वीमें तुलित भूभृत् (राजालोगों के तिरस्कार करनेवाले) कहेजातेहो ॥

३१–हे अशुभकर्म में निरत दुष्टबुद्धिवाले तुमने फलके समय भयंकर नरकके जीतनेको न समर्थहोकर लोक में यशके लिये पृथ्वी के पुत्र नरकासुरको जीता ॥

३२–हे निर्गुण सम्पूर्ण दोषोंसे युक्त तेरा यह शरीर सम्पूर्ण गुणों से रहितहै तीन गुणोंके त्याग करने में वृथा परिश्रमको क्यों प्राप्त होतेहो ॥

३३–हे विना विचारकार्य करनेवाले गुणोंसे रहित तुझमें कियागया पूजन संसारमें हास्यका उत्पन्न करनेवालाहै यह पूजन केशरहित शिरमें कंघा डालनेके समान अत्यन्त अयोग्य है ॥

३४–हे राजालोगो सिंहों के समान तुमलोगोंके देखनेपर इस प्रकार कुन्ती के पुत्रोंने शृगालके समान इसकृष्णका जो पूजन कियाहै वह तुमलोगोंका अनादर है ॥

३५--अवधीज्जनंगम इवैप
यदि हतवृषो वृपन्ननु ।
स्पर्शमशुचिवपुरर्हति न
प्रतिमाननान्तु नितरान्नृपोचिताम् ॥
३६--यदि नांगनेति मतिरस्य
मृदुरजानि पूतनाम्प्रति ।
स्तन्यमघृणमनसः पिवतः
किल धर्मतो भवति सा जनन्यपि ॥
३७--शकटव्युदासतरुभंग-
धरणिधरधारणादिकम् ।
कर्म यदयमकरोत्तरलः
स्थिरचेतसांक इव तेन विस्मयः ॥
३८--अयमुग्रसेनतनयस्य
नृपशुरपरः पशूनवन् ।
स्वामिवधमसुकरम्पुरुपैः
कुरुते स्म यत्परममेतदद्भुतम् ॥
३९--इति वाचमुद्धतमुदीर्य्य
सपदि सह वेणुदारिणा ।
सोढरिपु वलभरोऽसहनः
स जहास दत्तकरतालमुच्चकैः ॥
४०--कटुनापि चैद्यवचनेन
विकृतिमगमन्न माधवः ।
सत्यनियतवचसं वचसा
सुजनञ्जनाश्चलयितुङ्क ईशते ॥

३५--पुण्यके नाशकरनेवाले इसकृष्णने चाण्डालके समानयदि वृषभरूपी अरिष्टनाम दैत्यको माराहै तो अशुद्ध शरीरवाला स्पर्शके भी योग्य नहीं है राजालोगोंके योग्य पूजन के तो अत्यन्तही अयोग्यहै ॥

३६--इस कृष्णकी बुद्धि पूतनाके प्रति स्त्री है इसकारणसे यदि कृपायुक्त नहींहुई तो निर्दय चित्तवाले दूधकोपीतेहुए इस कृष्णकी वह पूतना धर्म से माताभी होती है ॥

३७--चंचल इसकृष्णने शकटासुरका मारना यमलार्जुनका तोड़ना गोवर्द्धनका धारण करना इत्यादि जो कर्म किया है उस्सेधीर चित्तवालोंको क्या आश्चर्यहै ॥

३८--अन्य पशुके तुल्यपुरुष इसकृष्णने उग्रसेन के पुत्रकंसका गौओंकी रक्षाकरतेहुए पुरुषोंसे नहीं करनेके योग्य दुष्कर जो स्वामीका बध किया यह परम आश्चर्य है ॥

३९--शत्रुओंके बलके भारका सहनेवाला नहीं सहनकरनेके योग्य स्वभाववाला वहशिशुपाल निष्ठुरतापूर्वक वचन कह कर शीघ्र वेणुदारि (किसी राजा) के साथ ताली बजाकर उच्चस्वर से हँसा ॥

४०--श्रीकृष्णजी कटुभी शिशुपालके वचनसे विकारको नहीं प्राप्तहुए क्योंकि सत्यमें स्थिर वचनवाले सुजनको कौन लोग वचन से चलानेको समर्थ होते हैं अर्थात् कोई भी नहीं ॥

४१—न च तन्तदेति शपमान-
मपि यदुनृपाः प्रचुक्रुधुः ।
शौरिसमयनिगृहीतधियः
प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्त्तते ॥
४२–विहितागसो मुहुरलंघ्य-
निजवचनदामसंयतः ।
तस्य कतिथ इति तत्प्रथमं
मनसा समाख्यदपराधमच्युतः ॥
४३–स्मृतिवर्त्म तस्य न समस्त-
मपकृतमियाय विद्विषः ।
स्मर्त्तुमधिगतगुणस्मरणाः
पटवो न दोपमखिलं खलूत्तमाः ॥
४४--नृपतावधिक्षिपति शौरि-
मथ सुरसरित्सुतो वचः ।
स्माह चलयति भुवम्मरुति
क्षुभितस्य नादमनुकुर्वदम्वुधेः ॥
४५--अथ गौरवेण परिवाद-
मपरिगणयंस्तमात्मनः ।
प्राह मुररिपुतिरस्करण-
क्षुभितः स्म वाचमिति जाह्नवीसुतः ॥
४६--विहितम्मयाद्य सदसीद-
मपमृपितमच्युतार्चनम् ।
यस्य नमयतु स चापमय-
ञ्चरणः कृतः शिरसि सर्वभूभृताम् ॥

४१–उससमय इसप्रकारगाली देतेहुए उस शिशुपालपर यदु-
वंशीलोग श्रीकृष्णजीके संकेतसे रुकीहुई बुद्धिवाले होकर
क्रुद्ध नहीं हुए क्योंकि लोग प्रभुके चित्तके अनुसार चलतेहैं॥

४२--नहीं उल्लंघन करनेके योग्य अपने वचनरूपी पाशसे बंधे
हुए श्रीकृष्णजीने वारंवार अपराधकरनेवाले भी शिशु-
पालके पूर्व से लेकर कितने अपराध किये यह मनमें
गणनाकी ॥

४३--शिशुपालके सम्पूर्ण अपराध उन श्रीकृष्णजीके स्मरणके
मार्ग में नहीं प्राप्तहुए क्योंकि गुणोंके स्मरण करनेवाले
सज्जन पुरुष सम्पूर्ण अपराधके स्मरण करनेमें नहीं स-
मर्थ होते हैं ॥

४४--इसके उपरान्त राजाशिशुपाल के श्रीकृष्णजी पर आक्षेप
करनेपर गङ्गाजी के पुत्रभीष्मजी प्रलयसम्बन्धी वायु से
पृथ्वीके कंपित होनेपर क्षोभको प्राप्त समुद्रके शब्द के स-
मान गम्भीर वचन बोले ॥

४५--इसके उपरान्त दैत्योंके शत्रु श्रीकृष्णजीकी निन्दासे क्षोभ
को प्राप्त गंगाजीके पुत्र भीष्मजी धैर्य्य से अपनी निन्दाको
नहीं गिनतेहुए इसप्रकारसे वचन बोले ॥

४६–मुझसे आजसभामें कियेगये इस श्रीकृष्णजी के पूजनको
जो न सहसकाहो वह धनुषको चढ़ाओ संपूर्ण राजालोगों
के शिरपर यह चरण रक्खा ॥

४७--इति भीष्मभाषितवचोऽर्थ-
मधिगतवतामिव क्षणात्।
क्षोभमगमदतिमात्रमथो
शिशुपालपक्षपृथिवीभृतां गणः ॥

४८--शितितारकानुमितमाम्र-
नयनमरुणीकृतं क्रुधा।
बाणवदनमुददीपि भिये
जगतः सकीलमिव सूर्य्यमण्डलम् ॥

४९--प्रविदारितारुणतरोग्र-
नयनकुसुमोज्ज्वलः स्फुरन्।
प्रातरहिमकरताम्रतनु-
र्विपजद्रुमोऽपर इवाभवद्द्रुमः ॥

५०--अनिशान्तवैरदहनेन
विरहितवतान्तरार्द्रताम्।
कोपमरुदभिहतेन भृशं
नरकात्मजेन तरुणेव जज्वले ॥

५१--अभिधित्सतः किमपि राहु-
वदनविकृतं व्यभाव्यत।
ग्रस्तशशधरमिवोपलस-
त्सितदन्तपङ्क्ति मुखमुत्तमौजसः ॥

५२--कुपिताकृतिम्प्रथममेव
हसितमशनैरसूचयत्।
क्रुद्धमशनिदलिताद्रितट-
ध्वनिदन्तवक्रमरिचक्रभीषणम् ॥

४७--इसप्रकार भीष्मजी से कहेहुए वचनके अर्थको क्षणभरमें मानों प्राप्तहुए शिशुपालके पक्षवाले राजालोगोंका समूह अत्यन्त क्रोधको प्राप्तहुआ ॥

४८--क्रोधसे रक्तवर्ण नेत्रकी श्याम पुतलियों से अनुमान किये गये रक्तनेत्रवाला राजा बाणका मुख परिधिसे युक्त सूर्य्य-मंडलके समान संसारके भयकेलिये जाज्वल्यमान हुआ ॥

४९--अत्यन्त फैलायेहुए अत्यन्तही रक्तवर्णवाले भयंकर नेत्ररू-पी पुष्पोंसे दीप्तिमान् प्रातःकालके सूर्य्यके समान रक्तवर्ण वाले शरीरवाला द्रुमनाम राजा अन्यविषसे उत्पन्नहुए द्रुम (वृक्ष) के समान हुआ ॥

५०--नहीं शान्तहुई विरोधरूपी अग्निसे अन्तःकरणमें आर्द्रता से रहित वायुरूपी कोपसे जाज्वल्यमान कियागया नर-कात्मज (वेणुदार) वृक्षके समान अत्यन्त प्रज्वलितहुआ ॥

५१--कुछ कहनेकी इच्छाकरतेहुए उत्तमौजस नाम राजाका राहु के मुखके समान कराल शोभायमान श्वेत दाँतोंकी पंक्ति वाला मुख चन्द्रमाके ग्रासकरनेके समान अनुमान किया गया ॥

५२--पहलेहीसे क्रोधयुक्तके समान आकृतिवाले शत्रुओंकी सेना के भय करनेवाले दन्तवक्र नाम राजाको वज्रसेमारेहुए पर्व्वतकी ध्वनिके समान ध्वनिवाले उच्चस्वर पूर्व्वक अट्ट-हासने क्रोधयुक्त सूचित किया ॥

५३–प्रतिघः कुतोऽपि समुपेत्य
नरपतिगणं समाश्रयत् ।
यामिहरणजनिताऽनुशयः
समुदाचचार निज एव रुक्मिणः ॥

५४–चरणेन हन्ति सुबलः स्म
शिथिलितमहीध्रबन्धनाम् ।
तीरतरलजलराशिजला-
मवभुग्नभोगिफणमण्डलाम्भुवम् ॥

५५–कुपितेषु राजसु तथापि
रथचरणपाणिपूजया ।
चित्तकलितकलहागमनो
मुदमाहुकिः सुहृदिवाधिकान्दधौ ॥

५६–गुरुकोपरुद्धपदमाप-
दसितयवनस्य रौद्रताम् ।
व्यात्तमशितुमिव सर्वजग-
द्विकरालमास्यकुहरं विवक्षतः ॥

५७–विवृतोरुबाहुपरिघेण
सरभसपदान्निथिल्लसता ।
हन्तुमखिलनृपतीन् वसुना
वसने विलम्बिनि निजे विचस्खले ॥

५८–इति तत्तदा विकृतरूप-
मभजत्तदभिन्नचेतसम् ।
मारबलमिव भयंकरतां
हरिबोधिसत्त्वमभि राजमण्डलम् ॥

५३--क्रोध कहीं से आकर राजालोगों के समूह में प्रविष्ट हुआ रुक्मी का तो भगिनी के हरने से उत्पन्नहुए पश्चात्ताप वाला अपनाही क्रोध प्रज्वलित हुआ ॥

५४--सुबल नामराजाने शिथिलहुए पर्व्वतोंके बन्धनवाली किनारेसे चलायमान समुद्रके जलवाली टेढ़ेहुए सर्पों के फणोंके समूहवाली पृथ्वीको चरणसे ताड़ना की ॥

५५--श्रीकृष्णजी के पूजनसे राजालोगोंके उसप्रकार क्रोध करने पर भी चित्तमें युद्धके लाभका निश्चयकरनेवाला आहुकि नाम राजामित्रके समान अधिक आनन्दको प्राप्त हुआ ॥

५६--कहनेकी इच्छा करतेहुए कालयवन नाम राजाका सम्पूर्ण संसार के भक्षणके लिये मानों फैलायागया विकराल बड़े क्रोधसे रुकेहुए वचन वाला मुखरूपी विवर भयंकरता को प्राप्त हुआ ॥

५७--सम्पूर्ण राजालोगोंको मारनेके लिये फैलाई गई बड़ीबाहु-रूपी परिघसे शीघ्रता पूर्व्वक चरणरखनेकी इच्छा रखता हुआ वसुनाम राजा गिरेहुए अपनेही वस्त्रमें गिरपड़ा ॥

५८--इसप्रकार उससमय विकारयुक्त रूपवाला राजालोगों का समूह कामदेवकी सेनाके समान नहीं विकारयुक्त चित्त वाले बुद्धिके समान श्रीकृष्णजी के सन्मुख भयंकरता को प्राप्त हुआ ॥

५९--रभसादुदस्थरथ युद्ध-
मनुजितभियोऽभिलापुकाः ।
सान्द्रमुकुटकिरणोच्छलित-
स्फटिकांशवः सदसि मेदिनीभृतः ॥

६०--स्फुरमाणनेत्रकुसुमोष्ठ-
दलमभृत भूभृदंघ्रिपैः ।
धूतपृथुभुजलतञ्चलितै-
र्द्रुतवातपातवनविभ्रमं सदः ॥

६१--हरिमप्यमंसत तृणाय
कुरुपतिमजीगणन्न वा ।
मानतुलितभुवनात्रितयाः
सरितः सुतादबिभयुर्न भूभृतः ॥

६२--गुरु निःश्वसन्नथ विलोल-
सदवथुवपुर्वचोविषम् ।
कीर्णदशनकिरणाग्निकणः
फणवानिवैष विससर्ज चेदिपः ॥

६३--किमहो नृपाः सममभीभि-
रुपपतिसुतैर्न पञ्चभिः ।
वध्यमभिहत भुजिष्यममुं
सह चानया स्थविरराजकन्यया ॥

६४--अथवाध्वमेव खलु यूय-
मगणितमरुद्गणौजसः ।
वस्तु कियदिदमयन्न मृधे
मम केवलस्य मुखमीक्षितुं क्षमः ॥

५९--इसके उपरान्त भयसेरहित युद्धके चाहनेवाले सभामें राजालोग घनीमुकुटकी किरणोंसे स्फटिककी किरणों के उठानेवाले होकर वेगसे उठे ॥

६०--नेत्ररूपी पुष्पोंके स्फुरण होनेपर और ओष्ठरूपी दलों के विकसित होनेपर भुजारूपी लताओं के कंपित होनेपर चंचल राजारूपी वृक्षों से सभाशीघ्र वायु के प्रचारवाले वनकी शोभाको प्राप्तहुई ॥

६१--अहंकारसे तीनों लोकोंके धारण करने वाले राजा लोग श्रीकृष्णजीको तृणके समान मानते भये और युधिष्ठिरको नहीं गिनते भये भीष्मजीसेभी नहींडरे ॥

६२--इसके उपरान्त यह शिशुपाल सर्पके समान अधिकश्वास लेताहुआ चलायमान और सन्तापयुक्त शरीरवाला अ-ग्नि के कणों के समान दाँतोंकी किरणोंका फेंकने वाला होकर विषरूपी वचन बोला ॥

६३--हे राजा लोगो इन पांचजारके पुत्रोंके साथ और इसवृद्ध राजाकी कन्या (भीष्मजी) के साथ बधके योग्य इसकिंकर को क्यों नहीं मारते ॥

६४--अथवा देवतालोगों के पराक्रमके तिरस्कार करनेवाले तुम लोग ठहरो यह क्या कार्य्यहै क्योंकि यह कृष्ण युद्ध में केवल मेरेही मुखके देखनेको नहीं समर्थहै ॥

६५--विदतुर्यमुत्तममशेष
परिषदि नदीजधर्मजौ ।
यातु निकषमधियुद्धमसौ
वचनेन किम्भवतु साध्वसाधु वा ॥

६६--अचिरान्मया सह गतस्य
समरमुरगारिलक्ष्मणः ।
तीक्ष्णविशिखमुखपीतमसृक्
पततांगणैः पिबतु सार्द्धमुर्वरा ॥

६७--अभिधाय रूक्षमिति मा स्म
गम इति पृथासुतेरिताम् ।
वाचमनुनयपरां सततः
सहसावकर्ण्य निरियाय संसदः ॥

६८--गृहमागताय कृपया च
कथमपि निसर्गदक्षिणाः ।
क्षान्तिमहितमनसोजननी-
स्वसुरात्मजाय चुकुपुर्न पाण्डवाः ॥

६९--चलितन्ततोऽनभिहतेच्छ-
मवनिपतियज्ञभूमितः ।
तूर्णमथ ययुमिवानुययु-
र्दमघोषसूनुमवनीशसूनवः ॥

७०--विशिखान्तराण्यतिपपात
सपदि जवनैः स वाजिभिः ।
द्रष्टुमलघुरभसापतिता
वनिताश्चकार न सकामचेतसः ॥

६५--भीष्मऔर युधिष्ठिर सम्पूर्ण सभामें जिस कृष्णको उत्तम जानतेहैं उस कृष्णकी युद्धमें परीक्षा करो उस्से बड़ाई या निन्दाहो वचनसे क्या है ॥

६६--मेरे साथ युद्धमें प्राप्त गरुड़ध्वज कृष्णका तीक्ष्ण बाणों के मुखोंसे पिया गया रुधिर पृथ्वी पक्षियोंके समूहों के साथ शीघ्र पिये ॥

६७--वह शिशुपाल इसप्रकार रूक्ष वचन कहकर इसकेउपरान्त कुन्ती के पुत्रोंसे कहेगये विनयसे भरेहुए न जाओ इसवचन को अनादरसे सुनकर सहसा सभासे चलागया ॥

६८--स्वभावसे चतुर क्षमासे युक्त चित्तवाले पाण्डव घरमेंआये हुए मौसीके पुत्र शिशुपाल पर कृपासे किसी प्रकार नहीं क्रुद्ध हुए ॥

६९--इसके उपरान्त राजालोगोंके पुत्र उस राजायुधिष्ठिर की यज्ञभूमि से मनोरथके नष्ट होनेपर चलेहुए अश्वमेध के घोड़ेके समान शिशुपालके पीछे शीघ्र चले ॥

७०--वह शिशुपाल शीघ्र वेगयुक्त घोड़ोंसे गलियों के मध्यका उल्लंघन करता भया देखनेके लिये बड़े वेग से दौड़तीहुई स्त्रियोंको सफल मनोरथ वालीनहीं करताभया ॥

७१--क्षणमीक्षितः पथि जनेन
किमिदमिति जल्पता मिथः।
प्राप्य शिविरमविशंकिमनाः
समनीनहद्द्रुतमनीकिनीमसौ ॥
७२—त्वरमाणशांखिकसवेग
वदनपवनाभिपूरितः।
शैलकटकतटाभिन्नरवः
प्रणनाद सान्नहनिकोऽस्य वारिजः ॥
७३--जगदन्तकालसमवेत-
विपदविपमेरितारवम्।
धीरनिजरवविलीनगुरु-
प्रतिशब्दमस्य रणतूर्य्यमावधि ॥
७४--सहसा ससम्भ्रमविलोल-
सकलजनतासमाकुलम्।
स्थानमगमदथ तत्परित-
श्चलितोडुमण्डलनभःस्थलोपमाम् ॥
७५--दधतो भयानकतरत्व-
मुपगतवतः समानताम्।
धूमपटलपिहितस्य गिरेः
समवर्मयन् सपदि मेदिनीभृतः ॥
७६—परिमोहिणा परिजनेन
कथमपि चिरादुपाहृतम्।
वर्म करतलयुगेन महत्
तनुचूर्णपेषमपिपद्रुपापरः ॥

७१--यह शिशुपाल मार्गमें यह क्याहै इसप्रकार परस्पर कहते हुए लोगोंसे क्षण भर देखा गया डेरेमें प्राप्तहोकर शंका-रहित चित्तवालाशीघ्रसेनाको तैयारकराताभया ॥

७२--वेगयुक्त शंखबजानेवालेके वेगयुक्त मुखकीपवनसे बजाया-गया पर्व्वतोंके मध्य देशोंमें प्राप्तहोने वाला शिशुपालका तैयारी करनेके लिये शंखबजा ॥

७३--कल्पान्तमें मिलेहुए मेघोंसे दारुणता पूर्व्वक उत्पन्न किये गये शब्दके तुल्य शब्दवाली गंभीर अपने शब्दमें मिलेहुए बड़े अन्य शब्दवाली इस शिशुपालकी रणकी दुन्दुभी बजाईगई ॥

७४--इसके उपरान्त शीघ्र व्यग्रतापूर्व्वक चलायमान संपूर्ण मनुष्यों के समूहसे भराहुआ वह स्थान सबओरसे चलेहुए नक्षत्रोंके समूहवाले आकाशकी तुल्यताको प्राप्त हुआ ॥

७५--राजालोग धुएंके समूहसे छाये हुए अत्यन्त भयंकरताको प्राप्त पर्व्वतकी तुल्यताको धारण करतेहुए शीघ्र कवचको धारण करतेभये ॥

७६--अन्य राजाने खेदयुक्त सेवकों से किसीप्रकार बहुतकालमें लायेगये बड़े कवचको दोनों हाथोंसे सूक्ष्म चूर्णकर क्रोधसे पीसडाला ॥

७७--रणसम्मदोदयविकाशि-
वलकलकलाकुलीकृते ।
शारिमशकदभिरोपयितु-
न्द्विरदे मदच्युति जनः कथञ्चन ॥

७८--परितश्च धौतमुखरुक्म-
विलसदहिमांशुमण्डलाः ।
तेनुरतनुवपुषः पृथिवीं
स्फुटलक्ष्यतेजस इवात्मजाः श्रियः ॥

७९--प्रधिमण्डलोद्धतपराग-
घनवलयमध्यवर्त्तिनः ।
पेतुरशनय इवाशनकै-
र्गुरुनिस्वनव्यथितजन्तवो रथाः ॥

८०--दधतः शशांकितशशांक-
रुचि लसदुरश्छदं वपुः ।
चक्रुरथ सह पुरन्ध्रिजनै-
रयथार्थसिद्धि सरकम्महीभृतः ॥

८१--दयिताय सासवमुदस्त-
मपतदवसादिनः करात् ।
कांस्यमुपहितसरोजपतद्-
भ्रमरौघभारगुरु राजयोषितः ॥

८२--भृशमङ्गसादमरुणत्व-
मविशदद्दशः कपोलयोः ।
वाक्यमसकलमपास्य मदं
विदधुस्तदीयगुणमात्मना शुचः ॥

७७--रणसम्बन्धी हर्षके उदयहोने से विस्तारको प्राप्त सेनाओंके कलकलों से व्याकुल बहतेहुए मदवाले हाथीपर सेवक लोग झूल डालनेके लिये किसीप्रकार समर्थ हुए ॥

७८--और शुद्ध मुखसम्बन्धी सुवर्णके आभूषणों में पड़ेहुए सूर्य्य के प्रतिविम्बवाले स्पष्ट लक्षित होतेहुए तेजवाले मानों स्थित बड़े शरीरवाले घोड़ोंने सबओरसे पृथ्वीको व्याप्त किया ॥

७९--रथकी नेमिरूपी कंकणोंसे उठाईगई धूलरूपी मेघोंकेसमूहोंके मध्यमें वर्त्तमान बड़े शब्दोंसे जीवोंके भयभीत करने वाले रथ, वज्रोंके समान शीघ्रचले ॥

८०--कवचके शोभायमान होनेपर मृगके चिह्नसे युक्त चन्द्रमाके समान द्युतिवाले शरीरके धारण करनेवाले राजालोगों ने स्त्रियोंके साथ यथार्थ सिद्धिसे रहित मद्यका पान किया ॥

८१--प्रियके पीने के लिये उठायागया मद्ययुक्त पड़ेहुए कमलमें गिरतेहुए भ्रमरों के समूहरूपी भारसे भारी मद्यपीने का पात्र राजाकी स्त्रीके शिथिल हाथसे गिरपड़ा ॥

८२--शोकने नहीं प्रसन्न दृष्टिवाली किसी नायिकाके मदकोहटा कर उस मदके गुणको अंगकी शिथिलता-कपोलों में रक्तता और असंपूर्ण वचन अपने आप अत्यन्त विस्तारकिये ॥

८३--सुदृशः समीकगमनाय
युवभिरथ सम्बभाषिरे।
शोकपिहितगलरुद्धगिर-
स्तरसागताश्रुजलकेवलोत्तराः॥

८४--विपुलाचलस्थलघनेन
जगमिषुभिरङ्गनाः प्रियैः।
पीनकुचतटनिपीडदल-
द्वरवारवाणमुरसा लिलिंगिरे॥

८५--न मुमोच लोचनजलानि
दयितजयमंगलैषिणी।
यातमवनिमवसन्नभुजा-
न्न गलद्विवेद वलयं विलासिनी॥

८६--प्रविवत्सतः प्रियतमस्य
निगडमिव चक्षुराक्षिपत्।
नीलनलिनदलदामरुचि
प्रतिपादयुग्ममचिरोढसुन्दरी॥

८७--व्रजतः क्व तात! वजसीति
परिचयगतार्थमस्फुटम्।
धैर्य्यमभिनदुदितं शिशुना
जननीनिर्भर्त्सनविवृद्धमन्युना॥

८८--शठ! नाकलोकललनाभि-
रविरतरतं रिरंससे।
तेन वहसि मुदमित्यवद-
द्रणरागिणं रमणमीर्ष्ययाऽपरा॥

८३–इसके उपरान्त इससमय युवा पुरुषों से युद्धमें जानेके लिये स्त्रियां शोकसेभरेहुए कंठमें रुकीहुई वाणीवाली वेग-से आयेहुए केवल अश्रुजलरूपी उत्तरवाली संभाषण की गईं ॥

८४–जानेकी इच्छाकरतेहुए प्रियोंसे स्त्रियां बड़े पर्व्वतके स्थल के समान दृढ़हृदयसे स्थूल कुचोंमें अत्यन्त दबाने से कंचु-कियोंके विदीर्ण होनेपर आलिंगन कीगईं ॥

८५--प्रियके जयके लिये मंगलकी इच्छाकरनेवाली स्त्रीने अश्रु नहीं छोड़े शिथिलहाथ से गिरेहुए पृथ्वी में प्राप्त कंकणको नहीं जाना ॥

८६--कोई नवोढ़ा (नवीन ब्याहीगई) स्त्री ने परदेशजाने की इच्छा करतेहुए प्रियतमके दोनोंचरणों में नीले कमलोंकी मालाके तुल्य कान्तिवाली शृंखलाके समानदृष्टी फेंकी ॥

८७--माताके धमकानेसे बढ़ेहुए कोपवाले बालकने हेतात कहां जातेहो यह स्पष्टतापूर्व्वक नहीं कहा तथापि अभ्यास से जानेगये अर्थवाले वचनने जातेहुए पुरुषका धैर्य्य नाश कर दिया ॥

८८--अन्य स्त्रीने युद्धमें उत्साहवाले प्रियसे हे शठ स्वर्गकी स्त्रियों के साथ निरन्तर भोगपूर्व्वक रमण करनाचाहतेहो इसी से हर्षको धारणकरतेहो यह ईर्षापूर्व्वक कहा ॥

८९—ध्रियमाणमप्यगलदश्रु
चलति दयिते नतभ्रुवः।
स्नेहमकृतकरसन्दधता-
मिदमेव युक्तमतिमुग्धचेतसाम्॥

९०—सह कज्जलेन विरराज
नयनकमलाम्बुसन्ततिः।
गण्डफलकमभितः सुतनोः
पदवीव शोकमयकृष्णवर्त्मनः॥

९१—क्षणमात्ररोधि चलितेन
कतिपयपदन्नतभ्रुवः।
स्रस्तभुजयुगगलद्वलय-
स्वनितम्प्राति क्षुतमिवोपशुश्रुवे॥

९२—अभिवर्त्म वल्लभतमस्य
विगलदमलायतांशुका।
भूमिनभसि रभसेन यती
विरराज काचन समम्महोल्कया॥

९३—समरोन्मुखे नृपगणेऽपि
तदनुमरणोद्यतैकधीः।
दीनपरिजनहृताश्रुजलो
न भटीजनः स्थिरमना विचक्लमे॥

९४—विदुषीव दर्शनममुष्य
युवतिरतिदुर्लभम्पुनः।
यान्तमनिमिषमवितृप्तमनाः
पतिमीक्षते स्म भृशमादृशः पथः॥

८९--प्रियके चलनेपर स्त्री के अश्रु रोके हुए भी टपकपड़े क्योंकि सत्यस्नेह के धारणकरनेवाले अत्यन्त कपटरहित बुद्धि वालोंको यही युक्त है ॥

९०—स्त्री के कपोलों में सब ओरसे कमलोंके तुल्य नेत्रोंसे जल की धार कज्जलके साथ शोकरूपी अग्निके मार्गके समान शोभितहुई ॥

९१—कुछ पदचलेहुए किसी पुरुषने क्षणमात्रका रोकनेवाला कुटिल भृकुटीवाली स्त्री का गिरतेहुए दोनों भुजाओं के चंचल कंकणोंका शब्द छींकके समान सुना ॥

९२—प्रियतमके मार्ग में गिरतेहुए निर्मलबड़ेवस्त्रवाली आकाश के तुल्य पृथ्वी में वेगसे जातीहुई कोई स्त्री महा उल्का के समान शोभित हुई ॥

९३—राजालोगों के समर के उन्मुख होनेपर भी उन राजा लोगों के साथ मरने में उद्यत मुख्यबुद्धिवाली दीन परि-जनों से छोड़ेगये अश्रुवाली स्थिर चित्तवाली वीर लोगों की स्त्रियां व्याकुलताको नहीं प्राप्त हुईं ॥

९४—कोई स्त्री इसपतिका दर्शन फिर दुर्लभमानो जानती भयी नहीं तृप्त चित्तवाली होकर जातेहुए पतिको दृष्टिके मार्ग पर्य्यन्त वारंवार निमेषरहित होकर देखती भयी ॥

९५--सम्प्रत्युपेयाः कुशली पुनर्युधः
सस्नेहमाशीरिति भर्त्तुरीरिता ।
सद्यः प्रसह्य द्वितयेन नेत्रयोः
प्रत्याचचक्षे गलता भटस्त्रियाः ॥

९६--काचित्कीर्णा रजोभिर्दिवमनुविदधे भिन्नवक्त्रेन्दुलक्ष्मी-
रश्रीकाः काश्चिदन्तार्दिशइव दधिरे दाहमुद्भ्रान्तसत्त्वाः ।
भ्रेमुर्वात्या इवान्याः प्रतिपदमपरा भूमिवत्कम्पमापुः
प्रस्थानेपार्थिवानामशिवमिति पुरो भावि नार्य्यः शशंसुः ॥

इति श्रीमाघकृते शिशुपालवधे महाकाव्ये
पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

९५—इसीसमय कुशल पूर्वक युद्धसे फिरलौट आओ यह स्नेह-पूर्वक पतिके लिये कहागया आशीर्वाद शीघ्र हठपूर्वक गिरतेहुए अश्रुके द्वारा वीर की स्त्रीके दोनों नेत्रोंसे खंडन कियागया॥

९६—कोई स्त्री रजसे व्याप्त चन्द्रमारूपी मुखकी लक्ष्मीसे रहित होकर आकाशका अनुकरण करतीभयी, कुछस्त्रियां दिशाओंके समान शोभारहित और व्याकुल चित्तवाली होकर अन्तःकरण में सन्तापको धारण करतीभयीं, अन्य स्त्रियां वायुके समूहके समान दिशा दिशामें भ्रमण करतीभयीं, अन्य स्त्रियां पृथ्वी के समान कम्पको प्राप्तहुईं इसप्रकार राजालोगोंके प्रस्थानके समय स्त्रियों ने होनेवाला अशुभ पहलेही सूचित करादिया॥

इति श्रीमाघकृतमहाकाव्यशिशुपालबधस्य भाषानुवादे
पञ्चदशः सर्गः॥ १५॥

षोडशः सर्गः ॥

शिशुपालप्रेपितचारवाक्यानि तदनुकूलमेव सात्यकिदत्तोत्तरवर्ण-
नम्-दूतस्य पुनः प्रत्युत्तरकथनवर्णनं च ॥

१—दमघोपसुतेन कश्चन
प्रतिशिष्टः प्रतिभानवानथ ।
उपगम्य हरिं सदस्यदः
स्फुटभिन्नार्थमुदाहरद्वचः ॥

२—अभिधाय तदा तदप्रियं
शिशुपालोऽनुशयम्परङ्गतः ।
भवतोऽभिमनाः समीहते
सरुषः कर्त्तुमुपेत्य माननाम् ॥

३—विपुलेन निपीड्य निर्दय-
म्मुदमायातु नितान्तमुन्मनाः ।
प्रचुराधिगताङ्गनिर्वृति-
म्परितस्त्वां खलु विग्रहेण सः ॥

सोलहवां सर्ग ॥

शिशुपालके भेजेहुए दूतकाव्यर्थ वचनोंकाकथन औरउसकेअनुकूल सात्यकीका उत्तरदेना और उत्तर सुनकर दूतकाअन्य वचनोंका कहना ॥

१–इसके उपरान्त शिशुपालसे भेजागया प्रगल्भ कोई दूत श्रीकृष्णजीको प्राप्तहोकर सभामें स्पष्ट भिन्नअर्थवाला यह वचन बोला ॥

२–शिशुपाल उससमय वह अप्रिय कहकर अत्यन्त पश्चात्ताप को प्राप्तहुआ उत्कण्ठायुक्त चित्तवाला होकर आयकर क्रोधयुक्त आपकी पूजा करना चाहता है-अथवा-शिशुपाल उससमय वह अप्रिय कहकर अत्यन्त बड़ेद्वेषको प्राप्तहुआ निर्भय चित्तवालाहोकर आयकर क्रोधयुक्त तुमको मारना चाहता है ॥

३–उत्सुक चित्तवाला वह शिशुपाल अत्यन्त शरीरके सुखको प्राप्त तुमको पुलकसे युक्त शरीरसे अत्यन्त आलिंगनकरके बड़ेआनन्दको प्राप्तहो-अथवा–वीर वह शिशुपाल बड़ी मन की व्यथासे शरीरके सुखसे रहित तुमको बड़े युद्धसे निर्दयतापूर्वक मारकर आनन्दको प्राप्त होवे ॥

४—प्रणतः शिरसा करिष्यते
सकलैरेत्य समन्धराधिपैः ।
तव शासनमाशु भूपतिः
परवानद्य यतस्त्वयैव सः ॥

५—अधिवह्निपतंगतेजसो
नियतस्वान्तसमर्थकर्मणः ।
तव सर्वविधेयवर्तिनः
प्रणतिम्बिभ्रति केन भूभृतः ॥

६—जनताम्भयशून्यधीः परै-
रभिभूतामवलम्बसे यतः ।
तव कृष्ण ! गुणास्ततो नरै-
रसमानस्य दधत्यगण्यताम् ॥

४–शिशुपाल संपूर्ण राजालोगोंके साथ आयकर शिरसे प्रणाम करताहुआ शीघ्र तुम्हारी आज्ञा करैगा जिसकारण से वह शिशुपाल इससमय तुम्हारेही आधीन है-अथवा–शिरसे नमस्कार कियागया शिशुपाल संपूर्ण राजालोगोंके साथ आयकर शीघ्र तुम्हारी शिक्षाकरैगा जिस कारणसे वह शिशुपाल इससमय तुम्हींसे शत्रुवाला है ॥

५–अग्नि और सूर्य्यके तेजको प्राप्त स्थिर चित्तवाले कर्म में समर्थ वशमें रहनेवाले सम्पूर्ण राजावाले तुमको कौन राजा नहीं प्रणामकरतेहैं-अथवा--अग्निमें पतंगकेतुल्य तेज वाले निश्चित अपने निवासमें समर्थ कर्मवाले सबकी किंकरतामें प्राप्त तुमको किसगुणसे राजालोग प्रणामकरते हैं किसी से नहीं ॥

६–हे कृष्ण भयसे रहित चित्तवाले शत्रुओंसे अनादर कियेगये जनोंको जिसकारण से ग्रहणकरतेहो इसी से नहीं मनुष्यों के तुल्य तुम्हारेगुण असंख्यताको धारणकरते हैं-अथवा-हे मलिनात्मक मूढ़ बुद्धिवाले अन्यजनोंसे अनादर कियेगये सेवकपनेको जिसकारणसे धारण करतेहो इसीकारण से नहीं मनुष्योंके तुल्य तुम्हारेगुण अनादर करनेकी योग्यता को धारण करते हैं ॥

७—अहितादनपत्रपस्त्रस-
न्नतिमात्रोज्झितभीरनास्तिकः ।
विनयोपहितस्त्वया कृतः
सदृशोऽन्यो गुणवानविस्मयः ॥

८—कृतगोपवधूरतेर्घ्नतो
वृषमुग्रे नरकेपि सम्प्रति ।
प्रतिपत्तिरधःकृतैनसो
जनताभिस्तव साधु वर्ण्यते ॥

९—विहितापचितिर्महीभृता
द्विषतामाहितसाध्वसो बलैः ।
भव सानुचरस्त्वमुच्चकै-
र्महतामप्युपरि क्षमाभृताम् ॥

१०—धनजालनिभैर्दुरासदाः
परितो नागकदम्बकैस्तव ।
नगरेषु भवन्तु वीथयः
परिकीर्णा वनजैर्मृगादिभिः ॥

७–तुम्हारे सदृश अन्यगुणवान् कहां है कहींभी नहीं क्योंकि तुम अधर्म से डरतेहो लज्जावान्हो अत्यन्त भयसे रहित हो नास्तिक नहीं हो विनयसे युक्तहो गर्वरहितहो-अथवा– तुम्हारे सदृश अन्यनिर्गुण कहां है कहीं भी नहीं क्योंकि तुम शत्रुसे डरतेहो–निर्लज्जहो–केवल प्रणामसे शत्रुओंके भयकेत्याग करनेवालेहो–नास्तिकहो–विनयसे रहितहो– हितसे रहितहो–अभिमानीहो ॥

८–गोपीरूपी स्त्रियोंमें रति करनेवाले वृषरूप अरिष्टनाम दैत्य के मारनेवाले–पातकरहित तुम्हारा भयंकर नरकासुर में पुरुषार्थ इससमय लोगोंसे अच्छेप्रकार वर्णन कियाजाता है-अथवा-गोपोंकी स्त्रियोंमेंरति करनेवाले–वृषभके मारने वाले-पापके करनेवाले–तुम्हारी उग्रनरकमें नीचे प्राप्ति लोगोंसे अच्छेप्रकार वर्णन की जाती है ॥

९–भृत्यों के साथ राजाशिशुपाल से पूजन कियेगये सेनाओं से शत्रुओंके भयके उत्पन्न करनेवाले होकर बड़ेभी राजा- लोगोंकेऊपरउन्नततुमहो--अथवा–शिशुपालसेकीगई हानि वाले शत्रुओंकी सेनाओंसे डरायेगये होकर वड़े पर्व्वतों के ऊपर शिखरोंपर घूमनेवाले तुमहो ॥

१०–तुम्हारे नगरोंमें गलियां मेघोंके समूहोंके तुल्य वनमें उत्पन्न हुए मृगादिक हाथियोंके समूहोंसे सबओरको व्याप्त दुःख से प्रवेश करनेकेयोग्यहोंय--अथवा--तुम्हारेनगरोंमें गलियां घने जालके तुल्य सर्पोंके समूहोंसे वनमें उत्पन्नहुए मृगोंके भक्षण करनेवाले सिंहादिकों से व्याप्त दुःख से प्रवेशकरने के योग्यहोंय ॥

११—सकलापिहितस्वपौरुपो
नियतव्यापदवर्द्धितोदयः।
रिपुरुन्नतधीरचेतसः
सततव्याधिरनीतिरस्तु ते॥

१२—विकचोत्पलचारुलोचन-
स्तव चैद्येन घटामुपेयुषः।
यदुपुंगव! वन्धुसौहृदात्
त्वयि पाता ससुरो नवासवः॥

१३—चलितानकदुन्दुभिः पुरः
सवलस्त्वं सह सारणेन तम्।
समितौ रभसादुपागतः
सगदः सम्प्रतिपत्तु मर्हसि॥

१४—समरेपु रिपून् विनिघ्नता
शिशुपालेन समेत्य सम्प्रति।
सुचिरं सह सर्वसात्वतै-
र्भव विश्वस्तविलासिनीजनः॥

११–उदार और धीर चित्तवाले तुम्हारा शत्रु सम्पूर्णलोगों से तिरस्कार कियेगये अपने पुरुषार्थवाला-नित्यविशेष आपत्तिवाला–नहींबढ़ेहुएउदयवाला–निरन्तररोगवालानीतिरहितहोवे–अथवा–बुद्धिरहित तुम्हाराशत्रु सम्पूर्णलोगोंसे नहीं तिरस्कार कियेगये अपने पुरुषार्थवाला नित्यआपत्ति से रहित निरन्तर उदयवाला उदारबुद्धिवाला मनकी व्यथासे रहित ईतियोंसे रहित होवे ॥

१२–हे यदुपुंगव शिशुपाल,अत्यन्त सन्धिको प्राप्त तुम्हारे प्रफुल्लित कमलरूपी सुन्दरनेत्रवाली मधुकी मदिरासे युक्त नवीनमदिरा बन्धुपरस्नेहकेकारण पियेगा–अथवा–हे यदुवंशियों में वृषभ शिशुपालके साथ युद्धकरतेहुए तुम्हारा प्रफुल्लित कमलोंके समान नेत्रवाला देवताओंसे युक्त इन्द्र भी बन्धुमें स्नेहके कारण रक्षाकरनेवाला न होगा ॥

१३--हर्षसे प्राप्त उस शिशुपालको तुम सन्मुखचलेहुए वसुदेववाले बलभद्रसेयुक्त सारण नामपुत्रके साथ गद नाम भाई समेत सभामें आदर करनेके योग्यहो-अथवा-युद्धमें वेगसे प्राप्त उसशिशुपालको तुम सन्मुख चलेहुए पटह और दुन्दुभीवाले सेनासे युक्त गदाको लेकर शीघ्र युद्ध करने के योग्यहो ॥

१४–युद्धमें शत्रुओंको मारने वाले शिशुपालसे एकताको प्राप्त होकर इस समय बहुत काल पर्य्यन्त सम्पूर्ण यदुवंशियों के साथ सावधान स्त्रीवालेहो-अथवा-शत्रुओंके मारनेवाले शिशुपालके साथ युद्धमें प्राप्तहोकर इसी समय बहुतकाल तक सम्पूर्ण यदुवंशियोंके साथ विधवास्त्रीवालेहो ॥

१५– विजितक्रुधमीक्षतामसौ
महतान्त्वा महितम्महीभृताम् ।
असकृज्जितसंयतम्पुरो
मुदितः सप्रमदम्महीपतिः ॥

१६–इति जोपमवस्थितं द्विपः
प्रणिधिंगामभिधाय सात्यकिः ।
वदति स्म वचोऽथ चोदित-
श्चलितैकभ्रु रथाङ्गपाणिना ॥

१७–मधुरं वहिरन्तराप्रियं
कृतिनाऽवाचि वचस्तथा त्वया ।
सकलार्थतया विभाव्यते
प्रियमन्तर्वहिरप्रियं यथा ॥

१८--अतिकोमलमेकतोऽन्यतः
सरसाम्भोरुहवृन्तकर्कशम् ।
वहति स्फुटमेकमेव ते
वचनं शाकपलाशदेश्यताम् ॥

१९–प्रकटम्मृदु नाम जल्पतः
परुषं सूचयतोऽर्थमन्तरा ।
शकुनादिव मार्गवर्त्तिभिः
पुरुषादुद्विजितव्यमीदृशात् ॥

१५—यह राजाशिशुपाल प्रसन्न होकर क्रोधरहित बड़े राजालोगोंके पूज्य वारंवार युद्धोंके जीतने वाले हर्षयुक्त तुमको सन्मुख देखे-अथवा-यह राजा शिशुपाल प्रसन्नहोकरक्रोधरहित बड़ेराजालोगोंके शत्रु वारंवार जीते गये और बाँधे गये स्त्रीयुक्त तुमको सन्मुखदेखे ॥

१६—इसप्रकार वचन कहकर मौनखड़े हुए शत्रुके दूतसे सात्यकी दूतके वचनके उपरान्त श्रीकृष्णजीसे एकभृकुटी को चलाकर प्रेरणाकियागया वचन बोला ॥

१७—कुशल तुमने प्रकाशमें मधुर और भीतर अप्रियवचन इस प्रकारसे कहा जिस प्रकार दोनों अर्थोंकी सम्पूर्णतासे भीतर प्रिय और बाहर अप्रियं प्रतीत होताहै ॥

१८—एकजगह कोमल अन्यत्र रसयुक्त कमलके गुच्छेके समान कर्कश एकही तुम्हारा वचन शाकपलाश (वृक्ष विशेष का पत्र) कीतुल्यताको स्पष्टधारण करताहै ॥

१९—प्रकाशमें कोमल कहते हुए भीतर कठोर अर्थको सूचित करते हुए पक्षीके समान ऐसे पुरुषसे मार्गमें रहने वालों को भयभीत होना चाहिये ॥

२०—हरिमर्चितवान् स भूपति-
र्यदि राज्ञस्तव कोऽत्र मत्सरः ।
न्यसनाय ससौरभस्य क-
स्तरुसूनस्य शिरस्यसूयति ॥

२१--सुकुमारमहो लघीयसां
हृदयन्तद्गतमप्रियं यतः ।
सहसैव समुद्गिरन्त्यमी
क्षपयन्त्येव हि तन्मनीषिणः ॥

२२--उपकारपरः स्वभावतः
सततं सर्वजनस्य सज्जनः ।
असतामनिशन्तथाप्यहो
गुरुहृद्रोगकरी तदुन्नतिः ॥

२३--परितप्यत एव नोत्तमः
परितप्तोऽप्यपरः सुसंवृतिः ।
परिवृद्धिभिराहितव्यथः
स्फुटनिर्भिन्नदुराशयोऽधमः ॥

२४--अनिराकृततापसम्पद-
म्फलहीनां सुमनोभिरुज्झिताम् ।
खलतांखलतामिवासती-
म्प्रतिपद्येत कथम्बुधो जनः ॥

२५--प्रतिवाचमदत्त केशवः
शपमानाय न चेदिभूभुजे ।
अनुहुंकुरुते घनध्वनि-
न्नहि गोमायुरुतानि केशरी ॥

१०--उन राजायुधिष्ठिरने यदिश्रीकृष्णजीका पूजन किया यहाँ तुम्हारे राजा शिशुपालको क्या परसन्तापहै सुगन्धियुक्त वृक्षके पुष्पको शिरपर रखनेकेलिये कौनईर्षा करताहै ॥

२१--तुच्छोंका हृदय सूक्ष्म होताहै जिस कारणसे यहलोगहृदय में प्राप्त अप्रियको शीघ्र कहतेहैं ।विद्वान् लोगतो उसको हृदयमेंही जीर्ण करतेहैं ॥

२२--सज्जन स्वभावहीसे सदैव सबके उपकारमें तत्पर रहते हैं तिसपरभी उन सज्जनोंकी उन्नति सदैव दुष्टोंके अत्यन्त हृदयके सन्ताप करनेवाली होतीहै ॥

२३--उत्तमपुरुष अन्यकी वृद्धियोंसे व्यथाहीको नहीं प्राप्तहोताह अन्य मध्यमपुरुष सन्तापको प्राप्तभी अच्छेप्रकारसे छिपाने वालाहोताहै अधमतो पराई वृद्धियोंसे उत्पन्न हुए सन्तापवाला स्पष्ट दुराशयका प्रकाश करनेवाला होताहै ॥

२४- अत्यन्त तापकी निवारण करने वाली फलसेरहित पण्डितोंसे त्यागकी गई अथवा पुष्पोंसे रहित असती (दुष्ट और अभाव वाली) आकाशकी लताके समान दुष्टताको पण्डितजन कैसे प्राप्तहोंय ॥

२५--श्रीकृष्णजीने गाली देतेहुए राजा शिशुपालको प्रत्युत्तरनहीं दिया क्योंकि सिंह मेघके शब्दके पछि हुंकार करताहै शृगालोंके शब्दों के पीछे हुंकार नहीं करताहै ॥

२६--जितरोषरया महाधियः
सपदि क्रोधजितो लघुर्जनः ।
विजितेन जितस्य दुर्मते-
र्मतिमद्भिः सह का विरोधिता ॥

२७--वचनैरसताम्महीयसो
न खलु व्येति गुरुत्वमुद्धतैः ।
किमपैति रजोभिरौर्वरै-
रवकीर्णस्य मणेर्महार्घता ॥

२८--परितोषयिता न कश्चन
स्वगतो यस्य गुणोऽस्ति देहिनः ।
परदोषकथाभिरल्पकः
स्वजनन्तोषयितुं किलेच्छति ॥

२९--सहजान्धदृशः स्वदुर्नये
परदोषेक्षणदिव्यचक्षुषः ।
स्वगुणोच्चगिरो मुनिव्रताः
परवर्ण ग्रहणेष्वसाधवः ॥

३०--प्रकटान्यपि नैपुणम्महत्
परवाच्यानि चिराय गोपितुम् ।
विवरीतुमथात्मनो गुणान्
भृशमाकौशलमार्य्यचेतसाम् ॥

३१--किमिवाखिललोककीर्तितं
कथयत्यात्मगुणम्महामनाः ।
वदिता न लघीयसोऽपरः
स्वगुणन्तेन वदत्यसौ स्वयम् ॥

२६--उत्तम बुद्धिवाले पुरुष क्रोधके वेगके जीतनेवाले होते हैं तुच्छ पुरुषतो शीघ्र क्रोधसे जीतागया होताहै जीते गयेसे जीतेगये मूर्खका पण्डितों के साथ क्या विरोध है ॥

२७--निष्ठुर दुर्जनों के वचनोंसे महात्माका गौरवनहीं जाता क्योंकि पृथ्वी सम्बन्धी धूलिसे ढकीहुई मणिका महामूल्य-त्व क्या चलाजाता है किन्तुनहीं जाताहै ॥

२८--जिसप्राणी के अन्यपुरुषों का आनन्द देनेवाला अपने में कोई गुणनहीं है वह तुच्छ प्राणी अन्य पुरुषों के दोषोंकी कथाओंसे अपनेलोगोंको तुष्टकरना चाहता है ॥

२९--दुष्टलोग अपने दोषमें स्वाभाविक अन्धदृष्टि वाले होते हैं परायेदोषोंके देखनेमें दिव्यदृष्टि वाले होते हैं अपनेगुणोंमें प्रगल्भ वचनवाले होते हैं अन्यकी स्तुतियों के कहने में मौनव्रतवाले होते हैं ॥

३०--साधुलोगों को पराये दूषणोंके बहुत कालतक छिपाने के लिये बड़ी निपुणता होती है और अपने गुणोंके प्रकटकरने के लिये अत्यन्त अप्रवीणता होती है ॥

३१--महात्मा संपूर्ण लोकोंमें विख्यात अपने गुणको किसलिये कहै तुच्छ पुरुषके तो अपने गुणका कहनेवाला अन्यनहीं है इसलिये वह अपने गुणको आपही कहता है ॥

२२--विसृजन्त्यविकत्थिनः परे
विषमाशीविषवन्नराः क्रुधम्।
दधतोऽन्तरसाररूपतां
ध्वनिसाराः पटहा इवेतरे॥

२३--नरकच्छिदमिच्छतीक्षितुं
विधिना येन स चेदिभूपतिः।
द्रुतमेतु न हापयिष्यते
सदृशन्तस्य विधातुमुत्तरम्॥

२४--समनद्ध किमंग! भूपति-
र्यदि सन्धित्सुरसौ सहामुना।
हरिराक्रमणेन सन्नतिं
किल बिभ्रीत भियेत्यसम्भवः॥

२५--महतस्तरसा विलंघयन्
निजदोषेण कुधीर्विनश्यति।
कुरुते न खलु स्वयेच्छया
शलभानिन्धनमिद्धदीधितिः॥

२६--यदपूरि पुरा महीपति-
र्न मुखेन स्वयमागसां शतम्।
अथ सम्प्रति पर्य्यपूपुरत्
तदसौ दूतमुखेन शार्ङ्गिणः॥

२७--यदनर्गलगोपुराननः-
स्त्वमितो वक्ष्यसि किञ्चिदप्रियम्।
विवरिष्यति तच्छिरस्य नः
समयोद्वीक्षणरक्षितां क्रुधम्॥

३२--अन्य पुरुष (सत्पुरुष) विषको सर्पके समान अपनीप्रशंसा नहीं करते हुए क्रोधको छोड़ते हैं अन्तःकरणमें नहीं सारांशको धारण करतेहुए अन्य (दुष्ट) पुरुष नगाड़ेके समान ध्वनिरूपी सारांशवालेही होतेहैं ॥

३३--वह राजा शिशुपाल जिस प्रकारसे नरकासुर के मारने वाले श्रीकृष्णचन्द्रके देखनेको चाहताहै शीघ्र आवै उसके तुल्य उत्तर देनेके लिये देरनहीं करैंगे ॥

३४--हे दूत यह शिशुपाल इनश्रीकृष्णजीके साथ यदिसन्धिकरना चाहताहै तोयुद्धकी तैयारी किसलिये कीहै और श्री कृष्णजीआक्रमण (चढ़ाई) के भयसे नम्रताको धारण करैं यह असंभवहै ॥

३५--दुष्टबुद्धिवाला पुरुष महात्माओं पर बलसे आक्रमण (चढ़ाई) करताहुआ अपनेही दोषसे नष्ट होताहै क्योंकि अग्नि अपनी इच्छासे पतंगोंको इन्धन नहीं बनाती है ॥

३६--पहले राजा शिशुपालने अपने मुखसे जो सौ अपराधनहीं पूरणकिये पीछे इससमय इस शिशुपालने दूतके मुखसे वह सौ अपराध पूरे किये ॥

३७--अनर्गल (बेलनके विना) पुरके द्वारके समान मुखवाले तुम इसके उपरान्त जो कुछ अप्रियकहोगे वह बहुतकाल पर्य्यन्तसमयके देखनेसे रोकेहुए हमारे क्रोधकोप्रकटकरैगा॥

३८–निशमय्य तदूर्जितं शिने-
र्वचनन्नसुरनासु रेनसाम् ।
पुनरुज्झितसाध्वसं द्विपा-
मभिधत्ते स्म वचो वचोहरः ॥

३९–विविनक्ति न बुद्धिदुर्विधः
स्वयमेव स्वहितम्पृथग्जनः ।
यदुदीरितमप्यदः परै-
र्न विजानाति तदद्भुतम्महत् ॥

४०–विदुरेष्यदपायमात्मना
परतः श्रद्दधतेऽथवा बुधाः ।
न परोपहितन्न च स्वतः
प्रमिमीतेऽनुभवादृतेऽल्पधीः ॥

४१–कुशलं खलु तुभ्यमेवत-
द्वचनं कृष्ण ! यदभ्यधामहम् ।
उपदेशपराः परेष्वपि
स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः ॥

४२–उभयं युगपन्मयोदित-
न्त्वरया सान्त्वमथेतरच्च ते ।
प्रविभज्य पृथङ्मनीषया
स्वगुणं यत्किल तत्करिष्यसि ॥

४३–अथवाभिनिविष्टबुद्धिषु
व्रजति व्यर्थकतां सुभाषितम् ।
रविरागिषु शीतरोचिषः
करजालं कमलाकरेष्विव ॥

३८–पातकोंके नहीं स्पर्श करनेवाले शिनीके पौत्र सात्यकीका वह अर्थयुक्त वचन सुनकर फिर भयको त्यागकर शत्रुका दूत वचन बोला ॥

३९–बुद्धिसे रहित मूर्ख पुरुष आपही अपनेहितको नहीं जानताहै किन्तु अन्यपुरुषों से उपदेश कियेगये इस अपनेहित को जो नहीं जानताहै यह बड़ा आश्चर्य्य है ॥

४०–बुद्धिमान् लोग आनेवाले अनर्थको आपही जानतेहैं अथवा अन्यसे विश्वास करते हैं मूर्ख तो अनुभवके विना अन्यसे कहागया और आपभी नहीं जानताहै ॥

४१–हे कृष्ण हमने जो वचन कहाहै वह वचन तुम्हींकोहितहै साधुलोगअपने विनाशमें प्रवृत्त शत्रुओंकोभी उपदेशदेतेहैं॥

४२–मैंने साम (सन्धि) और अन्ययुद्ध दोनों इकट्ठे तुमसे कहे हैं तुम बुद्धिसे अलग करके जो अपनेलिये अच्छाहोगा वह शीघ्रतापूर्व्वक करोगे ॥

४३–अथवा आग्रहयुक्त बुद्धिवालों में हितका उपदेश सूर्य्यमें अनुरागयुक्त कमल के समूहोंमें चन्द्रमाकी किरणों के समान व्यर्थता को प्राप्त होता है ॥

४४--अनपेक्ष्य गुणागुणौ जनः
स्वरुचिन्निश्चयतोऽनुधावति ।
अपहाय महीशमार्चिचत्
सदसि त्वान्ननु भीमपूर्वजः ॥
४५--त्वयि भक्तिमता न सत्कृतः
कुरुराजा गुरुरेव चेदिपः ।
प्रियमांसमृगाधिपोज्झितः
किमवद्यः करिकुम्भजो मणिः ॥
४६--क्रियते धवलः खलूच्चकै-
र्धवलैरेवासितेतरैरधः ।
शिरसौघमधत्त शंकरः
सुरसिन्धोर्मधुजित्तमङ्घ्रिणा ॥
४७--अबुधैः कृतमानसंविद-
स्तव पार्थैः कुत एव योग्यता ।
सहसि प्लवगैरुपासित-
न्न हि गुञ्जाफलमेति सोष्मताम् ॥
४८--अपराधशतक्षमन्नृपः
क्षमयात्येति भवन्तमेकया ।
हृतवत्यपि भीष्मकात्मजा-
न्त्वयि चक्षाम समर्थ एव यत् ॥
४९--गुरुभिः प्रतिपादितां वधू-
मपहृत्य स्वजनस्य भूपतेः ।
जनकोऽसि जनार्दन ! स्फुटं
हतधर्मार्थतया मनोभुवः ॥

४४–दुर्जन गुण और दोषोंको न विचार कर निश्चय से अपनी रुचिके अनुसार कार्य्य करता है क्योंकि भीमके बड़े भाई राजायुधिष्ठिरने राजाशिशुपालको छोड़कर सभामें तुम्हारा पूजन किया ॥

४५–तुममें स्नेहयुक्त उस राजा युधिष्ठिरसे नहीं सत्कार किया गया राजाशिशुपाल पूजन करने के योग्यही है क्योंकि मां-समें प्रेमयुक्त मृगाधिप सिंह से त्यागकीगई हाथी के कुंभ से उत्पन्न हुई मणि क्या निंद्य है किन्तु नहीं ॥

४६–निर्मल निर्मलोंही से उन्नतकिया जाताहै (और) मलिनों से तो नीचे किया जाता है क्योंकि शिवजीने गंगाजीका प्रवाह शिरसे धारण किया और विष्णुने तो उसे चरण में धारण किया ॥

४७–अज्ञानयुक्त पांडवों से किये गये पूजन और तुष्टिवाले तुम्हारी योग्यता कहाँसे है किन्तुकहीं से भी नहीं क्योंकि मार्गशीर्षमास में वानरों से सेवा की गई घोंघची उष्णता से युक्त नहीं होती है ॥

४८–राजाशिशुपाल सौ अपराधों के क्षमा करनेवाले तुमको एक क्षमासे उल्लंघन करता है जिसकारण से तुमको रुक्मिणी के हरणकरने पर समर्थ होकर भी क्षमाकी ॥

४९–हे जनार्दन गुरूलोगों से दीगई अपने बन्धु राजा शिशुपाल की स्त्रीको हरकर धर्म और अर्थके नाशकरनेसे स्पष्ट काम के उत्पन्न करने वाले हो ॥

५०--अनिरूपितरूपसम्पद-
स्तमसो वान्यभृतच्छदच्छवेः ।
तव सर्वगतस्य सम्प्रति
क्षितिपः क्षिप्नुरभीशुमानिव ॥

५१--क्षुभितस्य महीभृतस्त्वयि
प्रशमोपन्यसनं वृथा मम ।
प्रलयोल्लसितस्य वारिधेः
परिवाहो जगतः करोति किम् ॥

५२--प्रहितः प्रधनाय माधवा-
नहमाकारयितुम्महीभृता ।
न परेषु महौजसश्छला-
दपकुर्वन्ति मलिम्लुचा इव ॥

५३--तदयं समुपैति भूपतिः
पयसाम्पूर इवानिवारितः ।
अविलम्बितमेधि वेतस-
स्तरुवन्माधव ! मा स्म भज्यथाः ॥

५४--परिपाति स केवलं शिशू-
निति तन्नामनि मा स्म विश्वसीः ।
तरुणानपि रक्षति क्षमी
स शरण्यः शरणागतान्द्विषः ॥

५५--न विदध्यु रशंकमप्रिय-
म्महतः स्वार्थपराः परे कथम् ।
भजते कुपितोऽप्युदारधी-
रनुनीतिन्नतिमात्रकेण सः ॥

५०–नहीं ज्ञातरूपकी सम्पत्तिवाले कोकिल के पक्षके समान कान्ति वाले अन्धकारके समान सर्वत्र व्याप्त तुम्हारा सूर्य के समान शिशुपाल इसी समय नाश करनेवाला होगा ॥

५१–तुमपर अत्यन्तक्रुद्ध राजा शिशुपालको मेरा शान्ति के लिये उपदेश निष्फल है क्योंकि कल्पके अन्तमें क्षोभको प्राप्त समुद्रका लोगोंसे बनायागया जलनिकलनेका मार्ग क्या करसक्ता है ॥

५२–युद्ध करने के लिये यदुवंशियों के बुलाने को मैं राजासे भेजागयाहूं क्योंकि बड़े पराक्रमवाले पुरुष शत्रुओं में चोरों के समान छलसे नहीं अपकार करते हैं ॥

५३–तिसकारण से यह राजा शिशुपाल जलोंके समूहोंके समाननहीं निवारण किया हुआ आताहै हे माधव शीघ्र वेतके वृक्षके समान हो जिस्से कि वृक्षके तुल्य न तोड़ेजाओ॥

५४–वह शिशुपाल केवल बालकों की रक्षा करता है यह उस के नाममें मत विश्वास करो किन्तु क्षमायुक्त रक्षा करने में समर्थ वह शिशुपाल शरणमें आये युवा शत्रुओं कीभी रक्षाकरता है ॥

५५–स्वार्थ में तत्पर शत्रु बड़ेका अपकार किसप्रकार निस्सन्देह होकर नहीं करै किन्तु उदारबुद्धिवाला वह राजा शिशुपाल केवल प्रणामसे अनुग्रह करता है ॥

५६--हितमप्रियमिच्छसि श्रुतं
यदि सन्धत्स्व पुरा न नश्यसि।
अनृतैरथ तुष्यसि प्रियै-
र्जयताज्जीव भवावनीश्वरः ॥

५७--प्रतिपक्षजिदप्यसंशयं
युधि चैद्येन विजेष्यते भवान्।
ग्रसते हि तमोऽपहन्मुहु-
र्ननु राहुाह्वमहर्पतिन्तमः ॥

५८--अचिराज्जितमीनकेतनो
विलसन् वृष्णिगणैर्नमस्कृतः।
क्षितिपः क्षयितोद्धृतान्धको
हरलीलां स विडम्बयिष्यति ॥

५९--निहतोन्मददुष्टकुञ्जरा-
द्दधतो भूरियशः क्रमार्जितम्।
न विभेति रणे हरेरपि
क्षितिपः का गणनास्य वृष्णिषु ॥

६०--न तदद्भुतमस्य यन्मुखं
युधि पश्यन्ति भियात्र शत्रवः।
द्रवतान्ननु पृष्ठमीक्षते
वदनं सोऽपि न जातु विद्विषाम् ॥

५६-यदि सुनागया अप्रिय हित चाहते होतो राजासे सन्धिकरो पहले विनाशको नहीं प्राप्त होगे यदि मिथ्या प्रियोंसे प्रसन्न होते होतो जीतो राजा हो ॥

५७-शत्रुओं के जीतने वाले भी तुमनिस्संदेह युद्धमें शिशुपाल से जीते जाओगे क्योंकि संपूर्ण अन्धकार के दूर करनेवाले सूर्य्य को राहुनाम अन्धकार वारंवार निगलता है ॥

५८--वह राजा शिशुपाल शीघ्र प्रद्युम्न अथवा कामदेव का जीतने वाला वृष्णिवंशियोंके समूहों से नमस्कार कियागया होकर दीप्तियुक्त अथवा बैलपर चढ़ाहुआ गणोंसे नमस्कार किया गया उद्धत अन्धक लोगोंका अथवा अन्धकासुरका नाश करनेवाला शिवजीकी लीलाकी तुल्यता करेगा ॥

५९--राजा शिशुपाल उन्मत्त हाथी कुवलयापीड़के मारने वाले क्रमसे प्राप्तबड़े यशको धारण करते हुए हरि (कृष्ण और सिंह) से भी युद्धमें नहीं डरताहै (तो) वृष्णियों (यदुवंशी और भेड़ों) की क्या गणनाहै ॥

६०-युद्ध में शत्रुभयसे इस शिशुपालके मुखको जोनहीं देखतेहैं यह आश्चर्य्य नहीं है वह शिशुपालभी भागेहुए शत्रुओं की पीठ देखता है मुखकदापि नहीं देखता है ॥

६१—प्रतनूल्लसिताचिरद्युतः
शरदम्प्राप्य विखण्डितायुधाः।
दधतेऽरिभिरस्य तुल्यतां
यदि नासारभृतः पयोभृतः॥

६२—मलिनं रणरेणुभिर्मुहु-
र्द्विषताङ्क्षालितमंगनाश्रुभिः।
नृपमौलिमरीचिवर्णकैः
खलु यस्याङ्घ्रियुगं विलिप्यते॥

६३—समराय निकामकर्कशं
क्षणमाकृष्टमुपैति यस्य च।
धनुषा सममाशु विद्विषां
कुलमाशंकितभंगमानतिम्॥

६४—तुहिनांशुममुं सुहृज्जनाः
कलयन्त्युष्णकरं विरोधिनः।
कृतिभिः कृतदृष्टिविभ्रमाः
स्रजमेके भुजगं यथापरे॥

६५—दधतोऽसुलभक्षयागमा-
स्तनुमेकान्तरताममानुषीम्।
भुवि सम्प्रति न प्रतिष्ठिताः
सदृशा यस्य सुरैररातयः॥

६१--शरदृतु को प्राप्तहोकर इन्द्रके धनुषसे रहित अथवा बाण
फेंकने वाले को प्राप्त होकर खंडित शस्त्र वाले थोड़ी च-
मकती हुई बिजली वाले अथवा थोड़ी चमकती हुई नहीं
स्थिरकान्तिवाले मेघ यदि वृष्टियुक्त नहों तो इसके शत्रुओं
की तुल्यताको धारण करते हैं ॥

६२--वारंवार रणकी धूलियों से मलिन शत्रुओं की स्त्रियोंके आं-
सुओंसे धोयेगये जिस शिशुपाल के दोनों चरण राजालो-
गोंके मुकुटोंकी किरणरूपी लेपोंसे लेपयुक्त किये जातेहैं ॥

६३--अत्यन्त कठिन युद्धके लिये बुलायागया क्षणभर परा-
जयकी शंकाकरनेवाला जिसराजाशिशुपालका शत्रुओंका
समूह शीघ्र धनुषके साथ नम्रताको प्राप्त होताहै ॥

६४--इस शिशुपालको मित्रलोग चन्द्रमा मानते हैं शत्रुलोग
सूर्य्य मानतेहैं जैसे चतुर पुरुषोंसे कियेगये दृष्टिके विपर्य्य-
यवाले कुछ पुरुष माला जानतेहैं (और) अन्यपुरुष सर्प
मानते हैं ॥

६५--दुर्लभ गृहकी प्राप्तिवाले और दुर्लभ नाशके योगवाले ए-
कान्तमें स्थितनहीं मनुष्यकेसे शरीरके धारण करनेवाले
अथवा नित्यभोगवाले दिव्य शरीरके धारण करनेवाले पृ-
थ्वीमें कहीं नहीं प्रतिष्ठित अथवा पृथ्वीके नहीं स्पर्श करने
वाले जिसके शत्रु देवताओंके तुल्यहैं ॥

६६—अतिविस्मयनीयकर्मणो
नृपतेर्यस्य विरोधि किञ्चन।
यदमुक्तनयो नयत्यसा-
वहितानां कुलमक्षयङ्क्षयम्॥
६७—चलितोर्ध्वकबन्धसम्पदो
मकरव्यूहनिरुद्धवर्त्मनः।
अतरत् स्वभुजौजसा मुहु-
र्महतः संगरसागरानसौ॥
६८—न चिकीर्षति यः स्मयोद्धतो
नृपतिस्तच्चरणोपगं शिरः।
चरणं कुरुते गतस्मयः
स्वमसावेव तदीयमूर्द्धनि॥
६९—स्वभुजद्वयकेवलायुध-
श्चतुरंगामपहाय वाहिनीम्।
बहुशः सह शक्रदन्तिना
स चतुर्दन्तमगच्छदाहवम्॥
७०—अविचालितचारुचक्रयो-
रनुरागादुपगूढयोः श्रिया।
युवयोरिदमेव भिद्यते
यदुपेन्द्रस्त्वमतीन्द्र एव सः॥

६६--अत्यन्त विस्मयके योग्य कर्मवाले जिस शिशुपालका कोई शत्रु नहीं है जिस कारणसे नीतिके मार्गका नहीं त्यागने वाला यह शिशुपाल नहीं विनाशको प्राप्त शत्रुओंके समूहोंको विनाश करताहै ॥

६७--यह शिशुपाल उठीहुई कबन्धोंकी सम्पत्तिवाले मकरव्यूह से मार्गके रोकनेवाले बड़े युद्धरूपी समुद्रों के वारंवार अपनी भुजाओंके बलसे पारगयाहै ॥

६८--गर्व्वसे उद्धत जो राजा अपने शिरको उस शिशुपाल के चरणोंमें प्राप्त करनेकी नहीं इच्छाकरता है उस राजा के शिरपर गर्वरहित यह राजा शिशुपालही अपना चरण रखताहै ॥

६९--चार अंगवाली सेनाको छोड़कर केवल दोनों भुजारूपी आयुधवाला होकर इन्द्रके हाथी ऐरावतके साथ चारदन्त वाले युद्धमें शिशुपालके विना कौन समर्थ है ॥

७०--नहीं चलायेगये सुन्दर सुदर्शनचक्र और राज्यवाले अनुरागके कारण लक्ष्मी और सम्पत्तिसे आलिंगन कियेगये तुम दोनोंमें यही भेदहै कि तुम उपेंद्र (इन्द्रकेछोटेभाई) हो और वह इन्द्रका जीतनेवाला है ॥

७१—भृतभूतिरहीनभोगभा-
ग्विजितानेकपुरोऽपि विद्विपाम् ।
रुचिमिन्दुदले करोत्यजः
परिपूर्णेन्दुरुचिर्महीपतिः ॥

७२—नयति द्रुतमुद्धतिश्रितः
प्रसभम्भंगमभंगुरोदयः ।
गमयत्यवनीतलस्फुर-
द्भुजशाखम्भृशमन्यमुन्नतिम् ॥
७३—अधिगम्य च अन्ध्रमन्तरा
जनयन् मण्डलभेदमन्यतः ।
खनति क्षतसंहति क्षणा-
दपि मूलानि महान्ति कस्यचित् ॥
७४—घनपत्रभृतोऽनुगामिन-
स्तरसाकृष्य करोति कांश्चन ।
दृढमप्यपरम्प्रतिष्ठित-
म्प्रतिकूलन्नितरान्निरस्यति ॥
७५—इति पूर इवोदकस्य यः
सरिताम्प्रावृषिजस्तटद्रुमैः ।
क्वचनापि महानखण्डित-
प्रसरः क्रीडति भूभृतांगणैः ॥
कलापकम् ।

७१--सम्पत्ति और भस्मके धारण करनेवाले शेषजीके शरीरके धारण करनेवाले और अधिक भोगके अनुभव करनेवाले शत्रुओंके अनेक पुरोंके जीतनेवालेभी शिवजी चन्द्रमा के खण्डमें अभिलाष करते हैं राजा शिशुपाल तो परिपूर्ण चन्द्रमाके समान शोभाको धारण करनेवाला है ॥

७२—स्थिर वृद्धिवाला जो शिशुपाल उद्धत राजालोगोंको शीघ्र बलात्कारपूर्वक भंग करता है पृथ्वीतल में दीप्तिमान् शाखाओंके समान भुजावाले (नमस्कार करनेवाले)अन्य राजाको अत्यन्त उन्नति को प्राप्तकरताहै ॥

७३—मण्डल में अवकाश को प्राप्त होकर अन्यत्र मन्त्रियादिकों में भेद को उत्पन्न करता भया एक मतपने को नाशकरके क्षणभर में किसीराजा के बड़े पुरुषों को गिराता है ॥

७४—घने वाहनवाले कुछ राजालोगों को खैंचकर अनुचर बनाताहै दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठा को प्राप्तभी प्रतिकूल अन्यराजा को अत्यन्त विनाश करता है ॥

७५--इसप्रकार कहीं भी नहीं खंडितहुई प्रवृत्तिवाला वर्षाकाल में उत्पन्नहुए नदी सम्बन्धी जलों के प्रवाहके समान जो राजाशिशुपाल किनारे के वृक्षोंके समान राजालोगों से क्रीडा करताहै ॥

७६—अलघूपलपंक्तिशालिनीः
परितोरुद्धानिरन्तराम्वराः।
अधिरूढनितम्वभूमयो
न विमुञ्चन्ति चिराय मेखलाः॥

७७—कटकानि भजन्ति चारुभि-
र्नवमुक्ताफलभूषणैर्भुजैः।
नियतन्दधते च चित्रकै-
रवियोगम्पृथुगण्डशैलतः॥

७८—इति यस्य ससम्पदः पुरा
यदवापुर्भवनेष्वरिस्त्रियः।
स्फुटमेव समस्तमापदा
तदिदानीमवनीध्रमूर्द्धसु॥

विशेषकम्।

७९—महतःकुकुरान्यकद्रुमा-
नतिमात्रन्दववद्दहन्नपि।
अतिचित्रमिदम्महीपति-
र्यदकृष्णाम्पृथिवीं करिष्यति॥

८०—परितः प्रमिताक्षरापि सर्वं
विषयम्प्राप्तवती गता प्रतिष्ठाम्।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित्
परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा॥

७६–उन्नत नितम्बवाली और पर्वतों के मध्यदेशमें प्राप्त बड़ी मणि और शिलाओं की पंक्तियों से शोभित घने और निकट प्राप्तवस्त्र और आकाशकेआच्छादन करनेवाली स्त्रियां मेखलाओं को और पर्वत के मध्यदेशों को बहुतकालतक नहीं छोड़तीथीं ॥

७७–नवीन मोतियों के भूषणवाली भुजाओं से कंकणोंको धारण करती हैं अथवा थोड़े कालसे त्यागकियेगये थोड़ेआभूषणवाली भुजाओं से उपलक्षित पर्वतों के मध्यदेशों में रहती हैं बड़ेकपोलों में पत्ररचनाओं से संपर्कको (योग को) धारणकरती हैं अथवा बड़ी शिलाओं में मृगोंकेसाथ वास करती हैं ॥

७८–जिस शिशुपाल के शत्रुओं की स्त्रियां पहले सम्पत्तियुक्त होकर गृहों में जो अनुभव करतीथीं वह संपूर्ण इससमय आपत्ति से पर्वतों के शिखरों पर इस प्रकार स्पष्टतापूर्वक प्राप्त हुईं ॥

७९–वह राजाशिशुपाल बड़ेकुकुरवंशी और अंधकवंशी वृक्षोंको अत्यन्त दावानल के समान भस्म करताहुआभी पृथ्वीको अकृष्ण (श्रीकृष्णरहित और नहीं श्याम) जो करैगा यह बड़ा आश्चर्य्य है ॥

८०–अत्यन्त स्वल्प अक्षरवाली भी संपूर्ण विषयमें प्राप्त प्रतिष्ठा से युक्त बड़े अर्थवाली जिस राजाकी आज्ञा परिभाषा(एक प्रकारकी व्याकरण की संज्ञा) के समान कहीं भी नहीं रुकती है ॥

८१--यामूढवानूढवराहमूर्त्ति-
मुहूर्त्तमादौ पुरुषः पुराणः।
तेनोह्यते साम्प्रतमक्षतैव
क्षतारिणा सम्यगसौ पुनर्भूः॥

८२--भूयांसः क्वचिदपि कामसस्खलन्त-
स्तुङ्गत्वन्दधति च यद्यपि द्वयेऽपि।
कल्लोलाः सलिलनिधेरवाप्य पारं
शीर्य्यन्ते न गुणमहोर्मयस्तदीयाः॥

८३--लोकालोकव्याहतं घर्मरश्मेः
शालीनं वा धाम नालम्प्रसर्त्तुम्।
लोकस्याग्रे पश्यतो धृष्टमाशु
क्रामत्युच्चैर्भूभृतोयस्य तेजः॥

८४--विच्छित्तिर्नवचन्दनेन वपुषो भिन्नोऽधरोलक्तकै-
रच्छाच्छे पतितांजने च नयने श्रोण्यो लसन्मेखलाः।
प्राप्तो मौक्तिकहारसुन्नतकुचाभोगस्तदीयद्विषा-
मित्थन्नित्यविभूषणा युवतयः सम्पत्सु चापत्स्वपि॥

८१–जिस पृथ्वी को वराह की मूर्त्ति धारण करनेवाले विष्णु ने क्षणमात्र धारण कियाथा संपूर्ण शत्रुओं के मारनेवाले उस राजाशिशुपाल से फिर उपद्रवरहित यह पृथ्वी अब-तक अच्छे प्रकारसे धारण कीजाती है ॥

८२–समुद्रकी लहरें और गुणों की लहरें दोनों भी बहुतकहीं नहीं रुकती हुई यद्यपि उन्नतता को धारण करती हैं त-थापि समुद्र की तरंगें किनारे पर प्राप्तहोकर नष्टहोजाती हैं उसराजा शिशुपाल के गुणों की लहरें तो पारजाकर भी नहीं नाशको प्राप्त होती हैं ॥

८३–लोकालोक पर्व्वत से रुकाहुआ मानों लज्जासे युक्त सूर्य्य का तेज देखते हुए लोगों के सन्मुख उन्नत पर्व्वतों को और राजालोगों को व्याप्त करने को नहीं समर्थ होता है जिस राजाशिशुपाल का तेज तो देखतेहुए लोगोंके स-न्मुख प्रगल्भ होकर उन्नतराजालोगों को और पर्व्वतों को व्याप्त करताहै ॥

८४–नवीन चन्दन से शरीरका वियोग अथवा चन्दनसे शरीर का लेपन लाक्षाके रागसेरहित ओष्ठ अथवा लाक्षाके राग से युक्त नेत्र गिरेहुए अंजनवाले स्वच्छ अथवा निर्मल नेत्र अंजनसे युक्त नितम्ब शोभायमान मेखलाओं से रहित अथवा नितम्ब शोभायमान मेखला से युक्त उन्नतकुचों का विस्तार मोतियों से रहित अथवा उन्नत कुचों का वि-स्तार मोतियों के हारों से युक्त इस प्रकार उस शिशुपाल के शत्रुओं की स्त्रियां सम्पत्तियों में और आपत्तियोंमें नित्य आभूषणवाली हैं ॥

सप्तदशः सर्गः ॥

सेनावर्णन पुरस्सरं यदुवंशक्षोभवर्णनम् ॥

१—इतीरिते वचसि वचस्विनाऽमुना
युगक्षयक्षुभितमरुद्गरीयसि ।
प्रचुक्षुभे सपदि तदम्बुराशिना
समम्महाप्रलयसमुद्यतं सदः ॥

२—सरागया स्रुतघनघर्मतोयया
कराहतिध्वनितपृथूरुपीठया ।
मुहुर्मुहुर्दशनविखण्डितोष्ठया
रुषा नृपाः प्रियतमयेव भेजिरे ॥

३—अलक्ष्यत क्षणदलितांगदे गदे
करोदरप्रहितनिजांसधामनि ।
समुल्लसच्छकलितपाटलोपलैः
स्फुलिंगवान् स्फुटमिव कोपपावकः ॥

४—अवज्ञया तदहसदुच्चकैर्बलः
समुल्लसद्दशनमयूखमण्डलः ।
रुषारुणीकृतमपि तेन तत्क्षण-
न्निजं वपुः पुनरनयन्निजां रुचिम् ॥

५—यदुत्पतत्पृथुतरहारमण्डलं
व्यवर्त्तत द्रुतमभिदूतमुल्मुकः ।
बृहच्छिलातलकठिनांसघट्टित-
न्ततोऽभवद्भ्रमितमिवाखिलं सदः ॥

सत्रहवां सर्ग ॥

सेनाके वर्णन समेत यदुवंशके क्षोभका वर्णन ॥

१--इसप्रकार इस धीर दूतसे कल्पान्तमें क्षोभको प्राप्त वायु के समान गंभीर वचन कहनेपर कल्पान्तके समुद्रके समान श्रीकृष्णजीकी सभा सबके संहारमें उद्यत होकर शीघ्रक्षोभको प्राप्तहुई ॥

२--राजालोग अनुरागयुक्त बहेहुए बहुत स्वेदवाले हाथके मारनेसे शब्दायमान बड़े पीठके समान जंघावाले वारंवार दाँतोंसे काटेगये ओष्ठवाले स्त्रीके समान क्रोधसे सेवा कियेगये ॥

३--हाथसे कन्धेके खुजलानेवाले क्षणभरमें टूटेहुए बाजूवाले गदनाम श्रीकृष्णजी के छोटेभाई में दीप्तिमान् टूटीहुई पद्मराग मणियोंसे कोपाग्नि स्पष्टमानों अग्निकणोंसे युक्त लक्षित होतीथी ॥

४--बलभद्रने सबओरसे फैलतीहुई दाँतोंकी किरणों के समूहवाले होकर अनादरसे जो उच्चस्वर से हास्यकिया उसी हास्यके द्वारा क्रोधसे रक्तवर्णभी अपना शरीर फिर उसी क्षणमें अपनी कान्ति (श्वेतता) को प्राप्तकिया ॥

५--उल्मुकनाम राजा बड़े मोतियों के हारके उछलनेपर जो शीघ्र दूतके अभिमुखहुआ इस्से संपूर्ण सभाबड़े शिलाकी समान कठिन कन्धेसे मारीगई मानों भ्रमितहुई ॥

६—प्रकुप्यतः श्वसनसमीरणाहति-
स्फुटोष्माभिस्तनुवसनान्तमारुतैः ।
युधाजितः कृतपरितूर्णवीजनं
म्पुनस्तरां वदनसरोजमस्विदत् ॥

७—प्रजापतिक्रतुनिधनार्थमुत्थितं
व्यतर्कयज्ज्वरमिव रौद्रमुद्धतम् ।
समुद्यतं सपदि वधाय विद्विषा-
मतिक्रुधन्निषधमनौपधञ्जनः ॥

८—परस्परम्परिकुपितस्य पिंषतः
क्षतोर्मिकाकनकपरागपङ्किलम् ।
करद्वयं सपदि सुधन्वनो निजै-
रनारतस्रुतिभिरधाव्यताम्बुभिः ॥

९—निरायतामनलशिखोज्ज्वलां ज्वल-
न्नखप्रभाकृतपरिवेषसम्पदम् ।
अविभ्रमद्भ्रमदनलोल्मुकाकृति-
म्प्रदेशिनीञ्जगदिव दग्धुमाहुकिः ॥

१०—दुरीक्षतामभजत मन्मथस्तथा
यथा पुरा परिचितदाहधाष्टर्यया ।
ध्रुवम्पुनः सशरममुन्तृतीयया
हरोऽपि न व्यसंहत वीक्षितुन्दृशा ॥

६–युधाजित् नाम राजाका कमलरूपी मुख श्वास के पवन लगने से प्रकट ऊष्मावाले सूक्ष्म वस्त्रोंके अंचलों के पवनोंसे बहुत शीघ्र व्यजन (पंखाढुलाना) कियागया भी फिर अत्यन्त स्वेदयुक्त हुआ ॥

७–लोगोंने शीघ्र शत्रुओं के मारनेके लिये उद्यत तीव्र अत्यन्त क्रोधयुक्त प्रतीकार (बदला) रहित निषधनाम राजाको दक्ष प्रजापतिके यज्ञके ध्वंसकरने के लिये उठेहुए शिवजी के ज्वरके समान तर्कनाकी ॥

८–अत्यन्त क्रोधयुक्त परस्पर दोनों हाथोंको रगड़तेहुए शीघ्र राजा सुधन्वाके पिसीहुई अंगूठियोंके सुवर्णकी रजसे पंकयुक्त दोनोंहाथ अपने निरन्तर टपकनेवाले स्वेदके जलसे धोयेगये ॥

९--आहुकि नाम राजाने फैलाईहुई अग्निकी शिखाकेसमान उज्ज्वल दीप्तिमान् नखोंकी प्रभाओं से कीगई परिधिकी शोभावाली घुमायेगये अग्निके उल्मुक (लुकाठ) के समान आकृतिवाली प्रदेशिनी (अंगूठेकेपासकीउंगली) मानों जगत्के भस्म करने को घुमाई ॥

१०--प्रद्युम्न इसप्रकार दुर्दर्शनत्व (दुःखसे देखनेकी योग्यता) को प्राप्तहुए जिसप्रकार शिवजी भी पूर्व्व जन्ममें अभ्यास कियेगये दाहरूपी साहसवाली दृष्टिसे वाणयुक्त इनप्रद्युम्न को निश्चय फिर देखनेको समर्थ नहीं हुए ॥

११–विचिन्तयन्नुपनतमाहवं रसा-
दुरः स्फुरत्तनुरुहमग्रपाणिना ।
परामृशत् कठिनकठोरकामिनी-
कुचस्थलप्रमुषितचन्दनम्पृथुः ॥

१२–विलंघितस्थितिमभिवीक्ष्य रूक्षया
रिपोर्गिरा गुरुमपि गान्दिनीसुतम् ।
जनैस्तदा युगपरिवर्त्तवायुभि-
र्विवर्त्तिता गिरिपतयः प्रतीयिरे ॥

१३–विवर्त्तयन् मदकलुषीकृते दृशौ
कराहतक्षितिकृतभैरवारवः ।
क्रुधा दधत्तनुमतिलोहिनीमभूत्
प्रसेनजिद्गज इव गैरिकारुणः ॥

१४–सकुंकुमैरविरलमम्बुबिन्दुभि-
र्गवेषणः परिणतदाडिमारुणैः ।
स मत्सरस्फुटितवपुर्विनिःसृतै-
र्बभौ चिरन्निचित इवासृजां लवैः ॥

१५–ससम्भ्रमञ्चरणतलाभिताडन-
स्फुटन्महीविवरवितीर्णवर्त्मभिः ।
रवेः करैरनुचिततापितोरग-
म्प्रकाशतां शिनिरनयद्रसातलम् ॥

ाम राजाने प्राप्तहुए युद्धको विचारतेहुए कठोर स्त्रीके स्थलसे हरेगये चन्दनवाले पुलकयुक्त हृदयको हाथके भाग से स्पर्श किया ॥

नी कठोर शत्रुकी वाणीसे मर्य्यादाके उल्लंघन करने- । अक्रूरको देखकर लोगोंने उस समय कल्पान्त के ों से पर्व्वतोंको स्थानसे चलेहुए माना ॥

और मद्यसे व्याकुल दृष्टिवाले नेत्रोंको घूर्णित करता हाथ और सूंड़से मारीगई पृथ्वीमें भयंकर शब्दकर- ला क्रोधसे अत्यन्त रक्तवर्णवाले शरीरको धारणकरता प्रसेनजित् नाम राजा गेरूसे लाल हाथीके समान ात हुआ ॥

ाविषणनाम राजाके शरयुक्त पके अनारके दानोंके स- रक्तवर्णवाले स्वेदके बिन्दुओंके द्वारा क्रोधसे फटेहुए ः से निकलेहुए रुधिरके बिन्दुओंसे मानों व्याप्त अत्य- ोभितहुआ ॥

ने वेगपूर्व्वक चरणतलके मारने से फटतीहुई पृथ्वी छ्द्रोंसे दियेगये मार्गवाली सूर्य्यकी किरणों से अनुचित ापको प्राप्त कियेगये सर्पवाले रसातलको प्रकटकिया ॥

१६–प्रतिक्षणं विधुवति शारणे शिरः
शिखिद्युतः कनककिरीटरश्मयः।
अशंकितं युधमधुना विशन्त्वमी
क्षमापतीनिति निरराजयन्निव ॥

१७–दधौ चलत्पृथुरसनं विवक्षया
विदारितं विततबृहद्भुजालतः।
विदूरथः प्रतिभयमास्यकन्दर-
ञ्चलत्फणाधरमिव कोटरन्तरुः ॥
१८–समाकुले सदसि तथापि विक्रिया-
म्मनोऽगमन्न मुरभिदः परोदितैः।
घनाम्बुभिर्बहुलितनिम्नगाजलै-
र्जलन्नहि व्रजति विकारमम्बुधेः ॥
१९–परानमी यदपवदन्त आत्मनः
स्तवन्ति च स्थितिरसतामसाविति।
निनाय नो विकृतिमविस्मितः स्मित-
म्मुखं शरच्छशधरमुग्धमुद्धवः ॥
२०–निराकृते यदुभिरिति प्रकोपिभिः
स्पशे शनैर्गतवति तत्र विद्विषाम्।
मुरद्विपः स्वनितभयानकानकं
बलं क्षणादथ समनह्यताजये ॥

१६–शारणनाम राजा के वारंवार शिरके कँपाने पर अग्निके समान द्युतिवाली सुवर्णके किरीटकी किरणोंने यह राजा लोग इसीसमय निस्सन्देह युद्धमें प्रवेशकरैं इसकारण राजालोगों को मानों नीराजन (राजालोगोंके चलने के समय आरती करना) किया ॥

१७-विस्तारयुक्त बड़ी लताओंके समान भुजावाले विदूरथनाम राजाने कुछ कहनेकी इच्छासे फैलाये गये चंचल बड़ी जिह्वावाले भयंकर कन्दराके तुल्यमुखको चञ्चल सर्पवाले कोटरको वृक्षके समान धारणकिया ॥

१८--शत्रुके वचनोंसे सभाके इसप्रकार क्षोभयुक्त होने परभी श्रीकृष्णजीका मननहीं विकारको प्राप्तहुआ क्योंकि नदियोंके जलोंके बढ़ानेवाले मेघोंके जलोंसे समुद्रका जल नहीं विकारको प्राप्त होताहै ॥

१९--यह दुष्ट लोग जो अन्यपुरुषोंकी निन्दा करतेहैं और जो अपनी स्तुतिकरते हैं यह दुष्टोंकी प्रकृतिहै इस कारण से विस्मयरहित उद्धवने मन्द मुसकान समेत शरदकालके चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख विकारको नहीं प्राप्तकिया ॥

२०--उससभामें इसप्रकार क्रोधयुक्त यदुवंशियोंसे धिक्कारकिये गये शत्रुओंके दूतके धीरे धीरे जानेपर पीछे ध्वनिसे भयंकर नगाड़ेवाली श्रीकृष्णजीकी सेनाक्षणभरमें युद्धकेलिये तैयारहुई ॥

२१—मुहुः प्रतिस्खलितपरायुधा युधि
स्थवीयसीश्चलनितम्बनिर्भराः।
अदंशयन्नरहितशौर्यदंशना-
स्तनूरयन्नय इति वृष्णिभूभृतः॥

२२—दुरुद्वहाः क्षणमपरैस्तदन्तरे
रणश्रवादुपचयमाशु बिभ्रति।
महीभुजाम्महिमभृतान्न सम्ममु-
र्मुदोऽन्तरा वपुषि बहिश्च कञ्चुकाः॥

२३—सकल्पनं द्विरदगणं वरूथिन-
स्तुरंगिणो जयनयुजश्च वाजिनः।
त्वरायुजः स्वयमपि कुर्वतो नृपाः
पुनःपुनस्तदधिकृतानतत्वरन्॥

२४—युधे परैः सह दृढवद्धकक्षया
कलक्कणन्मधुपकुलोपगीतया।
अदीयत द्विपघटया सवारिभिः
करोदरैः स्वयमथ दानमक्षयम्॥

२५—सुमेखलाः सिततरदन्तचारवः
समुल्लसत्तनुपरिधानसम्पदः।
रणैषिणाम्पुलकभृतोऽधिकन्धरं
ललम्बिरे सदसि लताः प्रिया इव॥

२१–यदुवंशी राजालोगों ने वारंवार युद्धमें शत्रुओंके शस्त्रों के तोड़नेवाले अधिक स्थूल पर्व्वतके मध्यदेश के समानघने नहीं व्यक्त पराक्रमरूपी कवचवाले शरीरोंको यह (कवच धारणकरना) न्याय है इसकारण से कवचयुक्त किया (भय से नहीं) ॥

२२–ऐश्वर्य्ययुक्त राजालोगों के युद्धके सुनने से शीघ्रवृद्धिको प्राप्त शरीरमें अन्योंसे क्षणभर भी नहीं धारण करने के योग्य आनन्द भीतर नहीं समाया और बाहर कवच नहीं समाये ॥

२३–हाथियोंके समूहको कल्पना (सजावट) से युक्त रथोंको घोड़ोंसे युक्त घोड़ोंको जीनसे युक्त आपही शीघ्रतासे करते हुए भी उन हाथी आदिकों में नियुक्त पुरुषोंको राजालोग वारंवार शीघ्रतायुक्त करते थे ॥

२४–इसके उपरान्त शत्रुओंके साथ युद्ध के लिये दृढ़तासे कमर बाँधनेवाले मनोहरशब्द करतेहुए भ्रमरोंके समूह से गान कियेगये हाथियों के समूहने जलयुक्त सूंड़ों के अग्रभागोंसे अपरिमित मद डाला ॥

२५–सुन्दर बन्धनके सूत्रवाली अथवा सुन्दर मेखलावाली अधिक श्वेत दन्तों से सुन्दर शोभायमान सूक्ष्म मियान अथवा वस्त्रकी सम्पत्तिवाली छायासे युक्त अथवा रोमांचकी धारण करनेवाली स्त्रियोंके समान सुन्दर खड्गोंकी पंक्तियां रणकी इच्छाकरनेवाले पुरुषों के कण्ठोंमें लम्बायमान हुईं ॥

२६—मनोहरैः प्रकृतिमनोरमाकृति-
भयप्रदैः समितिषु भीमदर्शनः ।
सदैवतैः सततमथानपायिभि-
र्निजांगवन्मुरजिदसेव्यतायुधैः ॥

२७—अवारितङ्कृतमुभयेषु भूरिशः
क्षमाभृतामथ कटकान्तरेष्वपि ।
मुहुर्युधि क्षतसुरशत्रुशोणित-
प्लुतप्रधिं रथमधिरोहति स्म सः ॥

२८—उपेत्य च स्वनगुरुपक्षमारुत-
न्दिवास्त्विपा कपिशितदूरदिङ्मुखः ।
प्रकम्पितस्थिरतरयष्टितत्क्षण-
म्पतत्पतिः पदमधिकेतनन्दधौ ॥

२९—गभीरताविजितमृदंगनादया
स्वनश्रिया हतरिपुहंसहर्षया ।
प्रमोदयन्नथ मुखरान् कलापिनः
प्रतिष्ठते नवघनवद्रथः स्म सः ॥

३०—निरन्तरस्थगितदिगन्तरैन्ततः
समुच्चलद्बलमवलोकयञ्जनः ।
विकौतुकः प्रकृतमहाप्लवेऽभव-
द्विशृंखलम्प्रचलितसिन्धुवारिणि ॥

३१—बवृंहिरे गजपतयो महानकाः
प्रदध्वनुर्जयतुरगा जिहेषिरे ।
असम्भवद्गिरिवरगह्वरैरभूत्
तदा रवैर्दलित इव स्व आश्रयः ॥

२६–स्वभाव से सुन्दर मूर्त्तिवाले युद्धोंमें भयंकर दर्शनवाले श्री कृष्णजी स्वभावसे मनोहर युद्धोंमें भयके देनेवाले देवताओं से युक्त निरन्तर विघ्नोंसे रहित शस्त्रोंके द्वारा मानों अपने अंगों से सेवा कियेगये ॥

२७–इसके उपरान्त वह श्रीकृष्णजी दोनों पर्व्वत और राजा लोगोंके मध्यभागों में और डेरोंमें वारंवार निवारण के विनाजानेवाले वारंवार युद्धमें मारेगये दैत्यों के रुधिरों से सिंचीहुई नेमिवाले रथपर चढ़े ॥

२८–गरुड़जीने कान्तिसे दूरतक दिशाओंके मुखके पीतवर्णकरने वाले शब्दसे बड़े पक्षोंकी वायुके होनेपर स्वर्गसे आयकर उस क्षण में निश्चल स्कन्धोंके कंपमान होनेपर पताका में पद रक्खा ॥

२९–इसके उपरान्त वह रथ नवीन मेघके समान गम्भीरतासे मृदंगके शब्दकी जीतनेवाली हंसोंके समान शत्रुओंके हर्ष के नाश करनेवाली ध्वनिकी सम्पत्ति से कूजतेहुए मोरों को आनन्दित करता हुआ चला ॥

३०–इसके उपरान्त छिद्रके विना दिशाओं के मध्यकी आच्छादन करनेवाली चलतीहुई उससेनाको देखतेहुए लोग बड़े प्रवाहके प्रारम्भ करनेवाले रुकावके विना क्षोभको प्राप्त समुद्रके जलमें कौतुकरहित हुए ॥

३१–हाथियोंने चिंहाड़ा बड़े नगाड़े बजे जीतनेवाले घोड़े हिन हिनाये उससमय पर्व्वतोंकी कन्दराओं में नहीं समातेहुए शब्दोंने अपना आश्रय (आकाश) मानों विदीर्ण किया ॥

३२--अनारतं रसति जयाय दुन्दुभौ
मधुद्विपः फलदलघुप्रतिस्वनैः।
विनिष्पतन् मृगपतिभिर्गुहामुखै-
र्गताः परामुदमहसन्निवाद्रयः॥

३३--जडीकृतश्रवणपथे दिवौकसां
चमूरवे विशति सुराद्रिकन्दराः।
अनर्थकैरजनि विदग्धकामिनी-
रतान्तरक्वणितविलासकौशलैः॥

३४--अरातिभिर्युधि सहयुध्वनो हता-
ञ्जिघृक्षवः श्रुतरणतूर्यनिस्वनाः।
अकुर्वत प्रथमसमागमोचित-
ञ्चिरोज्झितं सुरगणिकाः प्रसाधनम्॥

३५--प्रचोदिताः परिचितयन्तृकर्मभि-
र्निषादिभिर्विदितयतांकुशक्रियैः।
गजाः सकृत्करतललोलनालिका
हता मुहुः प्रणदितघण्टमाययुः॥

३६--सविक्रमक्रमणचलैरितस्ततः
प्रकीर्णकैः क्षिपत इव क्षितेरजः।
व्यरंसिपुर्न खलु जनस्य दृष्टय-
स्तुरंगमादभिनवभाण्डभारिणः॥

३७--चलांगुलीकिशलयमुद्धतैः करै-
रनृत्यत स्फुटकृतकर्णतालया।
मदोदकद्रवकटभित्तिसंगिभिः
कलस्वरम्मधुपगणैरगीयत॥

३२- श्रीकृष्णजी के नगाड़ेके जयके लिये निरन्तर बजनेपर भरे हुए बड़ेभाई शब्दवाले निकलेहुए सिंहवाले गुहारूपी मुखोंसे पर्व्वत बड़े आनन्दको प्राप्त होकर मानों हँसे ॥

३३--देवतालोगोंके श्रवण मार्गके बधिर करनेवाले सेनाके शब्द के सुमेरु पर्व्वतकी कन्दराओंमें प्रवेशकरनेपर चतुर स्त्रियों की रतिके मध्यमें शब्दकी सम्पत्तियोंकी चतुरता व्यर्थ होगयी ॥

३४--साथ युद्ध करनेवाले शत्रुओंसे युद्धमें मारेगये पुरुषों के ग्रहण करने की इच्छावाली अप्सराओंने रणसम्बन्धी नगाड़ोंके शब्दोंकी सुननेवाली होकर बहुतकालसे त्याग किया गया प्रथम समागमके योग्य शृंगार किया ॥

३५--महावतकी कृत्यके जाननेवाले पादकर्म और अंकुश कर्म के जाननेवाले महावतों से प्रेरणा कियेगये हाथी एकही वार हाथोंसे चंचल नाड़ियोंसे ताड़न कियेगये वारंवार घंटेके शब्दायमान होनेपर आये ॥

३६--पैरके रखनेके साथ चलनेसे चंचल चामरों से पृथ्वी की धूलिको इधरउधर मानों हटातेहुए नवीन आभूषणके धारणकरनेवाले घोड़ोंसे लोगोंकी दृष्टियां नहीं हटीं ॥

३७--स्पष्टकर्णताल (कानफटफटाना) करनेवाले हाथियों के समूहने चंचल अंगुलीरूपी पल्लव होनेपर उद्धत (ऊंचे) करोंसे नृत्य किया(और)मदके जलसे आर्द्र कपोलस्थलों में लगेहुए भ्रमरोंके समूहोंने मधुरस्वर से गान किया ॥

३८--असिच्यत प्रशमितपांशुभिर्मही
मदाम्बुभिर्धृतनवपूर्णकुम्भया ।
अवाद्यत श्रवण सुखं समुन्नम-
त्पयोधरध्वनिगुरुतूर्य्यमाननैः ॥

३९--उदासिरे पवनाविधूतवासस-
स्ततस्ततो गगनलिहश्च केतवः ।
यतः पुरः प्रतिरिपु शार्ङ्गिणः स्वयं
व्यधीयत द्विपघटयेति मंगलम् ॥

विशेषकम्

४०--न शून्यतामगमदसौ निवेशभूः
प्रभूततान्दधति वले चलत्यपि ।
पयस्यभिद्रवति भुवं युगावधौ
सरित्पतिर्नहि समुपैति रिक्तताम् ॥

४१--यियासितामथ मधुभिद्विवस्वता
जनोजरन्महिषविषाणधूसराम् ।
पुरः पतत्परबलरेणुमालिनी-
मलक्षयद्दिशमभिधूमितामिव ॥

४२--मनस्विनामुदितगुरुप्रतिश्रुतिः
श्रुतस्तथा न निजमृदंगनिस्वनः ।
यथा पुरः समरसमुद्यतद्विष-
द्वलानकध्वनिरुदकर्पयन्मनः ॥

३८--नवीन पूर्णकुंभ (मस्तक) के धारणकरनेवाले हाथियों के समूहने धूलिके शान्तकरनेवाले मदजलोंसे पृथ्वीको सींचा मुखोंसे कानों में सुख देनेवाला उन्नत मेघों के गर्जने के समान गम्भीर नगाड़ा बजा ॥

३९--वायुसे कंपित वस्त्रवाली मेघोंकी स्पर्श करनेवाली पताका इधर उधरसे उठीं इसप्रकार हाथियों के समूह ने शत्रुओं के प्रति जातेहुए श्रीकृष्णजी के सन्मुख आपही मंगल किया ॥

४०--बहुताई की धारण करनेवाली सेनाके चलनेपर भी यह सेनाके रहनेका स्थान शून्यताको नहीं प्राप्तहुआ क्योंकि युगके अन्तमें पानीके पृथ्वीमें फैलनेपर समुद्र शून्यताको नहीं प्राप्त होता है ॥

४१--इसके उपरान्त श्रीकृष्णरूपी सूर्यसे जानेको इच्छाकीगई आतीहुई शत्रुकी सेनाकी रेणु धारण करनेवाली वृद्ध भैंसे के सींगके समान धूसर वर्णवाली सन्मुखकी दिशा सबओर से उत्पन्नहुए धुएंवाली मानों लोगोंने देखी ॥

४२--उत्पन्नहुए बड़े प्रतिशब्दवाले सुनेगये अपने नगाड़ेके शब्द ने उसप्रकार वीरोंका मननहीं प्रसन्न किया जिस प्रकार सन्मुख समरमें उद्यत शत्रुओंकी सेनामें नगाड़ों के शब्दों ने मन प्रसन्न किया ॥

४३--यथा यथा पटहरवः समीपता-
मुपागमत्स हरिवराग्रतःसरः ।
तथा तथा ह्वपितवपुर्मुदाकुला
द्विपाञ्चमूरजनि जनीव चेतसा ॥
४४--प्रसारिणी सपदि नभस्तले ततः
समीरणभ्रमितपरागरूषिता ।
व्यभाव्यत प्रलयजकालिकाकृति-
र्विदूरतः प्रतिबलकेतनावलिः ॥
४५--क्षणेन च प्रतिमुखतिग्मदीधिति-
प्रतिप्रभास्फुरदसिदुःखदर्शना ।
भयंकरा भृशमपि दर्शनीयतां
ययावसावसुरचमूश्च भूभृताम् ॥
४६--पयोमुचामभिपततान्दिविद्रुतं
विपर्य्ययः परित इवातपस्य सः ।
समक्रमः समविषमेष्वथ क्षणात्
क्षमातलम्बलजलराशिरानशे ॥
४७--ममौ पुरः क्षणमिव पश्यतो महन्
तनूदरस्थितभुवनत्रयस्य तत् ।
विशालतान्दधाति नितान्तमायते
बलन्द्विपाम्मधुमथनस्य चक्षुषि ॥
४८--भृशंस्विदः पुलकविकाशिमूर्त्तयो
रसाधिके मनसि निविष्टसाहसाः ।
मुखे युधः सपदि रतेरिवाभवन्
ससम्भ्रमा क्षितिपचमूवधूगणाः ॥

४३--जामाताके तुल्य श्रीकृष्णजी के सन्मुख चलनेवाला वह नगाड़ेका शब्द जिस २ प्रकारसे निकटताको प्राप्तहुआ उसी २ प्रकारसे बधूके समान शत्रुओंकी सेना चित्तसे आनन्दयुक्त और रोमांचयुक्त अंगवाली हुई ॥

४४--इसके उपरान्त शीघ्र आकाशमें व्याप्त वायुके द्वारा उड़ीहुई रजसे रूखी प्रलयमें उत्पन्न कालिका के समान आकृति वाली शत्रुओं की सेनामें पताकाओंकी पंक्ति दूरसे लक्षितहुई ॥

४५--सन्मुख सूर्य्यके प्रतिविम्बोंमें पड़ीहुई प्रभाओंसे देदीप्यमान खड्गोंसे दुष्कर दर्शनवाली भी यह दैत्योंकी सेना क्षणभर में राजालोगोंको अत्यन्त भयकारी होनेपरभी दर्शनीयता (मनोहरता और देखनेकी योग्यता) को प्राप्तहुई ॥

४६--इसके उपरान्त नीचे और ऊँचे में तुल्य गतिवाला सेनारूपी समुद्र आकाशमें दौड़तेहुए मेघोंकी छायाके समान सबओरसे क्षणभरमें पृथ्वीतलमें व्याप्त हुआ ॥

४७--सन्मुख क्षणभर देखतेहुए छोटे उदर में स्थित तीनों भुवनवाले मधुदैत्य के मारनेवाले श्रीकृष्णजी के विशालता से युक्त अत्यन्त दीर्घ नेत्रमें बड़ी शत्रुओंकी सेना समाई ॥

४८--बधुओं के समान राजालोगों की सेनाओं के समूह रतिके आरम्भ के समान युद्धके आरम्भमें शीघ्र अधिक स्वेदयुक्त रोमांचसे प्रकाशित मूर्त्तिवाले रस (वीर और शृंगार) से अधिक निर्भर मनमें साहसयुक्त हुए ॥

४९--ध्वजांशुकैर्ध्रुवमनुकूलमारुत-
प्रसारितैः प्रसभकृतोपहूतयः ।
यदूनभि द्रुततरमुद्यतायुधाः
क्रुधापरं रयमरयः प्रपेदिरे ॥

५०--हरेरपि प्रति परकीयवाहिनी-
रधिस्यदम्प्रववृतिरे चमूचराः ।
विलम्बितुन्न खलु सहा मनस्विनो
विधित्सतः कलहमवेक्ष्य विद्विषः ॥

५१--उपाहितैर्वपुषि निवातवर्म्मभिः
स्फुरन्मणिप्रसृतमरीचिसूचिभिः ।
निरन्तरन्नरपतयो रणाजिरे
रराजिरे शरनिकराचिता इव ॥

५२--अथोच्चकैर्जरठकपोतकन्धरा-
तनूरुहप्रकरविपाण्डुरद्युति ।
बलैश्चलच्चरणविधूतमुच्चरद्
घनावलीरुदचरत क्षमारजः ॥

५३--विषंगिभिर्भृशमितरेतरं क्वचित्
तुरंगमैरुपरि निरुद्धनिर्गमाः ।
चलाचलैरनुपदमाहताः खुरै-
र्विबभ्रमुश्चिरमथ एव धूलयः ॥

४९--शत्रुलोग प्रतिकूल वायुसे फहलायेगये भुजाओंके वस्त्रोंसे मानों बलात्कार पूर्व्वक बुलायेगये यदुवंशियों के प्रति अत्यन्त शीघ्र उद्यत आयुधवाले होकर क्रोधसे अधिक शीघ्रता युक्त हुए ॥

५०--श्रीकृष्णजी के भी सेनाके लोग शत्रुओंकी सेनाओं के प्रति अधिक वेगयुक्त होकर प्रवृत्तहुए क्योंकि धीर लोग युद्धकरने की इच्छा करतेहुए शत्रुओंको देखकर विलम्ब करने को नहीं समर्थ होते हैं ॥

५१--रणभूमिमें राजालोग शरीरमें धारण कियेहुए देदीप्यमान मणियोंसे निकलीहुई किरणरूपी सूचीवाले छिद्ररहित कवचों के द्वारा निरन्तर बाणोंके समूहोंसे मानों व्याप्त शोभित होतेथे ॥

५२--इसके उपरान्त वृद्ध कपोतकी ग्रीवाके रोमों के समूहके समान धूसर (पीत और उज्ज्वल) कान्तिवाली सेनासे चंचल चरणोंके द्वारा उठाईगई उड़तीहुई पृथ्वीकी धूलिने मेघोंकी पंक्तियों को उल्लंघन किया ॥

५३--चलतेहुए खुरोंसे पद पदमें उठाई गई परस्पर लगेहुए घोड़ोंसे रुकेहुए ऊपरके गमनवाली धूलियां कहीं वहुतकालतक नीचेही भ्रमणको प्राप्तहुईं ॥

५४--गरीयसः प्रचुरमुखस्य रागिणो
रजोऽभवद्व्यवहितसत्वमुत्कटम्।
सिसृक्षतः सरसिजजन्मनो जगत्
बलस्य तु क्षयमपनेतुमिच्छतः॥

५५--पुरा शरक्षतिजनितानि संयुगे
नयन्ति नः प्रसभमसृञ्जिपंकताम्॥
इति ध्रुवं व्यलघिपुरात्तभीतयः
खमुच्चकैरनलसखस्य केतवः॥

५६--क्वचिल्लसद्घननिकुरम्बकर्बुरः
क्वचिद्धिरण्मयकणपुञ्जपिञ्जरः।
क्वचिच्छरच्छशधरखण्डपाण्डुरः
खुरक्षतक्षितितलरेणुरुद्ययौ॥

५७--महीयसाम्महति दिगन्तदन्तिना-
मनीकजे रजसि मुखानुषङ्गिणि।
विसारितामजिहत कोकिलावली-
मलीमसा जलदमदाम्बुराजयः॥

५८--शिरोरुहैरलिकुलकोमलैरमी
मुधा मृधे मृषत युवान एव मा।
बलोद्धतन्धवलितमूर्द्धजानिति
ध्रुवञ्जनाञ्जरत इवाकरोद्रजः॥

५४--अधिक पूजा करने के योग्य अथवा बहुतबड़ी, चारमुखवाले अथवा बड़े प्रवाहवाली-रक्तवर्णवाले अथवा रणमें अनुराग वाली, संसारके उत्पन्नकरने की इच्छा करतेहुए ब्रह्माका, रज (रजोगुण और धूलि) उत्कटहुआ सेनाके तो संसार के नाशकरनेकी इच्छा करनेवाली होनेपर रजअधिकहुई ॥

५५--युद्धमें बाणोंके लगनेसे उत्पन्न हुए रुधिर हमको हठसेपंकताको पहले प्राप्त करेंगे इस प्रकार मानों विचार करके भय युक्त वायुकी पताकायें (धूलियां) उन्नत आकाश में चढ़गईं ॥

५६--कहीं शोभायमान मेघोंके समूहके समान चित्रवर्ण वाली कहीं सुवर्णके कणोंके समूह के समान पीत वर्णवाली-कहीं चन्द्रमाके खण्डके समान पाण्डुवर्ण वाली खुरोंसेखुदे हुए पृथ्वीतलकी धूलिउठी ॥

५७--बड़ी सेना सम्बन्धी धूलिके बड़े दिगन्तरूपी हाथियों के अग्रभाग रूपी मुखोंमें लगने पर कोकिलाओंकी पंक्ति के समान मलिन मेघरूपी मद जलोंकी पंक्तियां विस्तारको प्राप्तहुईं ॥

५८--यह युवा पुरुष भ्रमरोंके समान सुन्दर केशोंसे व्यर्थ युद्धमें न मरैं इसी कारणसे सेनामें उठीहुई धूलिने उज्ज्वलकिये गये केश वाले पुरुषोंको वृद्धोंके समान मानोंकिया ॥

५९–सुसंहतैर्दधदपि धाम नीयते
तिरस्कृतिं वहुभिरसंशयम्परैः ।
यतः क्षितेरवयवसम्पदोऽणव-
स्त्विषान्निधेरपि वपुरावरीषत ॥

६०–द्रुतद्रवद्रथचरणक्षतक्षमा-
तलोल्लसद्वहुलरजोऽवगुण्ठितम् ।
युगक्षयक्षणनिरवग्रहे जगत्
पयोनिधेर्जल इव मग्नमावभौ ॥

६१–समुल्लसद्दिनकरवक्त्रकान्तयो
रजस्वलाः परिमलिताम्वरश्रियः ।
दिगंगनाः क्षणमविलोकनक्षमाः
शरीरिणाम्परिहरणीयतां ययुः ॥

६२–निरीक्षितुं वियति समेत्य कौतुकात्
पराक्रमं समरमुखे महीभृताम् ।
रजस्ततावनिमिषलोचनोत्पल-
व्यथाकृति त्रिदशगणैः पलाय्यत ॥

६३–विषंगिणि प्रतिपदमापिवत्यपो
हताचिरद्युतिनि समीरलक्ष्मणि ।
शनैः शनैरुपचितपंकभारिकाः
पयोमुचः प्रययुरपेतवृष्टयः ॥

६४–नभोनदीव्यतिकरधौतमूर्त्तिभि-
र्वियद्गतैरनधिगतानि लेभिरे ।
चलच्चमूतुरगखुराहतोत्पत-
न्महीरजःस्नपनसुखानि दिग्गजैः ॥

५९--तेजका धारण करने वालाभी अन्य अच्छे प्रकारसे मिले हुए बहुतोंसे तिरस्कार किया जाताहै यहनिश्चयहै जिस कारण से सूक्ष्मपृथ्वीकी धूलिकी सम्पत्तियोंने सूर्य्यकाभी मंडल आच्छादित करलिया ॥

६०--शीघ्रदौड़ते हुए रथोंके पहियोंसे खुदे हुए पृथ्वीतलसे उठी हुई घनी धूलिसे आच्छादित संसार प्रलयके समय प्रतिबन्ध [रोक] रहित समुद्रके जलमें डूबाहुआ मानों शोभित हुआ ॥

६१--शोभायमान सूर्य्यरूपी मुखकी कान्तिवाली रजस्वला अथवा धूलिसे भरी हुई सब ओरसे मैले वस्त्र अथवा आकाशकी शोभावाली देखनेके अयोग्य अंगनारूपी दिशाएं क्षणभर मनुष्योंकी अगम्यता कोप्राप्त हुईं ॥

६२--देवतालोगोंके समूह युद्धके आरम्भमें राजालोगोंकेपराक्रम केदेखने केलिये आकाशमें कौतुकसे आयकर धूलिकेसमूह के निमेष रहित नेत्ररूपी कमलोंके दुःख देनेवाले होनेपर चले गये ॥

६३--लगीहुई बिजलीकी मिटाने वाली धूलिके क्षण २ में जलोंके खैंचने पर वृष्टि रहित मेघ बढ़े हुए पंकके भारवाले होकर धीरे २ प्राप्तहुए ॥

६४--आकाशगंगाके मझाने से धोये हुए शरीर वाले आकाश में प्राप्त दिग्गजोंने नहींअनुभव किये गये चंचल सेनाकेघोड़ों के खुरोंसे मारीगई उड़ती हुई पृथ्वीकी धूलिसे स्नान के सुखप्राप्त किये ॥

६५--गजव्रजाक्रमणभरावनम्रया
रसातलं यदखिलमानशे भुवा।
नभस्तलं बहुलतरेण रेणुना
ततोऽगमत्त्रिजगदिवैकतां स्फुटम्॥

६६--समस्थलीकृतविवरेण पूरिता
महीभृतास्खलरजसा महागुहाः।
रहस्त्रपाविधुरवधूरतार्थिनां
नभःसदामुपकरणीयतां ययुः॥

६७--गते मुखच्छदपटसादृशीन्दशः
पथस्तिरोदधति घने रजस्यपि।
मदानिलैरधिमधुचूतगन्धिभि-
र्द्विपा द्विपानभिययुरेव रंहसा॥

६८--मदाम्भसा परिगलितेन सप्तधा
गजाञ्जनः शमितरजश्चयानधः।
उपर्यवस्थितघनपांशुमण्डला-
नलोकयत्ततपटमण्डपानिव॥

६९--अन्यूनोन्नतयोऽतिमात्रपृथवः पृथ्वीधरश्रीभृत-
स्तन्वन्तः कनकावलीभिरुपमां सौदामिनीदामभिः।
वर्षन्तः शममानयन्नुपलसत्शृंगारलेखायुधाः
काले कालियकायकालवपुषः पांशून् गजाम्भोमुचः॥

इति श्रीमाघकृते शिशुपालवधे महाकाव्ये यदुवंशक्षोभणोनाम
सप्तदशः सर्गः॥ १७॥

६५–जिसकारण से हाथियोंके पैर रखनेके भारसे नम्रपृथ्वी से संपूर्ण रसातल व्याप्त कियागया और जिसकारणसे आकाश घनीधूलिसे व्याप्तहुआ इसकारण से तीनोंलोक एकता (भूलोकता) को मानों प्राप्तहुए॥

६६–छिद्रों के समस्थल करनेवाली सेनाकी धूलिसे भरीहुई पर्व्वतों की बड़ी गुहाएं एकान्त में लज्जासे आश्चर्य्य को प्राप्तबधुओंकी रतिके चाहनेवाले देवतालोगोंके उपकारकपने को प्राप्त हुईं॥

६७–मुखकेआच्छादन करनेवाले वस्त्रकी तुल्यताको प्राप्तघनी धूलिके दृष्टिके मार्गके रोकनेवाली होनेपरभी अधिकमकरन्दवाले आमके समान सुगन्धिसे युक्त मदके पवनों से हाथी हाथियोंके प्रति वेगसे चले॥

६८–सातप्रकारसे बहेहुए मदजलसे नीचेधूलिके समूहकेशान्त करनेवाले ऊपर स्थितघनी धूलिके समूहवाले हाथियोंको लोगोंने ऊपर विस्तारकीगई कनातवालोंको मानोंदेखा॥

६९–बहुत उन्नत अत्यन्त मोटे पर्व्वतों की शोभावाले सुवर्ण की पंक्तियों से बिजलीरूपी लताओं की तुल्यता के धारण करनेवाले शोभायमान शृंगाररूपी इन्द्र के धनुषवालेकालीनागके शरीरकेसमान श्यामशरीरवाले मेघरूपीहाथियों ने समयपर मदजल के छोड़ने वाले होकर धूलियों को शान्त किया॥

इति श्रीमाघकृतमहाकाव्यशिशुपालबधस्य भाषानुवादे यदुवंशक्षोभणो नामसप्तदशः सर्गः॥ १७॥

अष्टादशः सर्गः ।

अनेकधा श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसेनयोर्युद्धवर्णनम् ॥

१--सञ्जग्माते तावपायानपेक्षौ
सेनाम्भोधी धीरनादौ रयेण ।
पक्षच्छेदात्पूर्वमेकत्र देशे
वाञ्छन्तौ वा विन्ध्यसह्यौ निलेतुम् ॥

२--पत्तिः पत्तिं वाहमेयाय वाजी
नागन्नागः स्यन्दनस्थो रथस्थम् ।
इत्थं सेना वल्लभस्येव रागा-
दंगेनांगम्प्रत्यनीकस्य भेजे ॥

३--रथ्याघोषैर्बृंहणैर्वारणाना-
मैक्यंगच्छन्वाजिनां ह्रेपया च ।
व्योमव्यापी सन्ततन्दुन्दुभीना-
मव्यक्तोऽभूदीशितेव प्रणादः ॥

४--रोषावेशाद्गच्छतां प्रत्यमित्रं
दूरोत्क्षिप्तस्थूलबाहुध्वजानाम् ।
दीर्घास्तिर्य्यग्वैजयन्तीसदृश्यः
पादातानां भ्रेजिरे खड्गलेखाः ॥

अठारहवां सर्ग ॥

नानाप्रकारसे श्रीकृष्ण औरशिशुपालकीसेनाओंके युद्धकावर्णन॥

१--भागनेकी नहीं इच्छाकरते भये गंभीर शब्दवाले सेनारूपी समुद्र पक्ष काटनेसे पूर्व एकदेश में रहने की इच्छाकरते भये सह्यपर्व्वत और बिन्ध्यपर्व्वत के समानमिले ॥

२--पैदल पैदलकोप्राप्तहुआ घोड़ा घोड़ेको प्राप्तहुआ हाथी हाथी को प्राप्तहुआ रथपरचढ़ाहुआ रथपर चढ़ेहुए को प्राप्तहुआ इस प्रकार सेनाराग (युद्धकाराग और रतिकाराग) पूर्व्वक अंग (पैदलआदिक और करचरणादिक) से प्रियकेसमान दूसरी सेनाके अंग (पैदलादिक और करचरणादिक) को प्राप्त हुई ॥

३--निरन्तर व्योमव्यापी (आकाशका स्पर्शकरनेवाला और सर्वव्यापी) युद्धके नगाड़ोंका बड़ाशब्द रथके समूहों के शब्दोंसे हाथियोंकी चिंहाड़ोंसे घोड़ोंके हिनहिनाटसे एकता को प्राप्तहोताहुआ ईश्वरकेसमान अव्यक्त (अप्रकट)हुआ ॥

४--क्रोधके आवेश से शत्रुओं के प्रति दौड़तेहुए दूरसे उठाई हुई स्थूल पताकाओं के दण्डके समान भुजावाले पैदल चलनेवालोंकी तिरछी दीर्घ रेखाओंकेसमान खड्गपताका-ओंके सदृशहोकर शोभितहुए ॥

५.--वद्धावद्धा धौरितेन प्रयाता-
मश्वीयानामुच्चकैरुच्चलन्तः।
रौक्मा रेजुः स्थासका मूर्त्तिभाजो
दर्पस्येव व्याप्तदेहस्य शेपाः॥
६--सान्द्रत्वक्कास्तल्पलाश्लिष्टकक्षा
आंगीं शोभामाप्नुवन्तश्चतुर्थीम्।
कल्पस्यान्ते मारुतेनोपनुन्ना-
श्चेलुश्चण्डं गण्डशैला इवेभाः॥

७--संक्रीड़न्ती तेजिताश्वस्य रागा-
दुद्यम्यारामग्रकायोत्थितस्य।
रंहोभाजामक्षधूः स्यन्दनानां
हाहाकारम्प्राजितुः प्रत्यनन्दत्॥
८--कुर्वाणानां साम्परायान्तराय-
म्भूरेणूनाम्मृत्युना मार्जनाय।
सम्मार्जन्यो न्यूनमुद्धूयमाना
भान्तिस्मोच्चैः केतनानाम्पताकाः॥
९--उद्यन्नादन्धन्विभिर्निष्ठुराणि
स्थूलान्युच्चैर्मण्डलत्वन्दधन्ति।
आस्फाल्यन्ते कार्मुकाणि स्म कामं
हस्त्यारोहैः कुञ्जराणां शिरांसि॥

५—धौरितनाम गति विशेषसे चलतेहुए घोड़ोंके समूहके उछलती हुई बध्री (चमड़ेकी डोरी) में बंधेहुए सुवर्णके स्थासक, (आभूषण) शरीरमें व्याप्तमूर्तिको धारण किये हुए अहंकार के शेष (वाकी) के समान शोभितहुए ॥

६--घनी त्वचावाले पीठकी रीढ़ में लगीहुई कमर बाँधने की रस्सीवाले चौथी शरीरसम्बन्धी शोभा (एकसौवीसवर्ष की अवस्थावाले हाथियोंकी दशदशवर्षकी बारहअवस्था होती हैं उनमें से चौथी अवस्था शरीरके शोभाकी होती है) को प्राप्त हाथी प्रलयकी वायुसे प्रेरणा कियेगये बड़ी शिलाओं के समान तीव्रतासे चले ॥

७-शब्दायमान वेगयुक्त रथों की धुरी के अग्रभाग ने रागसे चाबुकको उठाकर घोड़ोंको उत्साहयुक्त करने वालेउठेहुए ऊपर के शरीर वाले सारथी के हाहाकार को मानो अनुमोदन किया ॥

८—उन्नत पताकाओंके दण्डोंकी पताका युद्धके विघ्नकोकरती हुई पृथ्वीकी धूलियोंके बुहारनेके लिये मृत्युसे कँपाई गई बुहारियां मानों शोभित हुई ॥

९—धनुष धारियोंने कठोर स्थूल उन्नत मण्डलके धारण करने वाले धनुष,शब्दके उत्पन्न होनेपर अच्छे प्रकारसे चढ़ाये (और) महावतोंने हाथियों के शिर सहलाये ॥

१०--घण्टानादो निस्वनो डिण्डिमानां
ग्रैवेयाणामारवो बृंहितानि ।
आमेत्येवम्प्रत्यवोचन् गजाना-
मुत्साहार्थं वाचमाधोरणस्य ॥
११--यातैश्चातुर्विध्यमस्त्रादिभेदा-
द्व्यासंगैः सौष्ठवाल्लाघवाच्च ।
शिक्षाशक्तिं प्राहरन्दर्शयन्तो
मुक्तामुक्तैरायुधैरायुधीयाः ॥

१२--रोपावेशादाभिमुख्येन काचित्
पाणिग्राहं रंहसैवोपयातौ ।
हित्वा हेतीर्मल्लवन्मुष्टिघातं
घ्नन्तौ बाहूबाहवि व्यासृजेताम् ॥
१३--शुद्धाः संगन्न क्वचित्प्राप्तवन्तो
दूरान्मुक्ताः शीघ्रतान्दर्शयन्तः ।
अन्तःसेनं विद्विषामाविशन्तो
युक्तञ्चक्रुः सायका वाजितायाः ॥
१४--आक्रम्याजेरग्रिमस्कन्धमुच्चै-
रास्थायाथो वीतशङ्कं शिरश्च ।
हेलालोला वर्त्म गत्वातिमर्त्य-
न्यामारोहन्मानभाजः सुखेन ॥

१०--घंटेका शब्द डिरिडमोंका शब्द गलेकी जंजीरियोंका शब्द और चिंहाड़ें (यहसब) हाथियोंके उत्साहके लिये महावतके वचनको मानों अनुकूल है (ठीक है) यह कहते भये ॥

११--शस्त्रसे जीविका करने वाले योद्धा लोगोंने अभ्यासकीचतुरताको दिखाते हुओंने अस्त्रादिक भेद से चार प्रकार को प्राप्त तीक्ष्णतासे और शीघ्रतासे नहीं रोकेगये छोड़े गये (बाणादिक) और नहीं छोड़ेगये (खड्गादिक) शस्त्रों से प्रहारकिये ॥

१२--कोईदो योद्धा लोग क्रोधके आवेशसे सन्मुख वेग पूर्व्वक प्राप्तहुए हाथको पकड़ कर शस्त्रोंको छोड़कर मल्लोंके समान घूंसोंसे मार कर लड़ते हुए बाहु युद्धमें प्रवृत्तहुए ॥

१३--शुद्धकहीं प्रतिबन्धको नहीं प्राप्तहुए दूरसे छोड़ेगये शीघ्रता को दिखाते हुए शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश करते हुएबाणोंने वाजिता (घोड़ापन और पंखधारीपन) के अनुरूप कर्म किया ॥

१४--अभिमान युक्त (पुरुष) उन्नत युद्धके अग्रभागमें प्राप्तहोकर और निस्सन्देह सन्मुख जायकर युद्धकी क्रीड़ाओं में उत्सुक होकर दिव्य युद्धको करके सुख पूर्व्वक स्वर्गमेंप्राप्त हुए ॥

१५–रोदोरन्ध्रं व्यश्नुवानानि लोलै-
रंगस्यान्तर्मार्पितैः स्थावराणि ।
केचिद्गुर्वीमेत्य संयन्निषद्यां
क्रीणन्ति स्म प्राणमूल्यैर्यशांसि ॥

१६–वीर्योत्साहश्लाघि कृत्वावदानं
संग्रामाग्रे मानिनां लज्जितानाम् ।
अज्ञातानां शत्रुभिर्युक्तमुच्चैः
श्रीमन्नाम श्रावयन्ति स्म नग्नाः ॥

१७–आधावन्तः सन्मुखन्धारितानां-
मन्यैरन्ये तीक्ष्णकौक्षेयकाणाम् ।
वक्षःपीठैरात्सरोरात्मनैव
क्रोधेनान्धाः प्राविशन् पुष्कराणि ॥

१८–मिश्रीभूते तत्र सैन्यद्वयेऽपि
प्रायेणायं व्यक्तमासीद्विशेषः ।
आत्मीयास्ते ये पराञ्चः पुरस्ता-
दभ्यावर्ती सन्मुखो यः परोऽसौ ॥

१९–सद्वंशत्वादंगसंसंगिनीत्वं
नीत्वा कामंगौरवेणाववद्धा ।
नीता हस्तं वञ्चयित्वा परेण
द्रोहञ्चक्रे कस्यचित् स्वा कृपाणी ॥

२०–नीते भेदन्धौतधाराभिघाता-
दम्भोदाभे शात्रवेणापरस्य
सासृग्राजिस्तीक्ष्णमार्गस्य मार्गो
विद्युद्दीप्तः कंकटे लक्ष्यते स्म ॥

१५--कुछवीरलोगोंने बड़े युद्धरूपी बाजारमें प्राप्तहोकर देहके भीतर समाये हुए चंचल प्राणरूपी मूल्यों से पृथ्वी और आकाश के मध्य के व्याप्त करने वाले स्थिर यश मोल लिये॥

१६--युद्धके अग्रभागमें वीर्य और उत्साह से प्रशंसाकियेगये बड़े कर्मको करके संकोचयुक्त शत्रुओंसे नहींजानेगये मानयुक्त शूरों के श्रीयुक्तनाम, बन्दी लोगोंने उच्चस्वर से सुनाये यह युक्त है॥

१७--क्रोधसे अन्ध अन्ययोद्धा लोग, सन्मुख दौड़तेहुए अन्यों से धारणकी गये तीक्ष्णखड्गोंके मुखों में पटरेरूपी हृदयों से मुष्टिपर्य्यन्त आपही प्रविष्ट हुए॥

१८--वहाँ दोनों सेनाओं के मिलनेपर प्रायः यह अन्तर प्रकट रहा कि सन्मुख जोपराङ्मुखथे वहअपनेथे औरजोसन्मुख से लौटतेहुए सन्मुखथे वह शत्रुथे॥

१९--शुद्ध आकारसे अंग में संगवाली कीगई अत्यन्त आदर से बाँधीगई किसीकी अपनी खड्गरूपी लताने अन्यसे छल पूर्व्वक हाथमें लीगई होकर द्रोहकिया॥

२०--शत्रुसे मारेगये खड्गके लगनेसे विदीर्ण मेघके तुल्य श्याम अन्यके कवचमें रुधिरकीरेखासेयुक्त खड्गकाप्रहार बिजली के समान उज्ज्वल लक्षितहुआ॥

२१—आमूलान्तात् सायकेनायतेन
स्यूते बाहौ मण्डूकश्लिष्टमुष्टेः।
प्राप्यासह्यां वेदनामस्तधैर्य्या-
दप्यभ्रश्यच्चर्म नान्यस्य पाणेः॥

२२—भित्त्वाघोणामायसेनाधिवक्षः
स्थूरीपृष्ठो गार्ध्रपक्षेण विद्धः।
शिक्षाहेतोर्गाढरज्ज्वेव बद्धो
हर्त्तुं वक्त्रन्नाशकद् दुर्मुखोऽपि॥

२३—कुन्तेनोच्चैः सादिना हन्तुमिष्टा-
न्नाजानेयो दन्तिनस्त्रस्यति स्म।
कर्मोदारङ्कीर्त्तये कर्त्तुकामान्
किं वा जात्याः स्वामिनो ह्रेपयन्ति॥

२४—जेतुञ्जैत्राः शेकिरे नारिसैन्यैः
पश्यन्तोऽधो लोकमस्तेषुजालाः।
नागारूढा पार्वतानि श्रयन्तो
दुर्गाणीव त्रासहीनास्त्रसानि॥

२५—विष्वद्रीचीर्विक्षिपन् सैन्यवीची-
राजावन्तः क्वापि दूरम्प्रयातम्।
बभ्रामैको बन्धुमिष्टन्दिदृक्षुः
सिन्धौ वाद्यो मण्डलंगोर्वराहः॥

२६—यावच्चक्रे नाञ्जनम्बोधनाय
व्युत्थानज्ञो हस्तिचारी मदस्य।
सेनास्वानाद्दन्तिनामात्मनैव
स्थूलास्तावत्प्रावहन्दानकुल्याः॥

२१--अन्ययोद्धा की बाहुके दीर्घ वाणसे मूलपर्य्यन्त छिदने पर असह्यवेदना को प्राप्तहोकर धैर्य्य रहित मुष्टिमें लगी हुई मुष्टिवाले हाथ से ढाल नहीं गिरी ॥

२२--लोहमय गृध्रपक्षवाले बाण से नासिकाको छेदकरके हृदय में मारागया नवीन सवारी लियागया घोड़ा शिक्षाके लिये कठिन रस्सीसे मानों बंधाहुआ नहीं सिखायेगये मुखवाला भी मुख हटाने को नहीं समर्थहुआ ॥

२३--श्रेष्ठ जातिका घोड़ा सवारसे उन्नत भाले के द्वारा मारने को इच्छा कियेगये हाथी से नहीं डरा क्योंकि कुलीनलोग यशकेलिये उत्तमकर्म करनेकी इच्छाकरनेवाले स्वामियों को लज्जित नहीं कराते हैं ॥

२४--जीतनेवाले लोकको नीचे देखनेवाले बाणोंके समूहके फेंकनेवाले निर्भय हाथियोंके सवारोंको चलतेहुए पर्व्वत संबंधी किलोंके मानों आश्रयण करनेवालोंको, शत्रुओंकी सेना, जीतनेको नहीं समर्थ हुई ॥

२५--कोई वीर संसारमें व्याप्त लहरों के तुल्य सेनाओंको हटाताहुआ युद्धमें कहीं दूरचलेगये बन्धुके देखनेकी इच्छाकरताहुआ समुद्रमें कहीं डूबेहुए पृथ्वी मंडलके देखनेकी इच्छा करतेहुए वाराहजी के समान युद्धमें घूमा ॥

२६--हाथीके उठानेके जाननेवाले महावतने मदके उत्पन्नकरने के लिये जबतक उद्दीपन (तेजकरानेवाला) कर्मनहीं किया उसके पहलेही सेनाके कलकलके सुननेसे हाथियों के आपही बड़ीमदकी नदियां वहीं ॥

२७—क्रुध्यन् गन्धादन्यनागाय दूरा-
दारोढारन्धूतमूर्द्धावमत्य ।
घोराराबध्वानिताशेषदिक्के
विष्के नागः पर्य्यणंसीत् स्व एव ॥

२८—प्रत्यासन्ने दन्तिनि प्रातिपक्षे
यन्त्रा नागः प्रास्तवक्त्रच्छदोऽपि ।
क्रोधाक्रान्तः क्रूरनिर्दारिताक्षः
प्रेक्षाञ्चक्रे नैव किञ्चिन्मदान्धः ॥

२९—तूर्णं यावन्नापनिन्ये निषादी
वासश्चक्षुर्वारणं वारणस्य ।
तावत्पूगैरन्यनागाधिरूढः
कादम्बानामेकपातैरसीव्यत् ॥

३०—आस्थद्दृष्टेराच्छदञ्चप्रमत्तो
यन्ता यातुः प्रत्यरीभं द्विपस्य ।
मग्नस्योच्चैर्देहभारेण शंको-
रावव्राते वीक्षणे च क्षणेन ॥

३१—यत्नाद्रक्षन् सुस्थितत्वादनाशं
निश्चित्यान्यश्चेतसा भावितेन ।
अन्त्यावस्थाकालयोग्योपयोग-
न्दध्रेऽभीष्टन्नागमापद्धनं वा ॥

३२—अन्योन्येषाम्पुष्करैरामृशन्तो
दानोद्भेदानुच्चकैर्भुग्नवालाः ।
उन्मूर्द्धानः सन्निपत्यापरान्तैः
प्रायुध्यन्त स्पष्टदन्तध्वनीभाः ॥

२७--दूरसे मदकी सुगन्धिको सूंघकर अन्य हाथी के लिये क्रोध करतेहुए हाथीने शिरको हिलाकर महावतको न मानकर घोर शब्दों से सम्पूर्ण दिशाओं के शब्दायमान करनेवाले अपनेही (पुत्र) बीसवर्षके हाथीपर तिरछाप्रहार किया ॥

२८--शत्रुसम्बन्धी हाथी के निकट आनेपर महावत से हटाये गये मुख के वस्त्रवाले भी क्रोधसे भरेहुए क्रूरतापूर्व्वक नेत्रोंके फैलानेवाले भी मदसे अन्धहाथी ने कुछ भी नहीं देखा ॥

२९--महावतने हाथीके नेत्रोंके आच्छादन करनेवाले वस्त्रको जबतक शीघ्र नहीं हटाया तभीतक शत्रुके महावतने इकठ्ठे गिरनेवाले बाणों के समूहोंसे सींदिया ॥

३०--मतवाले होकर महावतने अन्य शत्रुके हाथीके प्रति जाते हुए हाथीकी दृष्टिका आच्छादन हटादिया गड़ेहुए बाणके उन्नत पंखोंसे नेत्र क्षणभरमें ढकगये ॥

३१--अन्यमहावतने विना विचारेहुए चित्तसे अच्छेप्रकार स्थित होनेके कारण नाशको नहीं निश्चयकरके यत्नपूर्व्वक रक्षा करनेवाला होकर नाशके समय योग्य साधनरूप अभीष्ट हाथीको आपत्ति कालके मेघके समान धारण किया ॥

३२--हाथी परस्पर मदके स्थानोंको सूंड़ोंसे सूंघतेहुए उन्नत टेढ़ी पूंछवाले (और) उन्नत मस्तकवाले होकर स्पष्टदांतोंके शब्द होनेपर झुककर पूंछोंसे युद्ध करते भये ॥

३३–द्राघीयांसः संहताः स्थेमभाज-
श्चारूदग्रास्तीक्ष्णतामत्यजन्तः ।
दन्ता दन्तैराहताः सामजाना-
म्भङ्गञ्जग्मु र्न स्वयं सामजाताः ॥

३४–मातंगानान्दन्तसंघट्टजन्मा
हेमच्छेदच्छायचञ्चच्छिखाग्र्यः ।
लग्नोऽप्यग्निश्चामरेषु प्रकाम-
म्माञ्जिष्ठेषु व्यज्यते न स्म सैन्यैः ॥

३५–ओपामासे मत्सरोत्पातवाता-
श्लिष्यद्दन्तक्ष्मारुहांघर्षणोत्थैः ।
योगान्तैर्वा वह्निभिर्वारणाना-
मुच्चैर्मूर्द्धव्योम्नि नक्षत्रमाला ॥

३६–सान्द्राम्भोदश्यामले सामजानां
वृन्दे नीतः शोणितैः शोणिमानम् ।
दन्ताः शोभामापुरम्भोनिधीनां
कन्दोद्भेदा वैद्रुमा वारिणीव ॥

३७–आकम्पाग्रैः केतुभिः सन्निपात-
न्तारोदीर्णग्रैवनादं व्रजन्तः ।
मग्नानङ्गे गाढमन्यद्विपाना-
न्दन्तान्दुःखादुत्खनन्ति स्म नागाः ॥

३८–उत्क्षिप्योच्चैः प्रस्फुरन्तं रदाभ्या-
मीषादन्तः कुञ्जरं शात्रवीयम् ।
शृंगप्रोतप्रावृषेण्याम्बुदस्य
स्पष्टम्प्रापत्साम्यमुर्वीधरस्य ॥

३३--बड़े दीर्घ मिलेहुए स्थिरतायुक्त सुन्दर और उन्नत तीक्ष्णताको नहीं त्याग करतेहुए हाथियोंके दाँत दाँतों से मारे गये होकर भंगहोगये हाथी तो आपही पराजयको नहीं प्राप्त हुए ॥

३४--हाथियोंके दाँतोंकी रगड़से उत्पन्नहुई सुवर्णकी रजके समान वर्णवाली चंचल शिखाओंके अग्रभागोंसे युक्त अग्नि, मंजीठसे रंगीहुई चामरों में लगीहुईभी सेनाके लोगोंने अच्छेप्रकार से नहीं जानी ॥

३५--शत्रुतारूपी उत्पात के वायुसे मिलेहुए वृक्षोंकेसमान दांतों की रगड़से उत्पन्नहुई प्रलयके अन्तकी अग्नियों के समान अग्नियोंसे आकाशके समान उन्नत हाथियोंके मस्तकों में नक्षत्रमाला(मोतियोंकाहारऔरनक्षत्रोंकासमूह) भस्महुई

३६--घने और मेघके समान श्याम हाथियोंके समूहमें रुधिरोंसे अरुणताको प्राप्त दांत समुद्रोंके जल में मूंगेकी जड़के अंकुरोंकी समानशोभाको प्राप्तहुए ॥

३७--कंपमान अग्रभागवाली पताकाओं से रगड़ते हुए हाथियों ने उच्चस्वर से ग्रीवासम्बन्धी आभूषणों के शब्दके उत्पन्न होनेपर अन्य हाथियोंके शरीरमें अत्यन्त प्रविष्टहुए दांत दुःख से खैंचे ॥

३८--हल के दण्डके समान दाँतवाला हाथी फड़फड़ातेहुए शत्रुओंकी सेनाके हाथीको दांतोंसे ऊपर उठाकर शिखर में बैठेहुए वर्षाकालके मेघवाले पर्वतकी तुल्यताको स्पष्ट प्राप्त हुआ ॥

३९—भग्नेऽपीभे स्वे परावर्त्य देहं
योद्धा सार्द्धं व्रीडया मुञ्चतेषून् ।
साकं यन्तुः सम्मदेनानुवन्धी
दूनोऽभीक्ष्णं वारणः प्रत्यरोधि ॥
४०—व्याप्तं लोकैर्दुःखलभ्यापसारं
संरम्भित्वादेत्य धीरो महीयः ।
सेनामध्यं गाहते वारणः स्म
ब्रह्मेव प्रागादिदेवोदरान्तः ॥
४१—भृंगश्रेणी श्यामभासां समूहै-
र्नाराचानां विद्धनीरन्ध्रदेहः ।
निर्भीकत्वादाहवेनाहतेच्छो
हृष्यन् हस्ती हृष्टरोमेव रेजे ॥
४२—आताम्राभा रोषभाजः कटान्ता-
दाशूत्खाते मार्गणे धूर्गतेन ।
निश्च्योतन्ती नागराजस्य जज्ञे
दानस्याहो लोहितस्येव धारा ॥
४३—क्रामन्दन्तौ दन्तिनः साहसिक्या-
दीषादण्डौ मृत्युशय्यातलस्य ।
सैन्यैरन्यस्तत्क्षणादाशशंके
स्वर्गस्योच्चैरर्द्धमार्गाधिरूढः ॥
४४--कुर्वन् ज्योत्स्नाविप्रुषान्तुल्यरूप-
स्तारस्ताराजालसारामिव द्याम् ।
खड्गाघातैर्दारिताद्दन्तिकुम्भा-
दाभाति स्म प्रोच्छलन्मौक्तिकौघः ॥

३९--अपने हाथीके घायलहोनेपर भी अपने शरीरको फेरकर लज्जासे बाणोंके छोड़नेवाले योद्धाने निरन्तर (बाणोंसे) दुःखित हाथीको महावतके हर्षके साथ रोका ॥

४०--किसी हाथीने क्रोधसे निर्भयतापूर्वक आकर बड़े मनुष्यों से भरेहुए दुःखसे भागनेके योग्य सेनाके मध्यमें पहलेआ-दिदेव (विष्णु) के उदरके भीतर ब्रह्माके समान प्रवेश किया ॥

४१--भ्रमरोंकी पंक्तिके समान श्यामवर्णवाले बाणों के समूहों से भिदेहुए छिद्ररहित शरीर वाला युद्धमें नहीं हटीहुई इच्छावाला प्रसन्न हाथी, मानों रोमांचयुक्त शोभितहुआ॥

४२--क्रोधको प्राप्त बड़े हाथीके गंडस्थल से निकलतीहुई मद की धारा (क्रोधसे) रक्तवर्णवाली हुई अथवा सन्मुख प्राप्त महावतसे बाणके उखाड़नेपर रुधिरके समान धारा उत्प-न्नहुई ॥

४३--मृत्युकी शय्यारूपी हलके दण्डके समान हाथीके दांतोंको सहसा दबाताहुआ अन्यहाथी उससमय उन्नतस्वर्ग के आधेमार्ग में मानों प्राप्तसा सेनाके लोगोंसे देखागया ॥

४४--चन्द्रिका (चांदनी) के बिन्दुओं के समानरूपवाला शुद्ध खड्गोंके लगने से फटेहुए हाथियों के मस्तकसे उछलता हुआ मोतियों का समूह आकाशको नक्षत्रों से युक्त मानों करताहुआ शोभित हुआ ॥

४५--दूरोत्क्षिप्तक्षिप्रचक्रेण कृत्त-
स्मत्तो हस्तं हस्तिराजः स्वमेव ।
भीमम्भूमौ लोलमानं सरोपः
पादेनासृक्पंकपेपम्पिपेष ॥

४६--आपस्काराल्लूनगात्रस्य भूमि-
न्निःसाधारं गच्छतोऽवाङ्मुखस्य ।
लव्धायामन्दन्तयोर्युग्ममेव
स्वन्नागस्य प्रापदुत्तम्भनत्वम् ॥

४७--लव्धस्पर्शम्भू व्यथादव्यथेन
स्थित्वा किञ्चिद्दन्तयोरन्तराले ।
ऊर्द्ध्वोर्द्ध्वासिच्छिन्नदन्तप्रवेष्टं
जित्वोत्तस्थे नागमन्येन सद्यः ॥

४८--हस्तेनाग्रे वीतभीतिंगृहीत्वा
कञ्चिद्व्यालः क्षिप्तवानूर्द्ध्वमुच्चैः ।
आसीनानां व्योम्नि तस्यैव हेतो-
र्दिव्यस्त्रीणामर्पयामास नूनम् ॥

४९--कञ्चिद्दूरादायतेन द्रढीयः
प्रासप्रोतस्त्रोतसान्तः क्षतेन ।
हस्ताग्रेण प्राप्तमेवाग्रतोऽभू-
दानैश्वर्यं वारणस्य ग्रहीतुम् ॥

५०--तन्वाः पुंसो नन्दगोपात्मजायाः
कंसेनेव स्फोटितायां गजेन ।
दिव्या मूर्त्तिर्व्योमगैरुत्पतन्ती
वीक्षा मासे विस्मितैश्चण्डिकेव ॥

४५–मतवाले हाथीने दूरसे फेंकेगये वेगयुक्त चक्रसे कटीहुई पृथ्वीमें पड़ीहुई भयंकर अपनीही सूंड़को क्रोधयुक्त होकर चरण के द्वाराकीचहुए रुधिरसे पसिडाला ॥

४६–मूलसे कटीहुई जंघावाले अधोमुख निराधारहोकर पृथ्वीमें गिरतेहुए हाथी के विस्तारको प्राप्त अपने दोनों दांतही आश्रयपनेको प्राप्तहुए ॥

४७–पृथ्वी के छिदनेसे व्यथारहित कोई योद्धा दाँतोंके बीचमें किसीप्रकार स्पर्शकी प्राप्तिपूर्व्वक ठहरकर उठायेहुए खड्ग से कटेहुए दाँतोंके मध्यवाले हाथीको जीतकर शीघ्रउठा ॥

४८–दुष्ट हाथीने सन्मुख भयरहित किसी वीरको सूंड़से पकड़कर ऊपरकीओर ऊंचा उछालदिया उसीके लिये आकाश में स्थित स्वर्गकी स्त्रियोंको मानों समर्पित करदिया ॥

४९–दूरतक विस्तीर्ण भीतर छिदेहुए दृढ़ बरछीसे छिदेहुए नकुए वाली सूंड़से सन्मुखतामें प्राप्तभी किसी वीरके पकड़नेको हाथीकी सामर्थ्य नहीं हुई ॥

५०–कंससे विदीर्ण कीगई नन्दगोपकी कन्याके समान हाथीसे विदीर्ण कियेगये किसी वीरपुरुषके शरीरसे निकलतीहुई चण्डिका के समान दिव्यमूर्त्ति आश्चर्य्ययुक्त आकाशवासियों से देखीगई ॥

५१--आक्रम्यैकामग्रपादेन जंघा-
मन्यामुच्चैराददानः करेण।
सास्थिस्वानन्दारुवद्दारुणात्मा
कञ्चिन्मध्यात्पाटयामास दन्ती॥

५२--शोचित्वाग्रे भृत्ययोर्मृत्युभाजो-
रुर्व्यैः प्रेम्णा नो तथा वल्लभस्य।
पूर्वं कृत्वा नेतरस्य प्रसाद-
म्पश्चात्तापादाप दाहं यथान्तः॥

५३--उत्प्लुत्याराद‌र्द्धचन्द्रेण लूने
वक्त्रेऽन्यस्य क्रोधदष्टोष्ठदन्ते।
सैन्यैः कण्ठच्छेदलीने कबन्धा-
द्भूयो बिभ्ये वल्गतः सासिपाणेः॥

५४--तूर्य्यारावैराहितोत्तालतालै-
र्गायन्तीभिः काहलं काहलाभिः।
नृत्ते चक्षुःशून्यहस्तप्रयोगं
काये कूजन् कम्बुरुच्चैर्जहास॥

५५--प्रत्यावृत्तम्भंगभाजि स्वसैन्ये
तुल्यम्मुक्तैराकिरन्ति स्म कञ्चित्।
एकौघेन स्वर्णपुंखैर्द्विषन्तः
सिद्धा माल्यैः साधुवादैर्द्वयेऽपि॥

५१--दारुण चित्तवाले हाथीने एकजंघाको आगेके पैरसे दबाकर दूसरी जंघाको उन्नत सूंड़से खैंचतेहुएने हड्डियोंकेशब्दपूर्व-क किसी वीरको काष्ठके समान मध्यसे फाड़कर पटकदिया॥

५२--स्वामी सन्मुख मरेहुए दोभृत्योंको शोचकर प्रियभृत्यके प्रेमसे उसप्रकार अन्तःकरण में दाहको नहीं प्राप्तहुआ जिसप्रकार अन्य (अप्रियभृत्य) को पहले (जीवनकेस-मय) अनुग्रहको न करके पीछे पश्चात्तापको प्राप्तहुआ ॥

५३--अर्द्धचन्द्र बाणसे कटेहुए क्रोधसे ओष्ठोंके काटनेवाले दाँतों से युक्त अन्य योद्धाके मुखके कुछदूरसे उछलकर फिरभी कण्ठके कटेहुए स्थानमें स्थितहोनेपर नाचतेहुए खड्गयुक्त हाथवाले कबन्धसे सेनाके लोगडरे ॥

५४--स्पष्ट तालदेनेवाले नगाड़ों के शब्दोंके द्वारा और अत्यन्त शब्दायमान काहलों (वाद्यविशेषों) के द्वारा कबन्धके दृष्टिसे रहित भाव बतानेसे युक्त नृत्यकरनेपर शब्दायमान शंख मानों उच्चस्वरसे हँसा ॥

५५--अपनी सेनाके भंग होनेपर लौटेहुए किसी वीरको एकही समयमें छोड़ेहुए सुवर्णकी पुंखवाले बाणों के द्वारा एक प्रहार से शत्रुओं ने आच्छादन किया आकाशवासियों ने दिव्यमालाओं से आच्छादन किया और दोनों (शत्रु और आकाशवासियों) ने भी साधुसाधु शब्दों से आच्छादन किया ॥

५६—बाणाक्षिप्तारोहशून्यासनाना-
म्प्रक्रान्तानामन्यसैन्यैर्ग्रहीतुम् ।
संरब्धानाम्भ्राम्यतामाजिभूमौ
वारी वारैः सस्मरे वारणानाम् ॥

५७—पौनःपुन्यादस्तगन्धेन मत्तो
मृद्नन् कोपाल्लोकमायोधनोर्व्याम् ।
पादे लग्नामत्र मालामिभेन्द्रः
पाशीकल्पामायतामाचकर्ष ॥

५८—कश्चिन्मूर्च्छामेत्य गाढप्रहारः
सिक्तः शीतैः शीकरैर्वारणस्य ।
उच्छश्वास प्रस्थिता तज्जिघृक्षु-
र्व्यर्थाकूता नाकनारी मुमूर्च्छ ॥

५९—लूनग्रीवात्सायकेनापरस्य
द्यामत्युच्चैराननादुत्पतिष्णोः ।
त्रेसे मुग्धैः सैंहिकेयानुकारा-
द्रौद्राकारादप्सरोवक्त्रचन्द्रैः ॥

६०—वृत्तं युद्धे शूरमाश्लिष्य काचि-
द्रन्तुन्तूर्णम्मेरुकुञ्जञ्जगाम ।
त्यक्त्वा नाग्नौ देहमेति स्म यावत्
पत्नी सद्यस्तद्वियोगासमर्था ॥

६१—त्यक्तप्राणं संयुगे हस्तिनीस्था
वीक्ष्य प्रेम्णा तत्क्षणादुद्गतासुः ।
प्राप्याखण्डन्देवभूयं सतीत्वा-
दाशिश्लेष स्वैव कञ्चित् पुरन्ध्री ॥

५६--बाणोंसे गिराये गये महावतवाले शून्य झूलवाले अन
सेनाके लोगोंसे पकड़नेके लिये आरम्भ किये गये क्षोभवं
प्राप्त हाथियोंके समूहोंने बन्धनके स्थानका स्मरणकिया

५७--इस युद्धकी पृथ्वीमें वारंवार रुधिरकी गन्धिसे मतवा
बड़े हाथीने कोपसे लोगोंको क्षोभ प्राप्त कराते हुएने पैर
लगीहुई पाशके तुल्य बड़ी मालाको खैंचा ॥

५८--कठिन प्रहारवाला कोईवीर मूर्च्छाको प्राप्त होकर हाथी
शीतलजलोंकेकणोंसेसींचागया जीउठा किन्तुउस(मूर्च्छ
में प्राप्त) को लेनेकीइच्छा करतीहुई आईहुई स्वर्गकी स्
व्यर्थ मनोरथ वाली होकर मूर्च्छित हुई ॥

५९--अन्यके बाणसे कटीहुई ग्रीवावाले आकाशके प्रति शी
चलते हुए राहुके तुल्य भयंकर इसवीरके मुखसे सुन्द
अप्सराओंके मुखरूपी चन्द्रमाडरे ॥

६०--कोई अप्सरा युद्धमें मरे हुए शूरको आलिंगन कर के शी
रमण करनेके लिये सुमेरु पर्वतकी कन्दरामें चली ग
जबतक उसके वियोगमें असमर्थस्त्री शीघ्र अग्निमें शरी
को त्यागकर नहीं आई ॥

६१--युद्धमें शरीरके त्यागकरनेवाले किसी वीरको हथिनी प
चढ़ी हुईने देखकर प्रेमसे उसी समय निकले हुए प्रा
वाली अपनहीं स्त्रीने सतीपनसे अक्षयदेवत्वको प्राप्तहोक
आलिंगन किया ॥

६२–स्वर्गे वासङ्कारयन्त्या चिराय
प्रत्यग्रत्वं प्रत्यहं धारयन्त्या ।
कश्चिद्भेजे दिव्यनार्य्यां परस्मिन्
लोके लोकम्प्रीणयन्त्येह कीर्त्या ॥

६३–गत्वा नूनं वैबुधं सद्म रम्यं
मूर्च्छाभाजामाजगामान्तरात्मा ।
भूयो दृष्टप्रत्ययाः प्राप्तसंज्ञाः
साधीयस्ते यद्रणायाद्रियन्ते ॥

६४–कश्चिच्छस्त्रापातमूढोऽपवोढु-
र्लब्ध्वा भूयश्चेतनामाहवाय ।
व्यावर्त्तिष्ट क्रोशतः सख्युरुच्चै-
स्त्यक्तश्चात्मा का च लोकानुवृत्तिः ॥

६५–भिन्नोरस्कौ शत्रुणाकृष्यदूरा-
दासन्नत्वात्कौचिदेकेषुणैव ।
अन्योऽन्यावष्टम्भसामर्थ्ययोगा-
दूर्द्ध्वावेव स्वर्गतावप्यभूताम् ॥

६६–भिन्नानस्त्रैर्मोहभाजोऽभिजातान्
हन्तुं लोलं वारयन्तः स्ववर्गम् ।
जीवग्राहं ग्राहयामासुरन्ये
योग्येनार्थः कस्य न स्याज्जनेन ॥

६७–भग्नैर्दण्डैरातपत्राणि भूमौ
पर्य्यस्तानि प्रौढचन्द्रद्युतीनि ।
आहाराय प्रेतराजस्य रौप्य-
स्थालीनीव स्थापितानि स्म भान्ति ॥

६२--कोई वीर बहुत कालतक स्वर्गमें वासकरातीहुई प्रतिदिन नवीनताको धारण करती हुई लोकको प्रसन्न करती हुई दिव्यस्त्री से परलोकमें और इसलोकमें कीर्तिसे सेवन किया गया ॥

६३--मूर्च्छामें प्राप्त लोगोंका जीव रम्य देवता लोगोंके स्थानमें जायकर मानोंआया जिस कारणसे संज्ञाको प्राप्तहोकर दृढ़ विश्वास वाले फिरभी अत्यन्तकठिन रणके लिये उत्साह-युक्तहुए ॥

६४--प्रहारसे मूर्च्छित किसी वीरने संज्ञाको प्राप्तहोकर मूर्च्छाके समययुद्धकी भूमिसे लानेवाले मित्रके कहनेपरभी फिरभी युद्धके निमित्त गमन किया और शरीर त्यागकिया क्योंकि लोकका अनुरोध क्या पदार्थहै ॥

६५--शत्रुसे दूरसे खैंचकर निकटताके कारण एकही बाणसे विदीर्ण कियेगये हृदय वाले कोईवीर, परस्पर पकड़नेकीसामर्थ्यसे ऊपर स्थितही मृत्युको प्राप्तहुए ॥

६६–अन्यवीरों ने बाणोंसे विदीर्ण मूर्च्छा में प्राप्त कुलीनों को मारने के लिये उत्सुक अपने साथियों को निवारण करते हुए साथजीव के पकड़वालिया क्योंकि योग्यजन से किस पुरुषका प्रयोजन नहीं होताहै ॥

६७–दंडों के टूटनेके कारण पृथ्वी में पड़ेहुए पूर्ण चन्द्रमाके समान द्युतिवाले छत्रयमराजके भोजनके लिये स्थापनकी हुई मानों चाँदीकी थालियोंके समान शोभितहुए ॥

६८--रेजुर्भ्रष्टा वक्षसः कुंकुमांका
मुक्ताहाराः पार्थिवानां व्यसूनाम् ।
हासाल्लक्ष्याः पूर्णकामस्य मन्ये
मृत्योर्दन्ताः पीतरक्तासवस्य ॥

६९--निम्नेष्वोघीभूतमस्रक्षतानां-
मस्रं भूमौ यच्चकासाञ्चकार ।
रागार्थन्तत्किन्नु कौसुम्भमम्भः
संव्यानानामन्तकान्तःपुरस्य ॥

७०--रामेण त्रिःसप्तकृत्वो हूदाना-
ञ्चित्रञ्चक्रे पञ्चकङ्क्षत्रियास्रैः ।
रक्ताम्भोभिस्तत्क्षणादेव तस्मिन्
संख्येऽसंख्याः प्रावहन्द्वीपवत्यः ॥

७१--सन्दानान्तादङ्घ्रिभिः शिक्षितास्रै-
राविश्याधः शातशस्त्रावलूनाः ।
कूर्मौपम्यं व्यक्तमन्तर्नदीना-
मैभाः प्रापन्नंघ्रयोऽसृङ्मयीणाम् ॥

७२--पद्माकारैर्योधवक्त्रैरिभानां
कर्णभ्रष्टैश्चामरैरेव हंसैः ।
सोपस्काराः प्रावहन्नस्रतोयाः
स्रोतस्विन्यो वीचिपृक्तैस्तराङ्गैः ॥

७३--उत्क्रान्तानामामिषायोपरिष्टा-
द्व्याकाशम्बभ्रमुः पत्रवाहाः ।
मूर्त्ताः प्राणा नूनमद्याप्यवेक्षा-
मासुः कायन्त्याजिता दारुणास्रैः ॥

६८--मरेहुए राजालोगों के हृदयसे गिरेहुए केशरसे भरेहुए मोतियों के हार सफल मनोरथवाली रक्तमद्यकी पीनेवाली मृत्युके हास्यसे लक्षित मानों दाँत शोभितहुए ॥

६९--पृथ्वी में नीचे स्थानोंमें इकट्ठाहुआ अस्त्रोंसे विदीर्ण पुरुषों का जो रुधिर शोभितहुआ वह रुधिर यमराजकी स्त्रियोंके डुपट्टों के रंगनेके लिये कुसुमसम्बन्धी क्या जलथा ॥

७०--परशुराम ने सामर्थ्य से इक्कीसवार क्षत्रियों के रुधिरों से आश्चर्य्य है कि पांचतड़ाग बनाये उसयुद्धमें क्षणही भर में रुधिररूपी जलोंसे असंख्यनदियां बहीं ॥

७१--अस्त्रों के सीखनेवाले अस्त्रवालोंसे नीचे प्रवेशकरके टकने से लेकर तीक्ष्ण शस्त्र के द्वारा काटेगये हाथियों के पैर रुधिरमय नादियोंके भीतर स्पष्टकूर्मोंकी (कछुओंकी) तुल्यता को प्राप्तहुए ॥

७२--उन्नत तरंगो में बहतेहुए कमलोंके तुल्य योद्धाओंके मुखों से हाथियोंके कानोंसे गिरेहुए चमररूपी हंसोंसे परिकरयुक्त रुधिरकी नदियां बहीं ॥

७३--पक्षी मांसके लेनेकेलिये मृतकोंके ऊपर आकाशमें भ्रमण करतेभये घोर अस्त्रोंकेद्वारा शरीरसे जुदेकरायेगये मूर्त्तिको धारण कियेहुएप्राण, इससमयभी मानोंशरीरको देखतेथे ॥

७४--आतन्वद्भिर्दिक्षु पत्राग्रनाद-
म्प्राप्तैर्दूरादाशु तीक्ष्णैर्मुखाग्रैः।
आदौ रक्तं सैनिकानामजीवै-
र्जीवैः पश्चात्पत्रिपूगैरपायि॥

७५--ओजोभाजां यद्रणे संस्थितानां-
मादत्तीव्रं सार्द्धमंगेन नूनम्।
ज्वालाव्याजादुद्वमन्ती तदन्त-
स्तेजस्तारन्दीप्तजिह्वा ववाशे॥

७६--नैरन्तर्य्यच्छिन्नदेहान्तरालं
दुर्भक्षस्य ज्वालिना वाशितेन।
योद्धुर्वाणप्रोतमादीप्य मांस-
म्पाकापूर्वस्वादमादे शिवाभिः॥

७७--ग्लानिच्छेदी क्षुत्प्रबोधाय पीत्वा
रक्तारिष्टं शोषिताजीर्णशेषम्।
स्वादुङ्कारङ्कालखण्डोपदंशं
क्रोष्टा डिम्बं व्यष्वणद् व्यस्वनच्च॥

७८--क्रव्यात्पूगैः पुष्कराण्यानकाना-
म्प्रत्याशाभिर्मेदसो दारितानि।
आभीलानि प्राणिनः प्रत्यवश्यन्
कालो नूनं व्याददावाननानि॥

७४--दिशाओं में पक्षों के अग्रभागों के शब्दों को विस्तारकरते भये दूरसे शीघ्रप्राप्तहुए पहले जीवरहित पत्रिपूगों (बाणों के समूहों) ने तीक्ष्ण मुखोंके अग्रभागों से सेनाके पुरुषों का रुधिर पिया पीछे जीव सहित पत्रिपूगों (पक्षियों के समूहों) ने तीक्ष्ण चोंचों से रुधिरपिया ॥

७५--जाज्वल्यमान जिह्वावाली शृगालीने रणमें मरेहुए तेजस्वी लोगोंका शरीरकेसाथ जो तीक्ष्णतेजभक्षणकिया उसअन्तःकरणमें भरेहुए तेजको ज्वालाके वहानेसे वमनकरतीहुई ने उच्चस्वर से शब्दकिया ॥

७६--निरन्तर शरीरके मध्यके विदीर्ण होनेपर बाणोंसे पुहाहुआ नहीं भक्षण करनेके योग्य योद्धाके मांसको, ज्वालायुक्त शब्दसे अग्निकी ज्वाला उठाकर परिपाकसे अपूर्व स्वादु होनेपर शृगालियोंने, भक्षण किया ॥

७७--शृगालने क्षुधाके उत्पन्नहोने के लिये ग्लानिका नाशकरने वाला अजीर्णका भस्मकरनेवाला रुधिररूपी अरिष्ट (पान विशेष) पीकर स्वादुपूर्व्वक कलेजेको काटकरके शरीरका भक्षण किया और शब्दकिया ॥

७८--मांसके भक्षण करनेवालों के समूहोंसे चरबीकी तृष्णासे फाड़ेगये नगाड़ों के मुखरूपी भयंकरमुख प्राणियोंको भक्षण करतेहुए कालने मानों फैलाये ॥

७९--कीर्णा रेजे साजिभूमिः समन्ता-
दप्राणद्भिः प्राणभाजां प्रतीकैः ।
वद्धारम्भैरर्द्धसंयोजितैर्वा
रूपैः स्रष्टुः सृष्टिकर्मान्तशाला ॥

८०--आयन्तीनामविरतरयं राजकानीकिनीना-
मित्थं सैन्यैः सममलघुभिः श्रीपतेरूर्मिमद्भिः ।
आसीदोघैर्मुहुरिव महद्वारिधेरापगाना-
न्दोलायुद्धं कृतगुरुतरध्वानमौद्धत्यभाजाम् ॥

इतिश्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये संकुलयुद्धवर्णनोनाम
अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

७९—मरेहुए प्राणियोंके शरीरोंसे सबओर से व्याप्त वह रणकी पृथ्वी, बड़े आरंभवाले आधे बनाये गये आकारों से व्याप्त ब्रह्माकी सृष्टिके कर्मकी अन्तकी शालाके समान मानों शोभित हुई ॥

८०—इसप्रकार निरन्तर वेगपूर्वक आतीहुई उद्धत प्रगल्भता सेयुक्त राजालोगोंकी सेनाओंका बड़ी तरंगवाली श्रीकृष्ण-जीकी सेनाओंके साथ समुद्रके जलोंसे नदियोंके समान बड़ी ध्वनिसे युक्त वह बड़ा जय और पराजयके निश्चयसे रहित युद्ध वारंवार हुआ ॥

इति श्रीमाघकृतमहाकाव्यशिशुपालबधस्यभाषानुवादे संकुलयुद्धवर्णनोनामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

ऊनविंशः सर्गः ॥

पुनश्चित्रबन्धैर्युद्धवर्णनम् ॥

१—अथोत्तस्थे रणाटव्यामसुहृद्वेणुदारिणा ।
नृपांघ्रिपौघसंघर्षादग्निवद्वेणुदारिणा ॥

२—आपतन्तमसुन्दूराद्दूरीकृतपराक्रमः ।
बलोऽवलोकयामास मातङ्गमिव केशरी ॥

३—जजौजोजाजिजिज्जाजी तन्ततोऽतिततातितुत् ।
भाभोऽभीभाभिभूभाभूरारारिरिरिरीररः ॥

एकाक्षरपादः ।

४—भवन् भयाय लोकानामाकम्पितमहीतलः ।
निर्घात इव निर्घोषभीमस्तस्यापतद्रथः ॥

५--रामे रिपुः शरानाजिमहेष्वास विचक्षणे ।
कोपादथैनं शितया महेष्वा स विचक्षणे ॥

उन्नीसवां सर्ग ॥

चित्रबन्धोंसे अच्छेप्रकार द्वन्द्वयुद्धोंका वर्णन ॥

१–इसके उपरान्त वनके तुल्य युद्धमें बांसोंके तुल्य शत्रुओंका विदीर्ण करनेवाला वेणुदारी नाम राजा, वृक्षोंके समान राजालोगों के समूहके संघर्ष (मत्सर और रगड़ना) से अग्निके तुल्य उठा ॥

२–आतेहुए इसवेणुदारी नाम राजाको दूरसे पुरुषार्थके अंगीकार करनेवाले बलभद्रजीने हाथीको सिंहकेसमानदेखा॥

३–इसके उपरान्त योद्धालोगों के पराक्रम से उत्पन्नयुद्ध के जीतनेवाले योद्धा अत्यन्त उद्धतोंको अत्यन्त व्यथा देनेवाले नक्षत्रके समान कान्तिवाले निर्भय हाथियों के निरादर करनेवाले तेजके स्थान रथपर चढ़ेहुए शत्रु (बलभद्रजी) उस वेणुदारी नाम राजाको युद्ध करनेके लिये प्राप्तहुए ॥

४–लोगोंको भय उत्पन्न करताहुआ पृथ्वीको कंपमान करता हुआ शब्दसे भयंकर उन बलभद्रजी का रथ वज्रपात के समान चला ॥

५–शत्रु (वेणुदारी) ने युद्धरूपी उत्सवों में प्रगल्भ बलदेवजी पर बाण फेंके क्रोधसे उन बलभद्रजी ने इस वेणुदारी को तीक्ष्ण बड़े बाणसे मारा ॥

६–दिशमर्कमिवावाचीं मूर्च्छागतमपाहरत्।
मन्दप्रतापन्तं सूतः शीघ्रमाजिविहायसः॥

७–कृत्वा शिनेः शाल्वचमूं सप्रभावा चमूर्जिताम्।
ससर्ज वक्त्रैः फुल्लाब्जसप्रभा वाचमूर्जिताम्॥

८–उल्मुकेन द्रुमम्प्राप्य संकुचत्पत्रसञ्चयम्।
तेजः प्रकिरता दिक्षु सप्रतापमदीप्यत॥

९–पृथोरध्यक्षिपद्रुक्मी यया चापमुदायुधः।
तयैव वाचाऽपगमं ययाचापमुदायुधः॥

१०–समं समन्ततो राज्ञामापतन्तीरनीकिनीः।
कार्ष्णिः प्रत्यग्रहीदेकः सरस्वानिव निम्नगाः॥

११–दधानैर्घनसादृश्यं लसदायसदंशनैः।
तत्र काञ्चनसच्छाया ससृजे तैः शराशनिः॥
निरोष्ठ्यः॥

१२–नखांशुमञ्जरीकीर्णामसौ तरुरिवोच्चकैः।
बभौ बिभ्रद्धनुःशाखामधिरूढशिलीमुखाम्॥

६—दक्षिणदिशा में प्राप्त मन्दप्रतापवाले सूर्य्यके समान मूर्च्छा में प्राप्त मन्दप्रतापवाले इस वेणुदारी नाम राजाको सारथी आकाशके तुल्य युद्धसे शीघ्र लेगया ॥

७—बड़े प्रभाववाली शिनीकी सेनाने शाल्वनाम राजाकी सेना को जीतकर मुखोंसे प्रफुल्लित कमलके समान प्रभावाली ने उदार वचन कहा ॥

८—दिशाओंमें तेजका फैलानेवाला उल्मुकनाम राजा संकोचको प्राप्त बाहनोंकी सम्पत्तिवाले प्रतापयुक्त द्रुम नाम राजाको प्राप्तहोकर प्रज्वलितहुआ ॥

९—रुक्मी नाम राजाने शस्त्रको उठाकर जिसवाणी से पृथु नाम राजाके धनुषको आक्षेप कियाथा उत्साहरहित उसी वाणीके द्वारा युद्धसे अपसरण (भागना) मांगा ॥

१०—इकट्ठी सबओरसे आतीहुई राजालोगों की सेनाओंको श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नने नदियोंको समुद्रके समान सहायके विना रोका ॥

११—शोभायमान लोहमयी कवचवाले मेघोंकी तुल्यताको धारण करनेवाले उन सेनाकेलोगों ने उन प्रद्युम्नजीमें सुवर्णके तुल्य बाणरूपी बिजली फेंकी ॥

१२—मंजरियोंके समान नखोंकी किरणों से व्याप्त शिलीमुखों (बाण और भ्रमरों) से युक्त शाखाके समान धनुषके धारण करने वाले उन्नत वृक्षके समान शोभित हुए ॥

१३–प्राप्य भीममसौजन्यं सौजन्यन्दधदानते ।
विध्यन् मुमोच न रिपूनरिपूगान्तकः शरैः ॥

१४–कृतस्य पूर्वक्षितिपैर्विजयासंशया पुरः ।
अनेकस्य चकारासौ बाणैर्बाणस्य खण्डनम् ॥

१५–या बभार कृतानेकमाया सेना ससारताम् ।
धनुः स कर्षन्रहितमायासेना ससार ताम् ॥

१६–ओजो महौजाः कृत्वाधस्तत्क्षणादुत्तमौजसः ।
कुर्वन्नाजावमुख्यत्वमनयन्नाम मुख्यताम् ॥

१७–दूरादेव चमूर्भल्लैः कुमारो हन्ति स स्मयाः ।
न पुनः सांयुगीन्ताः स्म कुमारोहन्ति सस्मयाः ॥
१८–निपीड्य तरसा तेन मुक्ताः काममनास्थया ।
उपाययुर्विलक्षत्वं विद्विषो न शिलीमुखाः ॥

१९–तस्यावदानैः समरे सहसा रोमहर्षिभिः ।
सुरैरशंसि व्योमस्थैः सह सारो महर्षिभिः ॥

१३--शत्रुओं के समूहों के अन्त करनेवाले यह प्रद्युम्नजी भयंकर युद्धको प्राप्तहोकर नम्र पर सुजनताके धारण करने वाले शत्रुओं को बाणोंसे छेदते हुए नहीं छोड़ते भये ॥

१४--इन प्रद्युम्नजीने पूर्वके राजा लोगों से विजयकी शंकासे सन्मुख किये गये सहाययुक्त बाणासुरका बाणों से खंडन किया ॥

१५--जो सेना बहुतसी मायाओंकी करनेवाली होकर बलवान् पनेको धारणकरतीथी उससेनाको वह प्रद्युम्नजी धनुषको खैंचकर विना परिश्रम के भंग करते भये ॥

१६--बड़े बलवान् प्रद्युम्नजीने उत्तमौजसनाम राजाको अनादर करके युद्धमें अमुख्यत्व (अप्रधानता और नहीं यथार्थता) करतेहुए ने अपनानाम मुख्यता (प्रधानता और यथार्थता) को प्राप्त किया ॥

१७--उन कुमार प्रद्युम्न ने गर्वयुक्त जो सेना दूरहीसे बाणोंकरके मारी वह सेना फिर युद्धकी पृथ्वीपर नहीं प्राप्तहुई ॥

१८--उन प्रद्युम्नसे बलात्कारपूर्वक अच्छेप्रकारसे दबायकरके अनादर से फेंकेगये शत्रु विलक्षत्व (लज्जितपन) को प्राप्तहुये बाण तो विलक्षत्व (लक्षसे च्युत होना) को नहीं प्राप्त हुए ॥

१९--युद्धमें उन प्रद्युम्नके अत्यन्त उग्रकर्मों से शीघ्र रोमांचयुक्त आकाशमें युक्त देवतालोग महर्षियों समेत बलकी प्रशंसा करते भये ॥

२०--सुगन्धयद्दिशः शुभ्रमम्लानि कुसुमन्दिवः ।
भूरि तत्रापतत्तस्मादुत्पपात दिवं यशः ॥

२१--सोढुन्तस्य द्विषो नालमपयोधरवारणम् ।
ऊर्णुनाव यशश्च द्यामपयोधरवारणम् ॥

२२--केशप्रचुरलोकस्य पर्य्यस्कारि विकासिना ।
शेखरेणेव युद्धस्य शिरः कुसुमलक्ष्मणा ॥

२३--सादरं युध्यमानापि तेनान्यनरसादरम् ।
सादरम्पृतना निन्ये हीयमाना रसादरम् ॥

२४--इत्यालिंगितमालोक्य जयलक्ष्मया झषध्वजम् ।
क्रुद्धयेव क्रुधा सद्यः प्रपेदे चेदिभूपतिः ॥

२५--अहितानभि वाहिन्या स मानी चतुरंगया ।
चचाल वल्गत्कलभसमानीचतुरंगया ॥

२६--ततस्ततधनुर्मौर्वीविस्फारस्फारनिस्वनैः ।
तूर्य्यैर्युगक्षये क्षुभ्यदकूपारानुकारिणि ॥

२०--दिशाओंको सुगन्धित करतेहुए श्वेत म्लानतारहित बहुत से पुष्प आकाशसे उन प्रद्युम्नपर गिरे उन प्रद्युम्नसे यश आकाश के प्रति गया ॥

२१--योद्धालोगों के शब्दों से रहित शत्रुलोग उन प्रद्युम्नका युद्ध सहनेको नहीं समर्थहुए और मेघोंकी रोकसे रहित यश आकाश को आच्छादित करता भया ॥

२२--अनेक मार्गोंमें जानेवाले प्रद्युम्नसे केशोंके समान बहुत से पुरुषों से युक्त युद्धका शिर शिरोभूषणके समान आभूषित हुआ ॥

२३--आदरपूर्व्वक युद्ध करतीहुई भी हठपूर्व्वक युद्ध में रागसे खैंचीगई वह सेना उन प्रद्युम्नसे अन्य पुरुषोंके निश्चेष्ट करनेवाले भयको प्राप्त कीगई ॥

२४--इसप्रकार जयकी लक्ष्मी से आलिंगन कियेगये प्रद्युम्नको देखकर मानों शीघ्र क्रोधको प्राप्त क्रुध (क्रोध--यहां इसका स्त्री लिंगसे वर्णन कियाहै) राजा शिशुपालको प्राप्तहुई ॥

२५--अभिमान से भराहुआ वह शिशुपाल हिनहिनातेहुए हाथी के बच्चे के समान ऊंचे घोड़ेवाली चारअंगवाली सेना से शत्रुओं के प्रतिचला ॥

२६--इसके उपरान्त खैंचेहुए धनुषकी प्रत्यंचाओं के चढ़ाने से बड़े शब्दवाले नगाड़ों से कल्पान्त में क्षोभकोप्राप्त समुद्र की तुल्यता करनेवाली (यहाँ से २९ वें श्लोकतक कालापक है) ॥

२७-स का र ना ना र का स
का य सा द द सा य का।
र सा ह वा वा ह सा र
ना द वा द द वा द ना॥

सर्वतोभद्रः।

२८-लोलासिकालियकुला यमस्येवस्वसा स्वयम्।
चिकीर्षुरुल्लसल्लोहवर्मश्यामा सहायताम्॥

२९-सा से ना ग म ना र म्भे
र से ना सी द ना र ता।
ता र ना द ज ना म त्त
धी र ना ग म ना म या॥

मुरजबन्धः। कालापकम्।

३०-धूतधौतासयः प्रष्ठाः प्रातिष्ठन्त क्षमाभृताम्।
शौर्य्यानुरागनिकषः साहि वेलानुजीविनाम्॥

३१-दिवमिच्छन् युधा गन्तुं कोमलामलसम्पदम्।
दधौ दधानोऽसिलतां कोऽमलामलसं पदम्॥

३२-कृतोरुवेगं युगपद्व्यजिगीषन्त सैनिकाः।
विपक्षं बाहुपरिघैर्जङ्घाभिरितरेतरम्॥

२७–यत्नसहित नानाप्रकार के शत्रुओं के समूहोंके कास(गति-भेद) और शरीरों के नाश करनेवाले बाणवाली रण में अनुरागवाली श्रेष्ठ वाहनोंके शब्दों के साथ कलहयुक्त वाद्यवाली ॥

२८–चंचल खड्गरूपी कृष्णसर्पोंके समूहोंसे युक्त शोभायमान लोहेके कवचोंसे श्याम यमराजके सहायता करनेकीइच्छा करती हुई साक्षात् यमराजकी बहिन यमुनाजीके समान मानों स्थित ॥

२९--अत्यन्त उच्चस्वर वाले पुरुषोंसे युक्त व्यथारहित वहसेना मतवाले और धीर हाथियोंके होनेपर गमनके आरम्भ में रागसे निरन्तर व्याप्तहुई॥(यहाँ कालापक समाप्त होगया)

३०--राजालोगों के आगे चलनेवाले, कंपित और तैयार किये गये खड्ग वाले होकर चले क्योंकि वह समय सेवकों के पुरुषार्थ और अनुरागकी परीक्षाका स्थानहै ॥

३१--युद्धसे सुन्दर और निर्मल स्वर्गके जानेकी इच्छा करतेहुए किसपुरुषने निर्मल खड्गरूपी लताको धारणकरके आलस्य युक्त पैररक्खा किन्तु किसीने भी नहीं रक्खा ॥

३२--सेनाके लोगोंने परिघोंके समान भुजाओंसे शत्रुओंको जंघाओंसे परस्पर बड़ा वेगकरके एक साथही जीतने की इच्छा की ॥

३३—वाहनाजनि मानासे साराजावनमा ततः ।
मत्तसारगराजेभे भारीहावज्जनध्वनि ॥

३४—निध्वनज्जवहारीभा भेजे रागरसात्तमः ।
ततमानवजारासा सेना मानिजनाहवा ॥

श्लोकप्रतिलोमयमकम् ।

३५—अभग्नवृत्ताः प्रसभादाकृष्टा यौवनोद्धतैः ।
चक्रन्दुरुच्चकैर्मुष्टिग्राह्यमध्या धनुर्लताः ॥

३६—करेणुः प्रस्थितोऽनेको रेणुर्घण्टाः सहस्रशः ।
करेऽणुः शीकरो जज्ञे रेणुस्तेन शमं ययौ ॥

३७—धृतप्रत्यग्रशृंगाररसरागैरपि द्विपैः ।
सरोषसम्भ्रमैर्वभ्रे रौद्र एव रणे रसः ॥

३८—न तस्थौ भर्तृतः प्राप्तमानसम्प्रतिपत्तिषु ।
रणैकसर्गेषु भयं मानसं प्रतिपत्तिषु ॥

३९—बाणाहिपूर्णतूणीरकोटरैर्धन्विशाखिभिः ।
गोधाश्लिष्टभुजाशाखैरभूद्भीमा रणाटवी ॥

३३--इसके उपरान्त अहंकारके नाश करने वाले मतवाले और बलवान् हाथियों से युक्त श्रेष्ठ युद्ध में बड़ी उत्साहयुक्त पुरुषोंकी ध्वनि होनेपर नहीं भंगहोनेके योग्य निर्वाहकरनेकी योग्यता हुई ॥

३४--चिंघाड़ते हुए वेगयुक्त मनोहर हाथी वाली विस्तार को प्राप्तमनुष्योंके कलकलसे युक्त मानयुक्त पुरुषोंके युद्धवाली सेना क्रोधरूपी रससे मोहको प्राप्तहुई ॥

३५--नहींभंग हुई गोल अग्रभाग वाली मुष्टिसे ग्रहण करने के योग्य मध्यवाली धनुषरूपी लतायें यौवनसे उद्धत पुरुषोंसे बलपूर्व्वक खैंचीगईं होकर उच्चस्वरसे ध्वनि करतीभयीं ॥

३६--बहुतसेहाथीचले हजारों घंटे बजे सूँड़में स्वल्प जलकेकण उत्पन्नहुए उन जलके कणोंसे रेणुशान्तिको प्राप्तहुई ॥

३७--नवीन सिन्दूरके रसरूपी रागके धारण करनेवालेभी क्रोध और घबराहटसे युक्त हाथियोंने युद्धमें रौद्ररसकोही धारणाकिया ॥

३८--स्वामियोंसे मान और पूजाके प्राप्तहोनेवाले रणमें नियत निश्चयवाले पैदल चलनेवाले लोगोंके मनमें भयनहीं स्थितहुआ ॥

३९--रणरूपीवन, सर्पोंकेतुल्य बाणोंसे भरेहुए तरकसरूपी कोटरवाले गोधा (गोहके चमड़ेके दस्ताने) रूपगोहोंसे आलिंगनकीगई भुजारूपी शाखावाले धनुर्धारी रूपी वृक्षोंसे भयंकर हुआ ॥

४०—नानाजाववजानाना सा जनौघघनौजसा।
परानिहाऽहानिराप तान्वियाततयाऽन्विता॥

प्रतिलोमानुलोमपादः।

४१—विषमं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः।
श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदभवद्बलम्॥

४२—संहत्या सात्वताञ्चैद्यम्प्रति भास्वरसेनया।
ववले योद्धुमुत्पन्नप्रतिभास्वरसेनया॥

४३—विस्तीर्णमायामवती लोललोकनिरन्तरा।
नरेन्द्रमार्गं रथ्येव पपात द्विषताम्बलम्॥

४४—वारणागगभीरासा साराऽभीगगणारवा।
कारितारिवधा सेना नासेधा वारितारिका॥

युग्मम्।

४५—अधिनागम्प्रजविनो विकशत्पिच्छचारवः।
पेतुर्बर्हिणदेश्यायाः शंकवः प्राणहारिणः॥

४६—प्र वृ त्ते वि क स द्ध्वा ने सा ध ने ष्य वि षा दि भिः।
व वृ पे वि क स द्धा नं यु ध मा प्य वि षा णि भिः॥

गोमूत्रिकाबन्धः।

४०--इस नानाप्रकारके युद्धमें तेजसे अनादर करतीहुई पुरुषों के समूहोंसे घनी भयरहित धृष्टतायुक्त वह शिशुपालकी सेना उनशत्रुओंको प्राप्तहुई ॥

४१--वह शिशुपालकी सेना सर्वतोभद्रचक्र गोमूत्रिका (यहसब चित्रकाव्यके भेदहैं) आदिक श्लोकोंसे महाकाव्यके समान किलोंसे विषमहुई ॥

४२--तेजयुक्त सेनावाला यदुवंशियोंका समूह शिशुपालके प्रति चला जो यदुवंशियोंका समूह स्वभावहीसे युद्धके लिये उत्पन्न बुद्धिवालाथा (वहशत्रुओंके बुलानेपर किसप्रकार निवृत्त होसक्ता है) ॥

४३--विस्तारयुक्त चलतेहुए पुरुषोंसे भरीहुई वह सेना विस्तीर्ण शत्रुओंकी सेनामें राजमार्गमें गलीके समानगिरी (मिली) ॥

४४--हाथीरूपी पर्व्वतोंसे गंभीर श्रेष्ठ और निर्भय जीवोंके समूहके शब्दवाली शत्रुओंकी बधकरनेवाली निषेधसे रहित इच्छाकियेहुए शत्रुवाली वह सेना शत्रुओंकी सेनामें गिरी (यहाँ ४३ और ४४ इनदोनोंका युग्मकहे) ॥

४५--वेगयुक्त प्रकाशमान कलाप (मोरकीपूंछ और तरकस) से सुन्दर मोरोंकेतुल्य प्राणके हरनेवाले वाण नागों (हाथी और सर्पों) में गिरे ॥

४६--ध्वनिके होनेपर प्रहारके प्रवृत्तहोनेपरभी विषादरहित हाथियोंने युद्धको पाकर बहुतसे दान (मद) की वृष्टिकी ॥

४७–पुरःप्रयुक्तैर्युद्धन्तञ्चलितैर्लब्धशुद्धिभिः।
आलापैरिव गान्धर्वमदीप्यत पदातिभिः॥

४८–केनचित् स्वासिनान्येषां मण्डलाग्रानऽवद्यता।
प्रापे कीर्तिप्लुतमहीमण्डलाग्र्याऽनवद्यता॥

४९–विहन्तुं विद्विषस्तीक्ष्णः सममेव सुसंहतेः।
परिवारात् पृथक्चक्रे खड्गश्चात्मा च केनचित्॥

५०–अन्येन विदधेऽरीणामतिमात्रा विलासिना।
उद्गूर्णेन चमूस्तूर्णमतिमात्रा विलाऽसिना॥
५१–सहस्रपूरणः कश्चिल्लूनमूर्द्धाऽसिना द्विपः।
तथोर्ध्व एव कावन्धीमभजन्नर्त्तनाक्रियाम्॥

५२–शस्त्रव्रणमयश्रीमदलंकरणभूषितः।
ददृशेऽन्यो रावणवदलंकरणभूषितः॥
५३–द्विपद्विशसनच्छेदनिरस्तोरुयुगोऽपरः।
सिक्तश्चास्त्रैरुभयथा बभूवारुणविग्रहः॥

५४–भीमतामपरोऽम्भोधिसमेऽधित महाहवे।
दाक्षे कोपः शिवस्येव समेधितमहा हवे॥

४७--वह युद्ध पहले प्रवृत्तहुए चलतेहुए शुद्धताकोप्राप्त पैदल चलनेवालोंसे गानकेपहले कहेगये अक्षरोंसे मानों शोभित हुआ ॥

४८--अपने खड्गसे शत्रुओं के मण्डल के अग्रभागोंको खण्डन करतेहुए किसीवीरने कीर्त्तिसे पृथ्वीमण्डलके अग्रभागके व्याप्तकरनेवाली अनवद्यता (निन्दासे रहितपन) पाई ॥

४९--किसीवीरने शत्रुओं के मारनेके लिये तीक्ष्ण खड्ग और आत्मा अच्छेप्रकारसे मिलेहुए परिवार और मियान से इकट्ठेही अलगकिये ॥

५०--अन्यवीरने विलासयुक्त उद्यतकियेगये खड्गसे अपरिमित शत्रुओंकी सेना शीघ्र अत्यन्त व्याकुलकी ॥

५१--हजारों पुरुषोंके पालनकरनेवाले अथवा हजारकी संख्या केपूर्ण करनेवाले किसीवीरने अपने खड्गसे शत्रुके शिरके काटनेवाले ने अथवा शत्रुके खड्गसे कटेहुए शिरवाले ने कबंध (रुंड) सम्बन्धी नृत्यकिया ॥

५२--शस्त्रों के व्रणरूपी शोभायुक्त आभूषणोंसे भूषित कोई पुरुष लंकासेरहित रणकीपृथ्वीमेंस्थित रावणकेसमानदेखागया॥

५३--शत्रुके मारनेमें कटनेसे दोनों जंघाओंसे रहित रुधिरोंसे सिंचाहुआ कोईवीरपुरुष दोनोंप्रकारसे अरुणविग्रह(सूर्यके सारथीके समान शरीरवाला और रक्तशरीरवाला)हुआ ॥

५४--समुद्रके समान बड़ेयुद्धमें अच्छेप्रकार से बढ़ेहुए तेजवाले अन्यवीर पुरुषने दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें दीप्तहुए तेजवाले शिवजीके कोपके समान भयंकरता धारणकी ॥

५५—दन्तैश्चिच्छिदिरे कोपात्प्रतिपक्षं गजा इव ।
परनिस्त्रिंशनिर्लूनकरवालाः पदातयः ॥

५६—रणे रभसनिर्भिन्नद्विपपाटविकासिनि ।
न तत्र गतभीः कश्चिद्द्विपपाट विकासिनि ॥

५७—यावन्न सत्कृतैर्भर्तुः स्नेहस्यानृण्यमिच्छुभिः ।
अमर्षादितरैस्तावत्तत्यजे युधि जीवितम् ॥

५८—अयशोभिदुरा लोके कोपधामरणादृते ।
अयशोभिदुरालोके कोपधा मरणादृते ॥

समुद्गयमकम् ।

५९—स्खलन्ती न क्वचित् तैक्ष्ण्यादभ्यग्रफलशालिनी ।
अमोचि शक्तिः शाक्तीकैर्लोहजा न शरीरजा ॥

६०—आपदि व्यापृतनयास्तथा युयुधिरे नृपाः ।
आप दिव्या पृतनया विस्मयञ्जनता यथा ॥

६१—स्वगुणैराफलप्राप्तेराकृष्य गणिका इव ।
कामुकानिव नालीकांस्त्रिणताः सहसामुचन् ॥

६२—वाजिनःशत्रु[illegible]न्यस्य समारब्धनवाजिनः ।
वाजिनश्[illegible]रामध्यमविशन् द्रुतवाजिनः ॥

५५--शत्रुओंके खड्गोंसे कटेहुए खड्गवाले पैदल चलनेवाले लोगोंने कोपसे हाथीके समान शत्रुको दाँतोंसे काटा ॥

५६--वेगसे हाथियोंके काटनेवाले चतुर लोगोंके खड्गों से युक्त प्रकाशमान उसबड़ेयुद्धमें भयरहित कोईवीर नहींभागा ॥

५७--सत्कार कियेगये स्वामीके प्रेमकी अनृणता (बेकर्जी) को चाहतेहुए योद्धालोगोंने युद्धमें जबतक प्राणनहीं त्यागकिये तबतक अन्यों (सत्काररहितों) ने क्रोधसे प्राणत्याग करदिये ॥

५८--भाग्यवान् दुःखसे दर्शन करनेके योग्यकोपके स्थान रणमें आदर कियेगये वीरपुरुष में अयश के नाशका करनेवाला उपाय मरणके विना कौनसा है ॥

५९--शक्तिके मारनेवाले लोगों ने तीक्ष्णतासे कहीं नहीं रुकती हुई सम्पूर्णफल (बरछीकाअग्रभाग) से शोभायमान अथवा निकटवर्त्ती कल्याणरूपी फलसे शोभायमान लोह से बनीहुई शक्तिछोड़ी शरीरसे उत्पन्नहुई शक्तिकोनहींछोड़ा ॥

६०--राजालोगों ने आपत्तिमें नीतिके प्रवृत्तिकरनेवाले होकर सेनासे इसप्रकार युद्धकिया जिसप्रकार दिव्यपुरुष विस्मयको प्राप्तहुए ॥

६१--वेश्याओंकेसमान तीन स्थानोंमें नम्र (झुके हुए) धनुषों ने कामियोंके समान बाणोंको अपने गुणों (प्रत्यंचा और रूपलावण्यादिकों) से फलकी प्राप्ति (बाणकेअग्रभागका स्पर्श और धनकी प्राप्ति) पर्य्यन्त खैंचकर शीघ्रछोड़ा ॥

६२--शीघ्र चलनेवाले घोड़े और पक्षियुक्त बाण नवीन युद्ध के प्रारम्भ करने वाले शत्रुओंकी सेनाके मध्यमें प्रविष्टहुए ॥

६३–पुरस्कृत्य फलम्प्राप्तैः सत्पक्षाश्रयशालिभिः।
कृतपुंखतया लेभे लक्षमप्याशु मार्गणैः ॥

६४–रक्तस्नुतिञ्जपासूनसमरागामिषु व्यधात्।
कश्चित् पुरः सपत्नेषु समरागामिषु व्यधात् ॥

६५–रथेण रणकाम्यन्तौ दूरादुपगताविभौ।
गतासुरन्तरा दन्ती वरण्डक इवाभवत् ॥

६६–भूरिभिर्भारिभिर्भीरैर्भूभारैरभिरेभिरे।
भेरीरेभिभिरभ्राभैरभीरुभिरिभैरिभाः ॥

द्व्यक्षरः।

६७–निशितासिलतालूनैस्तथा हस्तैर्न हस्तिनः।
युध्यमाना यथा दन्तैर्भग्नैरापुर्विहस्तताम् ॥

६८–निपीडनादिव मिथोदानतोयमनारतम्।
वपुषामदयापाताद्गिभानामभितोऽगलत् ॥

असंयोगः।

६९–रणांगणं सर इव प्लावितम्मदवारिभिः।
गजः पृथुकराकृष्टशतपत्रमलोडयत् ॥

७०–शरक्षते गजे भृङ्गैः सविषादिविषादिनि।
रुतव्याजेन रुदितन्तत्रासीदतिसीदति ॥

६३–बाणके अग्रभागको सन्मुख करके अथवा लाभको विचार कर आयेहुए लगेहुए उत्तम पंखसे अथवा उत्तम सहायसे शोभायुक्त बाण और याचक लोगोंने सुन्दरमुख होने से लक्ष (निशाना और लक्षसंख्यक धन) पाये ॥

६४--किसी वीर पुरुषने सन्मुख समरमें आयेहुए शत्रु लोगोंमें गुड़हरके पुष्पकेसमानरक्त रुधिरकास्राव(टपकना)किया ॥

६५--रणकीइच्छा करतेहुए वेगपूर्वक दूरसे आयेहुएदो हाथियों के बीचमें मरा हुआ हाथी मध्यकी वेदीके समान हुआ ॥

६६-बहुत भारयुक्त भयंकर पृथ्वी के भाररूप नगाड़ों के समान शब्द वाले निर्भय मेघोंके समान श्याम वर्णवाले हाथियों से हाथी भिड़गये ॥

६७–युद्ध करते हुए हाथी जिसप्रकार टूटेहुए दाँतोंसे विहस्तता (हाथोंसे रहितपन औरघबराहट) कोप्राप्तहुए उसप्रकार तीक्ष्ण खड्गों करके कटी हुई सूंडोंसे नहीं प्राप्तहुए ॥

६८–हाथियोंके शरीरोंसे निर्दयतापूर्वक भिड़नेकेकारण परस्पर दबनेसे मानों निरन्तर मद सब ओरसे बहा ॥

६९–हाथीने तड़ागके समान मदके जलसे सिंचे हुए रणांगण को बड़ी सूंड़ से सैकड़ों वाहनों (सवारियों) को खैंचकर क्षोभित किया ॥

७०–बाणसे हाथीके घायल होने में खेदयुक्त महावतवाले उस युद्धके समाप्त होनेपर भ्रमरों ने अपने शब्दों के वहाने से रोदन किया ॥

७१--अन्तकस्य पृथौ तत्र शयनीय इवाहवे।
दशनव्यसनादीयुर्मत्कुणत्वम्मतंगजाः॥

७२--अ भी क म ति के ने द्ध
भी ता न न्द स्य ना स ने।
क न त्स का म से ना के
म न्द का म क म स्य ति॥

अर्द्धभ्रमकः।

७३--दधतोऽपि रणे भीममभीक्ष्णम्भावमासुरम्।
हताः परैरभिमुखाः सुरभूयमुपाययुः॥

युग्मम्।

७४--येनांगमूहे व्रण वत्सरुचा परतोमरैः।
समत्वं स ययौ खड्गत्सरुचापरतोऽमरैः॥

७५--निपातितसुहृत्स्वामिपितृव्यभ्रातृमातुलम्।
पाणिनीयमिवालोकि धीरैस्तत्समराजिरम्॥

७६--अभावि सिन्ध्वा सन्ध्याभ्रसद्दग्रुधिरतोयया।
हते योद्धुञ्जनः पांशौ सद्युधि रतो यया॥

७७--विदलत्पुष्कराकीर्णाः पतच्छंखकुलाकुलाः।
तरत्पत्ररथानद्यः प्रासर्पन्रक्तवारिजाः॥

७१--मृत्युकी शय्याके समान उस बड़े युद्धमें हाथीदाँतकेटूटने से खटमलपनेको प्राप्त हुए ॥

७२--निर्भय चित्तवाले से दीप्तिमान् भयभीतोंके आनन्दकेनाश करने वाले दीप्यमान सम्पूर्ण कामनायुक्त सेनावालेमन्द उत्साहको नाश करते हुए ॥

(इसका अन्वय अगले श्लोकमेंहै)

७३--युद्धमें अत्यन्त भयंकर असुरत्व(पुरुषार्थ और दैत्यपन) को धारण करते हुएभी शत्रुओं से सन्मुख स्थितही मारे गये वीर पुरुष देवत्व को प्राप्त हुए ॥

७४--तेजस्वी जिस वीर पुरुषने शत्रुके शस्त्रोंसे व्रणयुक्त शरीर को धारण किया खड्गकी मुष्टिमें और धनुषमें प्रवृत्त वह वीर पुरुष देवताओं से समताको प्राप्त हुआ ॥

७५--मारे गये मित्र--स्वामी--पितृव्य (चचा) भ्रातृ (भाई) मातुल (मामा) वाले अथवा निपात (व्याकरणकी एक संज्ञा होती है) से सिद्ध किये गये सुहृदस्वामी पितृव्य-भ्रातृ--मातुलवाले पाणिनिके कहेहुए व्याकरणके ग्रन्थके समान वह युद्धभूमि धीरोंसे देखी गई ॥

७६--संध्याकाल के मेघके समान रुधिररूपी जल वाली नदी हुई जिस नदी से दृष्टिकी रोकने वाली धूलिके हर लेने पर वह वीर लोग युद्ध करने को उत्सुक हुए ॥

७७--विदीर्ण हाथियोंकी सूंड़ोंके अग्रभागों से व्याप्त गिरती हुई ललाटकी हड्डियों से पूर्ण तैरते हुए वाहन वाली रुधिर-रूपी जलसे उत्पन्न हुई नदियां बहीं ॥

७८--असृग्जनोऽस्त्रक्षतिमानवमज्जवसादनम्।
रक्षःपिशाचं मुमुदे नवमज्जवसादनम्॥

७९--चित्रञ्चापैरपेतज्यैः स्फुरद्रक्तशतह्रदम्।
पयोदजालमिव तद्वीराशंसनमाबभौ॥

८०--वन्धौ विपन्नेऽनेकेन नरेणेह तदन्तिके।
अशोचि सैन्ये घण्टाभिर्न रेणेहतदन्तिके॥

८१--कृत्तैः कीर्णा मही रेजे दन्तैर्गात्रैश्च दन्तिनाम्।
क्षुण्णलोकासुभिर्मृत्योर्मुसलोलूखलैरिव॥

८२--युद्धमित्थं विधूतान्यमानवानभियोगतः।
चैद्यः परान् पराजिग्ये मानवानभियोगतः॥

८३--अथ वक्षोमणिच्छायाच्छुरितपीतवाससा।
स्फुरदिन्द्रधनुर्भिन्नतडितेव तडित्त्वता॥

८४--नीलेनानालनलिननिलीनोल्ललनालिना।
ललनाललनेनालं लीलालोलेन लालिना॥
द्व्यक्षरः।

७८–शस्त्रोंके घाववाले बीर पुरुषोंने रुधिरको वेगके रोकने वाला माना नवीन चरबी और रसके खाने वाले राक्षस और पिशाच प्रसन्न हुए ॥

७९–प्रत्यंचासे रहित धनुषों से विचित्र दीप्तिमान् रुधिररूपी बिजलीवाली भयंकर युद्धकभूमि मेघोंके समूहके समान शोभित हुई ॥

८०–इस सेनामें बन्धुके मरने पर उसके समीप बहुतसे पुरुषों ने शोक किया और मरे हुए हाथी वाली सेनामें घंटे नहीं बजे ॥

८१–कटे हुए हाथियों के दांत और शरीरों से व्याप्त युद्धभूमि लोगोंके प्राणोंके पीसने वाले मृत्युके मूसल और उलूखलोंसे व्याप्त मानों शोभित हुई ॥

८२–अभिमानी शिशुपालने युद्धमें प्राप्त होकर इस प्रकारअन्य पुरुषोंके जीतनेवाले निर्भय शत्रुओंको अभियोग (भिड़ने) से जीत लिया ॥

८३–इसके उपरान्त कौस्तुभ मणि की छायासे व्याप्त पीतवस्त्र वाले दीप्तिमान् इन्द्रके धनुषसे व्याप्त बिजली वाले मेघके समान स्थित (८३ श्लोकसे ८७ श्लोकतक एकसम्बन्ध है अर्थात् कुलक है) ॥

८४–श्यामवर्णवाले नालरहित कमलमें बैठे हुए और चंचल भ्रमरवाले (मुखकी सुगन्धिसे घूमतेहुए भ्रमरवाले) स्त्रियोंके लाड करनेसे अत्यन्त क्रीडामें लोलुप भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले ॥

९०–विदितन्दिवि केनीऽके तं यातान्निजिताजिनि।
त्विगदङ्कवि रोद्धारो योद्धा यो नतिमेति न॥
प्रतिलोमेनायमेवार्थः।

९१–नियुज्यमानेन पुरः कर्मण्यतिगरीयसि।
आरोप्यमाणोरुगुणम्भर्त्रा कार्मुकमानमत्॥

९२--तत्र वाणाः सुपरुषः समधीयन्त चारवः।
द्विपामभूत्सु परुपस्तस्याकृष्टस्य चारवः॥

९३--पश्चात्कृतानामप्यस्य नराणामिव पत्रिणाम्।
यो यो गुणेन संयुक्तः स स कर्णान्तमाययौ॥

९४--प्रापे रूपी पुराऽरेपाः परिपूरी परः परैः।
रोपैरपारैरुपरि पुपूरेऽपि पुरोऽपरैः॥
द्व्यक्षरः।

९५--दिङ्मुखव्यापिनस्तीक्ष्णान् ह्रादिनो मर्मभेदिनः।
चिक्षेपैकक्षणेनैव सायकानहितांश्च सः॥
९६--शरवर्षी महानादः स्फुरत्कार्मुककेतनः।
नीलच्छविरसौ रेजे केशवच्छलनीरदः॥
गूढचतुर्थः।

९०--वीर जो श्रीकृष्णजी शत्रुओंसे नम्रताको नहीं प्राप्त होते हैं अनेक युद्धोंकी जीतनेवाली सेनामें प्राप्तहुए स्वर्गमें भी विख्यात रोगरहित उन श्रीकृष्णजी को पृथ्वीमें जीतने वाले कौन हैं कोईभी नहीं ॥

९१--सन्मुख अत्यन्त बड़े कार्य्य में नियत करनेवाले स्वामीसे, चढ़ाया गया बड़ी प्रत्यंचावाला धनुष नम्रहुआ (चढ़ गया) ॥

९२--उस धनुषमें सुन्दर गांठवाले अत्यन्त रमणीय बाणलगाये और खैंचेहुए उस धनुषका शब्द शत्रुओं के लिये अत्यन्त कर्कश हुआ ॥

९३--पुरुषोंके समान पीछे स्थापन कियेगये अथवा अनादर कियेगये भी बाणोंमें से जोजो बाण अथवा पुरुष प्रत्यंचासे अथवा गुणोंसे युक्त (था) वह वह बाण अथवा पुरुष इन श्रीकृष्णजी के कर्ण के समीपतक आया ॥

९४--पहले रूपोंके धारण करनेवाले पातकरहित भक्तोंको परिपूर्ण करने वाले परमपुरुष श्रीकृष्णजी शत्रुओं से रोके गये अन्य शत्रुओं ने बाणों से (उनको) सन्मुख और ऊपर व्याप्तकिया ॥

९५--उन श्रीकृष्णजी ने दिशाओं में व्याप्त अत्यन्त तीक्ष्ण शब्दायमान मर्मभेदी बाण और शत्रुएकही क्षणमें मारे ॥

९६--शर (बाण और जल) बड़े शब्द वाले दीप्तिमान् धनुष और पताका वाले अथवा इन्द्रके धनुषवाले श्याम कान्तिवाले श्रीकृष्णजीके व्याज(बहाने)वाला यह मेघ शोभित हुआ ॥

९७--न केवलञ्जनैस्तस्य लघुसन्धायिनो धनुः।
मण्डलीकृतमेकान्ताद्दलमौक्षि द्विपामपि॥

९८--लोकालोकी कलोऽकल्ककलिलोऽलिकुलालकः।
कालोऽकलोकलिःकाले कोलकेलिकिलः किलः॥
द्व्यक्षरः

९९--अक्षितारासु विव्याध द्विपतः स तनुत्रिणः।
दानेषु स्थूललक्ष्यत्वन्नाहि तस्य शरासने॥
युग्मम्।

१००--वररोऽविवरोवैरिविवारी वारिरारवः।
विववार वरो वैरं वीरो रविरिवौर्वरः॥
द्व्यक्षरः।

१०१--मुक्तानेकशरम्प्राणानहरन्भूयसान्द्विषाम्।
तदीयन्धनुरन्यस्य न हि सेहे सजीवताम्॥

१०२--राजराजीरुरोजाजेरजिरेऽजोऽजरोऽरजाः।
रेजारिजूरजोर्जार्जी रराजर्जुरजर्जरः॥
द्व्यक्षरः।

९७-शीघ्र चढ़ाने वाले इन श्रीकृष्णजी का केवल धनुषही शीघ्र खैंचने से मंडल के समान किया गया लोगों ने नहीं देखा किन्तु शत्रुओं की सेना भी मंडल (एकस्थान में इकट्ठी) की गई देखी ॥

९८-त्रैलोक्य के देखने वाले मधुर बोलने वाले पातक से रहित भ्रमरों के समान श्यामकेश वाले श्याम वर्ण वाले कलाओं से रहित कलहरहित प्रलय के समय वराह की लीला से क्रीड़ा करनेवाले ॥

(यहां ९८ श्लोक से ९९ तक युग्मक है)

९९-उन श्रीकृष्णजी ने कवच युक्त शत्रुओं को नेत्रोंकी पुतलियों में मारा क्योंकि उन श्रीकृष्णजी को केवल दानमें स्थूल लक्षत्व (बहुताई) है बाण के फेंकने में तो नहीं है ॥

१००-वरके देने वाले छिद्र रहित शत्रुओं के निवारण करने वाले मेघ के समान शब्दवाले श्रेष्ठ वीर श्रीकृष्णजी ने पृथ्वी में उत्पन्न सूर्य्य के समान शत्रुओं के समूह को नाश किया ॥

१०१-अनेक बाणों के छोड़ने वाले उन श्रीकृष्णजी के धनुष ने बहुत से शत्रुओं के प्राणहर लिये क्योंकि अन्यकी सजीवता नहीं सही ॥

१०२-नहीं उत्पन्नहोनेवाले अजर रजोगुणसे रहित तेजयुक्त शत्रुओंकी हिंसाकरनेसे उत्पन्न हुए बलके इकट्ठे करने वाले कोमल और दृढ़ उन श्रीकृष्णजीने युद्ध भूमिमें राजा लोगोंकी पंक्तियां भंगकरडालीं और(आप)दीप्तिमान्हुए ॥

१०३--उद्धतान्द्विपतस्तस्य निघ्नतो द्वितयं ययुः ।
पानार्थे रुधिरन्यातौ रक्षार्थे भुवनं शराः ॥

१०४--क्रूरारिकारी कोरेककारकः कारिकाकरः ।
कोरकाकारकरकः करीरः कर्करोऽर्करुक् ॥
द्व्यक्षरः ।

१०५--विधातुमवतीर्णोऽपि लघिमानमसौभुवः ।
अनेकमरिसंघातमकरोद् भूमिवर्द्धनम् ॥

१०६--दारी दरदरिद्रोऽरिदारूदारोऽद्रिदूरदः ।
दूरादरौद्रोऽददरद्रोदोरुद्दारुरादरी ॥
द्व्यक्षरः ।

१०७--एकेषुणा संघतिथान् द्विपो भिन्दन्द्रुमानिव ।
स जन्मान्तररामस्य चक्रे सदृशमात्मनः ॥

१०८--शूरः शौरिरशिशिशैराशाशैराशु राशिशः ।
शरारुः श्रीशरीरेशः शुशूरेऽरिशिरः शरैः ॥
द्व्यक्षरः ।

१०३--उद्धत शत्रुओं को मारतेहुए उन श्रीकृष्णजी के वाण पा-पाने धातुमें रुधिर और पा- रक्षणे इस धातुमें संसार इन दोनों को प्राप्तहुए--(रुधिर पान किया और संसार की रक्षाकरी) ॥

१०४--क्रूर शत्रुओं के हटाने वाले पृथ्वी के एकउत्पन्न करनेवाले दुष्टों को यातनाओं के देने वाले कमलकी कलियों की आकृति से युक्त हाथवाले हाथियों के फेंकने वाले रणमें कर्कश सूर्य्य के समान कान्ति वाले (यहां१०४से१०५ तक यह दोनों युग्मक हैं) ॥

१०५--पृथ्वीके भारके उतारने के लिये अवतार लेने वाले इन श्रीकृष्णजी ने बहुत सा शत्रुओं का समूह पृथ्वीका भार किया (मारडाला) (युग्मकहोगया) ॥

१०६--बहुतसी स्त्री वाले भय से रहित उदार पर्व्वतके समान दुर्भेद्य सौम्य संसारमें व्याप्तदाता और आदर करने वाले इन श्रीकृष्णजी ने शत्रुरूपी काष्ठको दूरही से विदीर्ण किया ॥

१०७--उन श्रीकृष्णजी ने एकही बाणसे भुण्ड के भुण्ड स्थित होने वाले शत्रुओंको वृक्षों के समान विदीर्ण करते हुए जन्मान्तर में राम (रामावतार) होने वाले अपने सदृश कर्म किया ॥

१०८--दुष्टोंके मारने वाले लक्ष्मीके शरीरके स्वामी शूरवीर श्री-कृष्णजी ने तीक्ष्ण दिशाओं के व्याप्त करनेवाले वाणों से शत्रुओं के शिर भुण्डके भुण्ड शीघ्र काटडाले ॥

१०९–व्यक्तासीदरितारीणां यत्तदीयास्तदा मुहुः ।
मनोहृतोऽपि हृदये लेगुरेषान्न पत्रिणः ॥

११०--नामाक्षराणाम्मलिता मा भूद्भर्तुरतः स्फुटम् ।
अगृह्णन्त पराङ्गानामसूनस्त्रन्न मार्गणाः ॥
अतालव्यः ।

१११–आच्छिद्य योधसार्थस्य प्राणसर्वस्वमाशुगाः ।
ऐकागारिकवद्भूमौ दूराज्जग्मुरदर्शनम् ॥

११२--भीमास्त्रराजिनस्तस्य बलस्य ध्वजराजिनः ।
कृतघोराजिनश्चक्रे भुवः सरुधिरा जिनः ॥

११३–मांसव्यधोचितमुखैः शून्यतान्दधदाक्रियम् ।
शकुन्तिभिः शत्रुबलं व्यापि तस्येषुभिर्नभः ॥

११४--दाददो दुद्दुद्दादी दादादो दूददीददोः ।
दुद्दादं दददे दुद्दे ददाददददोऽददः ॥
एकाक्षरः ।

११५–क्षुतेभकुम्भोरसिजैर्हृदयक्षतिजन्मभिः ।
प्रावर्त्तयन्नदीरस्त्रैर्द्विपान्तद्योपिताञ्च सः ॥

१०९--उस समय इन शत्रुओंकी शत्रुता प्रकट हुई जिस कारण से उन श्रीकृष्णजी के बाण मनोहर (मारने वाले) भी हृदयमें नहीं लगे (हृदयको फाड़कर निकलगये) ॥

११०--स्वामीके अक्षरोंकी मलिनता न होवे इस कारणसे बाणों ने शत्रुओं के शरीरों के प्राण लिये किन्तु रुधिर नहीं लिये ॥

१११--बाण-वीरोंके समूह के प्राणरूपी सर्वस्वको लेकर चोरोंके समान दूरही से पृथ्वी में अदृश्यताको प्राप्त हुए ॥

११२--श्रीकृष्णजी ने भयंकर शस्त्रों की पंक्तिवाली भुजाओं से शोभायमान घोर युद्धके करने वाली उस सेनाकी पृथ्वी को रुधिरयुक्त किया ॥

११३--मांसके खंडन करने में उचित मुखवाले पक्षियों से शून्य क्रियारहित शत्रुओं की सेना व्याप्तकीगई उन श्रीकृष्ण-जीके बाणों से आकाश व्याप्त किया गया ॥

११४--दानदेने वाले दुष्टोंको दुःख देने वाले शुद्धियों के देने वाले दुष्टोंकी नाश करने वाली भुजा वाले दाता और अदाता दोनोंकेदेनेवाले भक्षकों (वकासुर पूतनादिकों) के नाशकरने वाले श्रीकृष्णजी ने शत्रुओं में शस्त्रका प्रयोग किया ॥

११५--उन श्रीकृष्णजी ने स्तनोंके समान हाथियों के मस्तकों के अथवा हाथी के मस्तकों के समान स्तनों के सींचने वाले हृदयके प्रहारोंसे अथवा मनकी विकलतासे उत्प-न्न हुए शत्रुओंके और शत्रुओंकी स्त्रियोंके रुधिरोंसे और अश्रुओं से नादियां बहाईं ॥

११६--सदामदबलप्रायः समुद्धृतरसो बभौ।
प्रतीतविक्रमः श्रीमान् हरिर्हरिरिवापरः॥
अर्थत्रयवाची।

११७--द्विधा त्रिधा चतुर्द्धा च तमेकमपि शत्रवः।
पश्यन्तः स्पर्द्धया सद्यः स्वयम्पञ्चत्वमाययुः॥

११८--सदैव सम्पन्नवपूरणेषु
स दैवसम्पन्नवपूरणेषु।
महो दधे स्तारि महानितान्तं
महोदधेऽस्तारिमहा नितान्तम्॥
समुद्गः।

११९--इष्टं कृत्वार्थम्पत्रिणः शार्ङ्गपाणे-
रैत्याधोमुख्यम्प्राविशन् भूमिमाशु।
शुद्धया युक्तानां वैरिवर्गस्य मध्ये
भर्त्रा क्षिप्तानामेतदेवानुरूपम्॥

११६–सदैव मदसेयुक्त बलभद्रजी के प्रेमकरनेवाले पृथ्वीके उ-ठानेवाले प्रसिद्ध चरणोंके न्यास (रखने) वालेलक्ष्मी के पति श्रीकृष्णजी इन्द्र और अन्यहरि (सूर्य) के समान शोभितहुए (इन्द्रकेपक्षमें) सज्जनोंके दुःख देनेवाले बलासुर के नाश करनेवाले विषसे रहित प्रसिद्ध पराक्रम वालेराज्यलक्ष्मीसे युक्त (सूर्य्यके पक्षमें) सज्जनोंकोरोग के नाशकरनेवाले और बलको देनेवाले उदयवाले जल के शोषनेवाले प्रसिद्धआकाशमें गमन करनेवाले शोभा से युक्त ॥

११७–शत्रुलोग एकभी उन श्रीकृष्णजीको दो प्रकारसे तीन प्रकारसे और चार प्रकारसे देखतेहुए स्पर्धासे शीघ्र आ-पही पंचत्व (मृत्यु) को प्राप्तहुए ॥

११८–सर्वदा सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त शरीरवाले शत्रुओंके तेज के नाश करनेवाले बड़े उन श्रीकृष्णजीने दैवी सम्पत्ति-रूपी निश्चययुक्त साधनवाले युद्धोंमें समुद्रके पारजाने वाले अत्यन्त विस्तारयुक्त बड़े तेजको धारण किया ॥

११९–श्रीकृष्णजी के बाण अभीष्ट अर्थको सिद्धकरके अधोमु-खताको प्राप्त होके शीघ्र पृथ्वीमें प्रविष्टहुए क्योंकि शुद्ध-तासे युक्त शत्रुओंके मध्यमें स्वामी से फेंकेगयेहुओं को यही उचित है ॥

१२०--सत्वम्मानविशिष्टमाजिरभसादालम्व्य भव्यः पुरो
लब्धाघक्षयशुद्धिरुद्धुरतरश्रीवत्सभूमिर्मुदा ।
मुक्त्वा काममपास्तभीःपरमृगव्याधः सनादं हरे-
रेकौघैः समकालमभ्रमुदयी रोपैस्तदा तस्तरे ॥
चक्रवन्धः ।

इति श्रीमाघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये
एकोनविंशतितमः सर्गः १९ ॥

१२०–कल्याण मूर्त्तिवाले पातकके नाश और शुद्धताको प्राप्त श्रीवत्सलांछनके स्थान उन्नतहृदय वाले अत्यन्त निर्भय शत्रुरूपी मृगोंके व्याध नित्य उदय युक्त उन श्रीकृष्णजी ने पहलेरणके अनुराग से मानयुक्त बलको आलम्बन करके उत्साह पूर्वक सिंह के समान नादकरके एकसमय में एक समूहवाले बाणोंसे आकाशको उस समय व्याप्त किया ॥

इति श्रीमाघकृतमहाकाव्यशिशुपालबधस्य भाषानुवादे
एकोनविंशतितमस्सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः

श्रीकृष्णशिशुपालयोर्युद्धवर्णनं श्रीकृष्णेन शिशुपालवधवर्णनं-
कविवंशवर्णनं च ॥

१--मुखमुल्लसितत्रिरेखमुच्चै-
भिंदुरभ्रू युगभीषणन्दधानः ।
समिताविति विक्रमानमृष्यन्
गतभीराह्वत चेदिराट् मुरारिम् ॥

२--शितचक्रनिपातसम्प्रतीक्षं
वहतः स्कन्धगतञ्च तस्य मृत्युम् ।
अभिशौरि रथोऽथ नोदिताश्वः
प्रययौ सारथिरूपया नियत्या ॥

३--अभिचैद्यमगाद्रथोऽपि शौरे-
रवनिञ्जागुड़कुंकुमाभिताम्रैः ।
गुरुनेमिनिपीड़नावदीर्ण-
व्यसुदेहस्रुतशोणितैर्विलिम्पन् ॥

४--स निरायतकेतनांशुकान्तः
कलनिक्काणकरालकिंकिणीकः ।
विरराज रिपुक्षयप्रतिज्ञा-
मुखरो मुक्तशिखः स्वयन्नु मृत्युः ॥

बीसवां सर्ग ॥

श्रीकृष्णजी और शिशुपाल के युद्धका वर्णन और श्रीकृष्णजीसे शिशुपालका माराजाना और अन्तमें कविवंशका वर्णन ॥

१--इस प्रकार युद्धमें पराक्रमों को नहीं सहकर उत्पन्न हुई तीनरेखा वाले कुटिल भृकुटियों से भयंकर उन्नतमुखको धारण करते हुए शिशुपाल ने निर्भय होकर श्रीकृष्णजी को बुलाया ॥

२--इस के उपरान्त तीक्ष्ण सुदर्शन चक्र के प्रहार की बाट देखने वाले स्कन्धमें प्राप्त मृत्यु के धारण करने वाले उस शिशुपालका रथ सारथी रूपी भाग्यसे प्रेरणा किये गये घोड़ेवालाहोकर श्रीकृष्णजी के सन्मुख गया ॥

३--इस के उपरान्त श्रीकृष्णजी का रथभी जगुड़ देशमें उत्पन्न हुई केशरके तुल्य अरुण बड़ी चक्रधाराओं के दबाने से विदीर्ण मरेहुए जीवों के शरीरों से निकले हुए रुधिरों से पृथ्वी को लीपताहुआ शिशुपाल के सन्मुख गया ॥

४--अत्यन्त दीर्घ ध्वजाके वस्त्रवाला मधुर स्वरोंसे प्रगल्भक्षुद्रघंटिकावाला वह श्रीकृष्णजी का रथ शत्रुके मारने की प्रतिज्ञा से वाचाल खुली हुई शिखावाला शोभित हुआ मानों साक्षात्मृत्यु ॥

५--सजलाम्बुधरारवानुकारी
ध्वनिरापूरितदिङ्मुखो रथस्य ।
प्रगुणीकृतकेकमूर्द्धकण्ठैः
शितिकण्ठैरुपकर्णयाम्बभूवे ॥
६—अभिवीक्ष्य विदर्भराजपुत्री-
कुचकाश्मीरजचिह्नमच्युतोरः ।
चिरसेवितयापि चेदिराजः
सहसावाप रुषा तदैव योगम् ॥
७--जनिताशनिशब्दशंकमुच्चै-
र्धनुरास्फालितमध्वनन्नृपेण ।
चपलानिलचोद्यमानकल्प-
क्षयकालाग्निशिखानिभस्फुरज्ज्यम् ॥
८—समकालमिवाभिलक्षणीय-
ग्रहसन्धानविकर्षणापवर्गैः ।
अथ साभिसरं शरैस्तरस्वी
स तिरस्कर्त्तुमुपेन्द्रमभ्यवर्षत् ॥
९--ऋजुताफलशुद्धियोगभाजां
गुरुपक्षाश्रयिणां शिलीमुखानाम् ।
गुणिना नतिमागतेन सन्धिः
सह चापेन समञ्जसीबभूव ॥
१०--अविपह्यतमे कृताधिकारं
वशिना कर्मणि चेदिपार्थिवेन ।
असरद्धनुरुच्चकैर्दृढार्त्ति-
प्रसभाकर्षणवेपमानजीवम् ॥

५--जलसहित मेघ के शब्दके तुल्य गंभीर दिशाओं के व्याप्त करनेवाली श्रीकृष्णजी के रथकी ध्वनि, ग्रीवाओं के उठाने वाले मयूरों से उच्चस्वर पूर्वक शब्दकरके सुनीगई ॥

६--शिशुपाल रुक्मिणी के स्तनों की केशर के चिह्न वाले श्री कृष्णजी के हृदयको देखकर बहुत कालसे युक्तभी क्रोधसे उसी समय मानों शीघ्र योगको प्राप्तहुआ ॥

७--राजा शिशुपाल से चढ़ाया गया तीव्र वायु से प्रेरणा की गई कल्पान्त के समयकी अग्नि की शिखा के समान चंचलता युक्त प्रत्यंचावाला धनुष वज्रपातकी शंका को उत्पन्न करके उच्चस्वर से शब्दायमान हुआ ॥

८--इस के उपरान्त बलवान् उस शिशुपाल ने मानों एकही समयमें देखने के योग्य ग्रहण संधान-आकर्षण और त्याग वाले बाणों से भृत्योंसमेत श्रीकृष्णजी को आच्छादन करने के लिये वर्षा की ॥

९--नहीं वक्रता- फलसे युक्तता और शुद्धताके धारण करने वाले बड़ेपक्षोंके आश्रयण करने वाले बाणोंका प्रत्यंचायुक्त नम्रता को प्राप्त धनुषके साथ सम्बन्ध, योग्य हुआ ॥

१०--स्वतन्त्र राजा शिशुपालसे दुष्कर कर्ममें नियोग कियागया दृढ धनुषकी कोटियों के बलात्कारपूर्वक खैंचनेसे कंपायमान प्रत्यंचावाला धनुष, उच्चस्वरसे शब्दायमानहुआ ॥

११--अनुसन्ततिपातिनः पटुत्व-
न्दधतः शुद्धिभृतो गृहीतपक्षाः।
वदनादिव वादिनोऽथ शब्दाः
क्षितिभर्त्तुर्धनुषः शराः प्रसस्रुः॥
१२--गवलासितकान्ति तस्य मध्य-
स्थितघोरायतवाहुदण्डनासम्।
ददृशे कुपितान्तकोन्नमद्भ्रू-
युगभीमाकृति कार्मुकञ्जनेन॥
१३--तडिदुज्ज्वलजातरूपपुंखैः
खमयः श्याममुखैरभिध्वनद्भिः।
जलदैरिव रंहसा पतद्भिः
पिदधे संहतिशालिभिः शरौघैः॥
१४--शितशल्यमुखावदीर्णमेघ-
क्षरदम्भःस्फुटतीव्रवेदनानाम्।
स्रवदस्रुततीव चक्रवालं
ककुभामौर्णविषुः सुवर्णपुंखाः॥
१५--अमनोरमतां यती जनस्य
क्षणमालोकपथान्नभः सदा वा।
रुरुधे पिहिताहिमद्युतिर्द्यौ
र्विशिखैरन्तरिता च्युता धरित्री॥
१६--विनिवारितभानुतापमेकं
सकलस्यापि मुरद्विषो बलस्य।
शरजालमयं समं समन्ता-
दुरु सद्मेव नराधिपेन तेने॥

११--इसके उपरान्त उस शिशुपालके धनुषसे निरन्तर गिरनेवाले पटुताको धारण करतेहुए शुद्धतायुक्त पक्षों के ग्रहण करनेवाले बाण वादी के मुखसे शब्दोंके समान निकसे ॥

१२--भैंसेके सींग के समान कृष्ण वर्णवाला नासिकाके समान मध्यमें स्थित भयंकर बड़ी भुजावाला क्रोधको प्राप्त मृत्यु की उन्नत भृकुटियों के समान भयंकर आकृतिवाला उस शिशुपालका धनुष, लोगोंने देखा ॥

१३--बिजली के समान दीप्तिमान् सुवर्णकी पुंखवाले लोहे के समान श्याम मुखवाले शब्दायमान वेगसे दौड़तेहुए समूहवाले बाणोंके समूहोंसे मेघोंके समान आकाश आच्छादित कियागया ॥

१४--सुवर्णकी पुंखवाले बाणोंने तीक्ष्ण मुखोंके अग्रभागों से विदीर्ण मेघोंसे गिरतेहुए जलसे प्रकट तीव्र वेदनावाली दिशाओं का मानों टपकतीहुई अश्रुओंकी पंक्तिवाला समूह आच्छादित किया ॥

१५--बाणों ने ढकेहुए सूर्य्यवाले मनोरमतासे रहित आकाश लोगोंकी दृष्टिके मार्गसे क्षणभर रोका (और) ढकीहुई नष्ट मनोरमतासे रहित पृथ्वी देवता लोगोंके दृष्टिके मार्ग से रोकी ॥

१६--राजाने संपूर्ण श्रीकृष्णजी की सेनाके लिये सूर्य्यके आतपका निवारण करनेवाला एक बाणोंके समूहोंका बड़ा गृह मानों सबओर से बनादिया ॥

१७–इति चेदिमहीभृता तदानी-
न्तदनीकं दनुसूनुसूदनस्य ।
वयसामिव चक्रमक्रियाक-
म्परितोऽरोधि विपाटपञ्जरेण ॥

१८--इषुवर्षमनेकमेकवीर-
स्तदरिप्रच्युतमच्युतः पृषत्कैः ।
अथ वादिकृतम्प्रमाणमन्यैः
प्रतिवादीव निराकरोत्प्रमाणैः ॥

१९--प्रतिकुञ्चितकूर्परेण तेन
श्रवणोपान्तिकनीयमानगव्यम् ।
ध्वनति स्म धनुर्घनान्तमत्त-
प्रचुरक्रौञ्चरवानुकारमुच्चैः ॥

२०–उरसा विततेन पातितांसः
स मयूराञ्चितमस्तकस्तदानीम् ।
क्षणमालिखितो नु सौष्ठवेन
स्थिरपूर्वापरमुष्टिराबभौ वा ॥

२१--ध्वनतो नितरां रयेण गुर्व्य-
स्तडिदाकारचलद्गुणादसंख्याः ।
इषवो धनुषः सशब्दमाशु
न्यपतन्नम्बुधरादिवाम्बुधाराः ॥

२२--शिखरोन्नतनिष्ठुरांसपीठः
स्थगयन्नेकदिगन्तमायतान्तः ।
निरवर्णि सकृत्प्रसारितोऽस्य
क्षितिभर्तेव चमूभिरेकबाहुः ॥

१७—इसप्रकार राजा शिशुपाल ने उससमय पक्षियों के समूह के समान दैत्योंके मारनेवाले श्रीकृष्णजी की सेना बाणरूपी पिंजरे से सबओरको रोकी ॥

१८—इसके उपरान्त बड़े शूर श्रीकृष्णजी ने शत्रुसे फेंकेहुए अनेक बाणों को बाणोंसे वादीसे प्रयोग कियेगये प्रमाणको अन्य प्रमाणों से प्रतिवादी के समान खंडनकिया ॥

१९—कुहनी के सकोड़नेवाले श्रीकृष्णजी से कानके समीप पर्य्यन्त खैंचीगई प्रत्यंचा वाला धनुष, शरदृऋतुमें मतवाले पक्षियों के शब्दके समान उच्चस्वर से शब्दायमान हुआ ॥

२०—उससमय विश्वासयुक्त हृदयसे उपलक्षित नम्र कन्धेवाले मयूरके समूरके समान सुन्दर मस्तकवाले दृढ़ आगे और पीछेकी मुष्टिवाले वह श्रीकृष्णजी सुन्दरतासे क्षणभर लिखे के समान शोभितहुए ॥

२१—गर्जते हुए बिजली के समान आकारवाली चंचल प्रत्यंचा वाले धनुष से बड़े असंख्य बाण मेघ के जलकी धाराओं के समान शीघ्र शब्दपूर्व्वक निकले ॥

२२—शिखर के समान उन्नत और निष्ठुर कन्धेवाली एकदिशा को व्याप्त करती हुई बड़े विस्तारवाली एकवार फैलाई गई इन श्रीकृष्णजी की एक भुजा सेनाओंसे पर्व्वत के समान देखी गई ॥

२३—तमकुण्ठमुखाः सुपर्णकेतो-
रिपवः क्षिप्तमिपुव्रजम्परेण।
विभिदामनयन्त कृत्यपक्ष-
न्नृपतेर्नेतुरिवायथार्थवर्णाः॥

२४—दयितैरिव खण्डिता मुरारे-
र्विशिखैः सम्मुखमुज्ज्वलांगलेखैः।
लघिमानमुपेयुषी पृथिव्यां
विफला शत्रुशरावलिः पपात॥

२५—प्रमुखेऽभिहताश्च पत्रवाहाः
प्रसभम्माधवमुक्तवत्सदन्तैः।
परिपूर्णतरम्भुवो गतायाः
परितः कातरवत्प्रतीपमीयुः॥

२६—इतरेतरसन्निकर्षजन्मा
फलसंघट्टविकीर्णविस्फुलिंगः।
पटलानि लिहन् वलाहकाना-
मपरेपु क्षणमज्वलत् कृशानुः॥

२७—शरदीव शरश्रिया विभिन्ने
विभुना शत्रुशिलीमुखाभ्रजाले।
विकसन्मुखवारिजाः प्रकाम-
म्बभुराशा इव यादवध्वजिन्यः॥

२८—स दिवं समचिच्छदच्छरौघैः
कृततिग्मद्युतिमण्डलापलापैः।
ददृशेऽथ च तस्य चापयष्ट्या
इपुरेकैव जनैः सकृद्विसृष्टा॥

२३—तीक्ष्ण अग्रभागवाले श्रीकृष्णजी के बाणोंने शत्रुसे फेंकेगये बाणोंके समूहको शिक्षा करनेवाले राजा के मन्त्री आदिक भेद करनेके योग्य पुरुषों को कपट वचन वालों के समान भेदको प्राप्त किया ॥

२४—शरीरों में उज्ज्वल रेखावाले श्रीकृष्णजीके प्रियों के तुल्य बाणों से सन्मुख खंडन की गई अग्रभाग से रहित लघुता को प्राप्त बाणों की पंक्ति पृथ्वी में गिरी ॥

२५—बाण श्रीकृष्णजी से छोड़े हुए बाणों से बलात्कारपूर्वक अग्रभाग में मारे गये भयभीतों के समान परिपूर्णताको प्राप्त मध्यकी पृथ्वी के सब ओर उलटे चले ॥

२६—परस्पर रगड़ने से उत्पन्नहुई बाणोंके अग्रभागोंके रगड़नेसे बिखरेहुए कणवाली अग्नि मेघोंके समूहोंको स्वादु (स्पर्श) लेतीहुई शत्रुओं में क्षणभर प्रज्वलितहुई ॥

२७—श्रीकृष्णजी से बाणोंकी सम्पत्तिके द्वारा शरदृतुमें मेघों के तुल्य शत्रुओंके बाणोंके समूहके नष्टहोने पर प्रफुल्लित कमलोंके समान मुखवाली दिशाओं के समान यदुवंशियोंकी सेना अत्यन्त शोभित हुई ॥

२८—सूर्य्यमण्डल के आच्छादन करनेवाले बाणोंके समूहों से आकाशको उन (श्रीकृष्णजी ने) आच्छादित किया इस समय उन (श्रीकृष्णजी के) धनुष से एकहीवार बाण छोड़ागया और पुरुषों से मानों एकही देखागया ॥

३५--श्लथतां व्रजतस्तथा परेषा-
मगलद्धारणशक्तिमुज्झतः स्वाम्।
सुगृहीतमपि प्रमादभाजा-
म्मनसः शास्त्रमिवास्त्रमग्रपाणेः॥

३६--उचितस्वपनोऽपि नीरराशौ
स्ववलाम्भोनिधिमध्यगस्तदानीम्।
भुवनत्रयकार्यजागरूकः
स परन्तत्र परः पुमानजागः॥

३७--अथ सूर्यरुचीव तस्य दृष्टा-
वुदभूत्कौस्तुभदर्पणं गतायाम्।
पटु धाम ततो न चाद्भुतन्त-
द्विभुरिन्द्वर्कविलोचनः किलासौ॥

३८--महतः प्रणतेष्विव प्रसादः
स मणेरंशुचयः ककुम्मुखेषु।
व्यकसद्विकसद्विलोचनेभ्यो
ददालोकमनाविलम्बलेभ्यः॥

३९--प्रकृतिम्प्रतिपादुकैश्च पादै-
श्चकृपे भानुमतः पुनः प्रसर्तुम्।
तमसोऽभिभवाद्यदस्य मूर्च्छा-
मुदजीवत् सहसैव जीवलोकः॥

४०--घनसन्तमसैर्जवेन भूयो
यदुयोधैर्युधि रेधिरे द्विषन्तः।
ननु वारिधरोपरोधमुक्तः
सुतरामुत्तपते पतिः प्रभाणाम्॥

३५--इसी प्रकार शिथिलता को प्राप्त अपनी धारण करने की शक्ति से रहित अन्य राजा लोगों के हाथ के अग्रभागसे अच्छे प्रकारसे ग्रहण किया गया भी प्रमादियों के मनसे शास्त्रके समान अस्त्रगिर पड़ा ॥

३६--समुद्रमें शयन करने वालेभी उस समय अपनी सेनारूपी समुद्रके मध्यमें प्राप्त त्रैलोक्यके कार्य्यमें जागनेवाले परम-पुरुष (श्रीकृष्णजी) ही जागते रहे ॥

३७--इसके उपरान्त सूर्य्यकी कान्तिकेसमानउन(श्रीकृष्णजी) की दृष्टिकेदर्पणरूपी कौस्तुभमें प्राप्तहोने पर उस(कौस्तुभ-मणि) से समर्थ तेज उत्पन्न हुआ यह आश्चर्य्य नहीं है क्योंकि यहभगवान् सूर्य्य और चन्द्रमारूपी नेत्रवाले हैं ॥

३८--वह कौस्तुभमणि की किरणोंका समूहखुले हुए नेत्रवाली सेनाओंको निर्मल प्रकाश देता हुआ भक्तोंमें महात्माओं के प्रसादकेसमानदिशाओंके अग्रभागोंमें प्रकाशितहुआ॥

३९--स्वभावको प्राप्त सूर्य्यकी किरणें फिर फैलनेको समर्थ हुईं और प्राणी लोग भी अन्धकार के तिरस्कार से एकाएकी मूर्च्छा को त्याग करके सावधान हुए ॥

४०--घने अन्धकार वाले यदुवंशी योद्धाओं ने फिर भी युद्ध में शत्रुओंको मारा क्योंकि मेघोंके आच्छादनसे छूटेहुए सूर्य्य अवश्यही प्रकाशित होते हैं ॥

४१--व्यवहार इवानृताभियोग-
न्तिमिरन्निर्जितवत्यथ प्रकाशे ।
रिपुरुल्वणभीमभोगभाजा-
म्भुजगानाञ्जननीञ्जजाप विद्याम् ॥

४२--पृथुदर्विभृतस्ततः फणीन्द्रा
विषमाशीभिरनारतं वमन्तः ।
अभवन् युगपद्विलोलजिह्वा-
युगलीढोभयसृक्कभागमाविः ॥

४३--कृतकेशविडम्बनैर्विहायो
विजयन्तरक्षणमिच्छुभिश्छलेन ।
अमृताग्रभुवः पुरेव पुच्छं
वड़वाभर्तुरवारि काद्रवेयः ॥

४४--दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या
बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशालाः ।
भरतज्ञकविप्रणीतकाव्य-
ग्रथितांका इव नाटकप्रपञ्चाः ॥

४५--सविषश्वसनोद्धतोरुधूम-
व्यवधिम्लानमरीचि पन्नगानाम् ।
उपरागवतेव तिग्मभासा
वपुरौदुम्बरमण्डलाभमूहे ॥

४६--शिखिपिच्छकृतध्वजावचूल-
क्षणसाशंकविवर्त्तमानभोगाः ।
यमपाशवदाशु बन्धनाय
न्यपतन् वृष्णिगणेषु लेलिहानाः ॥

४१—मिथ्या कथनको न्याय कथनके समान प्रकाशके अन्धकार को जीतने पर इसके उपरान्त शिशुपालने बड़े और भयंकरफणिवालेसर्पोंकी उत्पन्नकरनेवालीविद्याकाजपकिया॥

४२—इसके उपरान्त बड़े फणों के धारण करनेवाले दंष्ट्राओं से निरन्तर विषके उगलनेवाले बड़े सर्प चंचल दोनों जिह्वाओंसे दोनों ओष्ठों के अग्रभागोंका स्वादुलेकर प्रकटहुए ॥

४३—केशोंकी तुल्यता करनेवाले छलसे विजय चाहनेवाले सर्पोंने आकाशको पहले अमृत के प्रथम उत्पन्न होनेवाले उच्चैश्श्रवाकी पूंछके समान आच्छादन किया ॥

४४—मुखमें विशाल क्रमसे सूक्ष्मता को धारण करते हुए सर्प नाट्य शास्त्रके जाननेवाले कविसे रचेहुए काव्यके अर्थसे गुथेहुए अंकवाले नाटकोंके विस्तारों के समान शोभित हुए ॥

४५—मानों राहुग्रस्त सूर्य्यने सर्पोंके विषयुक्त श्वासोंसे उठेहुए धुएंके द्वारा आच्छादनसे म्लान किरणवाले ताम्र पिण्डके तुल्य शरीर धारण किया ॥

४६—सर्प मयूरोंकी पूंछोंसे बनेहुए ध्वजाओं के वस्त्रोंसे क्षणभर डरेहुए लौटेहुए शरीरवाले होकर शीघ्र यदुवंशियोंमें बन्धन के लिये यमराजके पाशोंके तुल्य गिरे ॥

४७--पृथुवारिधिवीचिमण्डलान्त-
विलसत्फेनवितानपाण्डुराणि।
दधति स्म भुजंगमांगमध्ये
नवनिर्मोकरुचिं ध्वजांशुकानि॥

४८--कृतमण्डलबन्धमुल्लसद्भिः
शिरसि प्रत्युरसं विलम्बमानैः।
व्यरुचज्जनता भुजंगभोगै-
र्दलितेन्दीवरमालधारिणीव॥

४९--परिवेष्टितमूर्त्तयश्च मूला-
दुरगैराशिरसः सरत्नपुष्पैः।
दधुरायतवल्लिवेष्टिताना-
मुपमानम्मनुजा महीरुहाणाम्॥

५०--बहुलाञ्जनपंकपट्टनील-
द्युतयो देहमितस्ततः श्रयन्तः।
दधिरे फणिनस्तुरंगमेषु
स्फुटपल्याणनिबद्धवध्रलीलाम्॥

५१--प्रसृतं रभसाददयोऽभिनीला
प्रतिपादम्परितोऽभिवेष्टयन्ती।
तनुरायतिशालिनी महाहे-
र्गजमन्दूरिव निश्चलञ्चकार॥

५२--अथ सस्मितवीक्षितादवज्ञा-
चलितैकोन्नमितभ्रु माधवेन।
निजकेतुशिरःश्रितः सुपर्णा-
दुदपतन्नयुतानि पक्षिराजाम्॥

४७--सर्पोंके शरीरोंके मध्यमें बड़ी समुद्रकी तरंगों के मध्यमें विलासको प्राप्त फेणोंके समान श्वेतवर्णवाले भुजाओं के वस्त्रोंने नवीन कांचलीकी शोभाको धारण किया ॥

४८--लोभ शिरमें मंडल के बाँधनेपर शोभायमान प्रत्येक हृदय में लम्बमान सर्पोंके शरीरों से प्रफुल्लित नील कमलोंकी मालाओं के धारण करनेवाले मानों शोभितहुए ॥

४९--चरणसे शिर पर्य्यन्त रत्नरूपी पुष्पोंसे युक्त सर्पोंसे लिपटे हुए शरीरवाले पुरुषोंने बड़ी लताओंसे लिपटेहुए वृक्षों की तुल्यता धारण की ॥

५०--घने काजलकी कीचके समान श्याम कान्तिवाले शरीरमें इधर उधर लगेहुए सर्पोंने घोड़ों पर जिनमें बँधीहुई उज्ज्वल रस्सियों की शोभा धारण की ॥

५१--लोहे के समान श्याम पैरोंमें बँधतीहुई दीर्घता से युक्त बड़े सर्पके शरीररूपी शृंखलाने एकाएकी चलतेहुए हाथी को निश्चल किया ॥

५२--इसके उपरान्त श्रीकृष्णजी से अनादरपूर्वक एक भृकुटी के चलाने और उठानेपर मन्द हास्यपूर्वक देखेगये अपनी पताकाके अग्रभागमें स्थित गरुड़जी से हजारों मोर उड़े ॥

५३द्रुतहेमरुचः खगाः खगेन्द्रा-
दलघूदीरितनादमुत्पतन्तः ।
क्षणमैक्षिपतोच्चकैश्चमूभि-
र्ज्वलतः सप्तरुचेरिव स्फुलिंगाः ॥

५४--उपमानमलाभि लोलपक्ष-
क्षणविक्षिप्तमहाम्वुवाहमत्स्यैः ।
गगनार्णवमन्तरा सुमेरोः
कुलजानांगरुडैरिलाधराणाम् ॥

५५--पततांपरितः परिस्फुरद्भिः
परिपिंगीकृतदिङ्मुखैर्मयूखैः ।
सुतरामभवद्दुरीक्ष्यविम्व-
स्तपनस्तत्किरणैरिवात्मदर्शः ॥

५६--दधुरम्वुधिमन्थनाद्रिमन्थ-
भ्रमणायस्तफणीन्द्रपित्तजानाम् ।
रुचमुल्लसमानवैनतेय-
द्युतिभिन्नाः फणभारिणो मणीनाम् ॥

५७--अभितः क्षुभिताम्वुराशिधीर-
ध्वनिराकृष्टसमूलपादपौघः ।
जनयन्नभवद् युगान्तशंका-
मनिलो नागविपक्षपक्षजन्मा ॥

५८--प्रचलत्पतगेन्द्रपत्रवात-
प्रसभोन्मूलितशैलदत्तमार्गैः ।
भयविह्वलमाशु दन्दशूकै-
र्विवशैराविविशे स्वमेव धाम ॥

५३–तपेहुए सुवर्णके समान कान्तिवाले बड़े शब्दपूर्वक गरुड़ जीसे निकलेहुए पक्षी अग्निसे ऊपर फैलेहुए कणोंके समान सेनाओंसे क्षणभर देखेगये ॥

५४–आकाशरूपी समुद्रके मध्यमें चंचलपक्षोंसे क्षणभरमें बड़े मेघरूपी मत्स्योंके फेंकनेवाले मयूर सुमेरु के वंशमें उत्पन्न हुए पर्वतोंकी तुल्यताको प्राप्त हुए ॥

५५--शोभायमान दिशाओंके अग्रभागों के पीतवर्ण करनेवाली पक्षियोंकी किरणोंसे सूर्य्य अपनी किरणोंके द्वारा दर्पण के समान अत्यन्त अलक्ष विम्बवालेहुए ॥

५६–दीप्तिमान् मयूरोंकी द्युतियों से मिलेहुए सर्पोंने समुद्रके मथनेके समयमें मन्दराचलरूपी मथानीके भ्रमण से दबे हुए वासुकीके पित्तसे उत्पन्नहुई मरकत मणियोंकी कांति धारणकी ॥

५७--दोनों ओर से क्षोभको प्राप्त समुद्रके समान गंभीर ध्वनि वाली मूलसमेत वृक्षों के समूहोंकी गिरानेवाली प्रलयकी शंकाको उत्पन्न करतीहुई गरुड़ोंके पक्षोंसे उत्पन्नहुई वायु चली ॥

५८--उड़तेहुए गरुड़ोंके पक्षोंकी पवनों से एकाएकी उखाड़ेहुए पर्वतोंसे दियेगये मार्गवाले पर वश सर्पोंने भयसे विह्वलता पूर्वक शीघ्र अपनेही स्थान (पाताल) में प्रवेश किया ॥

५९--खचरैः क्षयमक्षयेऽहिसैन्ये
सुकृतैर्दुष्कृतवत्तदोपनीते ।
अयुगार्चिरिव ज्वलन् रुषाथो
रिपुरौदर्चिपमाजुहाव मन्त्रम् ॥

६०--सहसा दधदुद्धताट्टहास-
श्रियमुत्त्रासितजन्तुना स्वनेन ।
विततायतहेतिवाहुरुच्चै-
रथ वेताल इवोत्पपात वह्निः ॥

६१--चलितोद्धतधूमकेतनोऽसौ
रभसादम्बररोहिरोहिताश्वः ।
द्रुतमारुतसारथिः शिखावान्
कनकस्यन्दनसुन्दरश्चचाल ॥

६२--ज्वलदम्बरकोटरान्तरालं
वहुलार्द्राम्बुदपत्रवद्धधूमम् ।
परिदीपितदीर्घकाष्टमुच्चै-
स्तरुवह्निश्वमुवोष जातवेदाः ॥

६३--गुरुतापविशुष्यदम्बुशुभ्राः
क्षणमालग्नकृशानुताम्रभासः ।
स्वमसारतया मसीभवन्तः
पुनराकारमवापुरम्बुवाहाः ॥

६४--ज्वलितानललोलपल्लवान्ताः
स्फुरदष्टापदपत्रपीतभासः ।
क्षणमात्रभवामभावकाले
सुतरामापुरिवायतिम्पताकाः ॥

५९–पक्षियों से पुण्यों से पातकोंके समान सर्पोंके समूहोंके नष्ट होनेपर उससमय क्रोधसे सूर्य्य के समान दीप्तिमान् शत्रु (शिशुपाल) ने अग्निसंबन्धी मन्त्रका आह्वानकिया ॥

६०–इसके उपरान्त प्राणियों को भय देनेवाली ध्वनि से बड़े अट्टहासकी शोभाको धारण करतीहुई दीर्घ हाथोंकेसमान ज्वालाओंकी फैलानेवाली वेताल(व्रत) के समान अग्नि शीघ्र ऊपर को उठी ॥

६१–चंचल और उन्नत धूमरूपी पताकावाली वेगसे आकाश में चढ़ेहुए घोड़ों के समान सवारीके मृगवाली शीघ्रपवन-रूपी सारथी वाली टिघले हुए सुवर्ण के समान सुन्दर अग्निचली ॥

६२--अग्निने जलतेहुए मध्यवाले कोटरकेसमान आकाशवाले पत्रोंके समान घने सजल मेघोंमें रुकेहुए धूमवाले काष्ठों के समान जलतीहुई दिशावाले उन्नत संसार को वृक्षके समान भस्म किया ॥

६३–बड़ेदाहसे सूखेहुए जलवाले और श्वेतवर्णवाले क्षणभर लगीहुई अग्निसे रक्तवर्णवाले सारांशके नहोने से श्याम वर्णवालेमेघ फिरअपनेही आकार(नीलवर्ण)को प्राप्तहुए ॥

६४–प्रज्वलित अग्निसे चंचल वस्त्रोंके अग्रभागवाली दीप्तिमान् सुवर्णकी रचनाओंसे पीतवर्णवाली पताका नाशके समय क्षणभर स्थितहोनेवाली दीर्घताको अत्यन्त प्राप्त हुई ॥

६५--निखिलामिति कुर्वतश्चिराय
द्रुतचामीकरचारुतामिव द्याम् ।
प्रतिघातसमर्थमस्त्रमग्ने-
रथ मेघङ्करमस्मरन्मुरारिः ॥

६६--चतुरम्बुधिगर्भधीरकुक्षे-
र्वपुषः सन्धिषु लीनसर्वसिंधोः ।
उदगुः सलिलात्मनस्त्रिधाम्नो
जलवाहावलयः शिरोरुहेभ्यः ॥

६७--ककुभः कृतनादमास्तृणन्त-
स्तिरयन्तः पटलानि भानुभासाम् ।
उदनंसिषुरभ्रमभ्रसंघाः
सपदि श्यामलिमानमानयन्तः ॥

६८--तपनीयनिकषराजिगौर-
स्फुरदुत्तालतडिच्छटाट्टहासम् ।
अनुबद्धसमुद्धताम्बुवाह-
ध्वनिताडम्बरमम्बरम्बभूव ॥

६९--सवितुः परिभावुकैर्मरीची-
नचिराभ्यक्तमतंगजांगभाभिः ।
जलदैरभितः स्फुरद्भिरुच्चै-
र्विदधे केतनतेव धूमकेतोः ॥

७०--ज्वलतः शमनाय चित्रभानोः
प्रलयाप्लावमिवाभिदर्शयन्तः ।
ववृपुर्वृपनादिनो नदीना-
म्प्रतटारोपितवारि वारिवाहाः ॥

६५–इसके उपरान्त श्रीकृष्णजीने इसप्रकार संपूर्ण आकाशको मानों तप्त सुवर्ण से चित्रवर्ण बहुतकालतक करती हुई अग्निकेशान्त करनेमें समर्थ मेघोंके उत्पन्नकरनेवाले अस्त्र का स्मरण किया ॥

६६–चारों समुद्ररूपी गर्भसे गंभीर कुक्षिवाले शरीरकी सन्धियोंमें भरीहुई संपूर्णनदीवाले जलात्मक तीनस्थानवाले श्रीकृष्णजी के केशोंसे मेघोंकी पंक्तियां निकलीं ॥

६७–गर्जनापूर्व्वक दिशाओंको आच्छादित करते हुए सूर्य्य की किरणों को ढकते हुए आकाश को श्यामकरतेहुए मेघों के समूह शीघ्रउठे ॥

६८--सुवर्णके रगड़नेकी रेखाओंके समान पीतवर्णवाली स्फूर्त्तिमान् उद्धत विद्युतरूपी अट्टहासवाला, भरेहुए बड़ी मेघों की ध्वनियों के आडम्बर वाला, आकाशहुआ ॥

६९--सूर्य्यकी किरणों के तिरस्कार करनेवाले उसीसमय अंगराग कियेहुए हाथीके शरीरके समान कान्तिवाले, सबओर से स्फूर्त्तिमान् (प्रकाशमान) उन्नत मेघ, अग्निके पताकापनेको मानों प्राप्तहुए ॥

७०--प्रज्वलित अग्निके शान्तिके लिये मानों प्रलय समयके बड़े प्रवाहको दिखातेहुए वृषभके समान गर्जतेहुए मेघ नदियों के किनारेमें जलोंको उत्पन्नकरते बरसे ॥

७१–मधुरैरपि भूयसा स मेध्यैः
प्रथमम्प्रत्युत वारिभिर्दिदीपे ।
पवमानसखस्ततः क्रमेण
प्रणयक्रोध इवाशमद्विवादैः ॥

७२–परितः प्रसभेन नीयमानः
शरवर्षैरवसायमाश्रयाशः ।
प्रवलेपु कृती चकार विद्यु-
द्व्यपदेशेन घनेष्वनुप्रवेशम् ॥

७३–प्रयतः प्रशमं हुताशनस्य
क्वचिदालक्ष्यत मुक्तमूलमर्चिः ।
वलभित्प्रहितायुधाभिघातात्
त्रुटितम्पत्रिपतेरिवैकपत्रम् ॥

७४–व्यगमन् सहसा दिशाम्मुखेभ्यः
शमयित्वा शिखिनंधना घनौघाः ।
उपकृत्य निसर्गतः परेषा-
मुपरोधन्नहि कुर्वते महान्तः ॥

७५–कृतदाहमुदर्चिषः शिखाभिः
परिषिक्तम्मुहुरम्भसा नवेन ।
विगताम्बुधरत्वणम्प्रपेदे
गगनन्तापितपायितासिलक्ष्मीम् ॥

७६–इति नरपतिरस्त्रं यद्यदाविश्चकार
प्रकुपित इव रोगः क्षिप्रकारी विकारम् ।
भिषगिव गुरुदोषच्छेदिनोपक्रमेण
क्रमविदथ मुरारिः प्रत्यहंस्तत्तदाशु ॥

७१--वह अग्नि प्रियभी अनेक प्रकारके वाक्योंसे क्रीड़ाके क्रोधके समान स्वादु मेघसे उत्पन्नहुए जलों से पहले विपरीतता से अत्यन्त प्रज्वलितहुई इसके उपरान्त क्रमसे शान्तहुई॥

७२--सब ओर से बलात्कारपूर्वक पानीकी बौछारों से नाशको प्राप्तकीगई अग्नि प्रबल मेघोंमें बिजली के छलसे प्रविष्ट हुई ॥

७३--नाशको प्राप्त होतीहुई अग्निकी मूलरहित ज्वाला इन्द्रसे फेंकेहुए वज्रके प्रहारसे टूटेहुए गरुड़के एक पक्षके समान कहीं लक्षित हुई ॥

७४--बरसनेवाले मेघोंके समूह अग्निको शान्त करके एकाएकी दिशाओंके अग्रभागोंसे चलेगये क्योंकि महात्मालोग स्वभावहीसे अन्योंका उपकार करके रोक नहीं करते ॥

७५--अग्निकी ज्वालाओं से संतप्त कियागया नवीन जलसे वारंवार सींचागया मेघरूपी व्रणोंसे रहित आकाश तपाये गये और बुझाये गये खड्गकी शोभाको प्राप्तहुआ ॥

७६--इसप्रकार शीघ्र प्रयोग करनेवाले रोगके समान शिशुपाल ने क्रुद्ध होकर जोजो अस्त्र प्रकटकिया इसके उपरान्त क्रमके जाननेवाले वैद्यके समान श्रीकृष्णजीने बड़े२ दोषोंके नाश करनेवाले उपायसे वह २ अस्त्र शीघ्र नाश किये ॥

७७–शुद्धिंगतैरपि परामृजुभिर्विदित्वा
वाणैरजय्यमविघट्टितमर्मभिस्तम् ।
मर्मातिगैरनृजुभिर्नितरामशुद्धै-
र्वाक्सायकैरथ तुतोद तदा विपक्षः ॥

७८–राहुस्त्रीस्तनयोरकारि सहसा येनाश्लथालिंगन-
व्यापारैकविनोददुर्ललितयोः कार्कश्यलक्ष्मीर्वृथा।
तेनाक्रोशत एव तस्य मुरजित्तत्कालल्लोलानल-
ज्वालापल्लवितेन मूर्द्धविकलं चक्रेण चक्रे वपुः॥

७९–श्रिया जुष्टन्दिव्यैः सपटहरवैरन्वितम्पुष्पवर्षै-
र्वपुष्टश्चैद्यस्य क्षणमृषिगणैस्तूयमानन्निरीय ।
प्रकाशेनाकाशे दिनकरकरान्विक्षिपद्विस्मिताक्षै-
र्नरेन्द्रैरौपेन्द्रं वपुरथ विशद्धाम वीक्षाम्बभूवे ॥

७७–उससमय शत्रु (शिशुपाल) ने अत्यन्त शुद्धिको प्राप्त सीधेभी मर्मस्थानों के नहीं स्पर्श करनेवाले बाणोंसे उन (श्रीकृष्णजी) को जीतने में अशक्य समझकर इससमय मर्म के भेदन करनेवाले टेढ़े अत्यन्त अपवित्र वचनरूपी बाणों से व्यथित किया ॥

७८--जिसचक्रने शीघ्र दृढ़ आलिंगन के व्यापाररूपी मुख्य आनन्दमें लोभयुक्त राहुकी स्त्री के स्तनोंकी कठोरताकी शोभा वृथा करदी श्रीकृष्णजीने उससमयमें चंचल अग्निकी ज्वालाओंसे पल्लवयुक्त उस चक्रके द्वारा गाली देतेहुए शिशुपालका शरीर शिरसे रहित किया ॥

७९--शोभासे युक्त दिव्यनगाड़ोंके शब्दों समेत पुष्पोंकी वृष्टियों से युक्त क्षणभर ऋषिलोगोंसे स्तुति कियेगये शिशुपालके शरीरसे निकलकर प्रकाशसे आकाशमें सूर्य्यकी किरणों को फेंकतेहुए श्रीकृष्णजीके शरीरमें प्रवेश करतेहुए तेज को आश्चर्य्ययुक्त नेत्रवाले राजालोगोंने देखा ॥

इसश्लोकमें प्रमाणके लिये व्यासजीके दो श्लोक लिखते हैं॥

ततश्चेदिपतेर्देहात्तेजोग्र्यं ददृशे नृपैः ।
उत्पपात यदा राजँस्तदा तेजो विवेशच १
दिविसूर्य्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ॥
यदिभासदृशीसा स्याद्भास्नस्तस्य महात्मनः २

अथ कविवंशवर्णनम् ।

८०—सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः
श्रीधर्मनाभस्य बभूव राज्ञः ।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव
देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ॥

८१—काले मितं वाक्यमुदर्कपथ्य-
न्तथागतस्येव जनः सुचेताः ।
विनानुरोधात् स्वहितेच्छयैव
महीपतिर्यस्य वचश्चकार ॥

८२—तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः
क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः ।
यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रो-
र्वचोगुणग्राहि जनैः प्रतीये ॥

८३—सर्वेण सर्वाश्रय इत्यमन्द-
मानन्दभाजा जनितञ्जनेन ।
यश्च द्वितीयं स्वयमद्वितीयो
मुख्यः सताङ्गौणमवाप नाम ॥

८०--श्रीधर्मनाभ नाम राजा के पुण्यमें व्यापार युक्त नहीं लगी हुई दृष्टिवाले रजोगुण से रहित द्वितिय राजाके समान सुप्रभदेवनाम सम्पूर्ण कार्यों में अधिकार वाले थे ॥

८१--जिस सुप्रभके थोड़े अक्षरवाले सत्य अन्तकाल में हितकारी वचनको राजा अपने हितकी इच्छासे अनुरोध के विना समयपर (ऐसे) करताथा जैसे कि बुद्धिमान् पुरुष बुद्धके वचनको (करते थे) ॥

८२--उस सुप्रभदेवके सुन्दर चित्तवाला क्षमायुक्त कोमल धर्म में तत्पर दत्तकनाम पुत्रहुआ जिसको देखकर लोगोंने युधिष्ठिर के गुणोंका ग्रहण करनेवाला व्यासका वचन अंगीकार किया ॥

८३--और अद्वितीय सज्जनोंमें मुख्य जो दत्तक आनन्दयुक्त संपूर्ण पुरुषों से कियेगये गुणकी प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुए प्रशंसा करने के योग्य सर्वाश्रय इस द्वितीयनामको प्राप्त हुआ ॥

८४—श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्त्तनचारु माघः ।
तस्यात्मजः सुकविकीर्त्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ॥

इतिश्रीशिशुपालवधे महाकाव्ये श्रीदत्तकसूनुकवि-
श्रीमाघविरचिते शिशुपालवधो नाम
विंशः सर्गः समाप्तः ॥ २० ॥

८४--उस दत्तकके पुत्रमाघने अच्छेकवियोंकी कीर्त्तिकी कठिन आशासे श्री शब्दसे सुन्दर की हुई सर्गकी समाप्ति के चिह्न वाला श्रीकृष्णजी के चरित्रके वर्णनसे अतिश्रेष्ठ यह शिशु-पालबध नाम काव्य बनाया ॥

इति श्रीदत्तकसूनुकविश्रीमाघविरचितशिशुपालबध
महाकाव्यस्यभाषानुवादे शिशुपालबधो नाम
विंशःसर्गः समाप्तः ॥ २० ॥

इस पुस्तक को पण्डित रामविहारी और पण्डित
शक्तिधर सुकुल ने शुद्ध किया है ॥

मुन्शी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेख़ाने लखनऊ में छपी
अक्टूबर सन् १८९१ ई० ॥